काका कालेलकर

स्मरण-यात्रा

[बचपनके कुछ संस्मरण]

काका कालेलकर

नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाई देसाअी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – ९

पहली आवृत्ति : ३०००

साढ़े तीन रुपये

अप्रैल, १९५३

श्री सीतारामजी सेकसरियाको

जिनका भावुक स्वभाव और सेवामय जीवन
मुझे हमेशा आह्लादित करते आये हैं।

अनुक्रमणिका

	प्रयोजन और परिचय	७
	सन्तोष	१३
१.	मेरा नाम	३
२.	दाहिना या बायाँ ?	६
३.	साताराके संस्मरण	९
४.	बाबाका कमरा	१८
५.	सीताफलका बीज	२४
६.	‘विद्यारंभ’	२६
७.	अक्का	३२
८.	पैसे खोये	४०
९.	ठूंठा मास्टर	४३
१०.	तू किसका ?	४५
११.	अमरूद और जलेबियाँ	४७
१२.	सातारासे कारवार	५०
१३.	“मुझे धेला दीजिये”	५५
१४.	सभा	५९
१५.	दो टाअिपोंका चोर	६१
१६.	डरपोक हिम्मत	६५
१७.	गणपतिका प्रसाद	६९
१८.	गोकर्णकी यात्रा	७३
१९.	हम हाथी ख़रीदें	८५
२०.	वाचनका प्रारंभ	८९
२१.	यल्लाम्माका मेला	९४
२२.	विठोबाकी मूर्ति	१००
२३.	अुपास्य देवताका चुनाव	१०३
२४.	पंढरी	११०

२५.	बड़े भाअीकी शक्ति	११७
२६.	घटप्रभाके किनारे	१२०
२७.	निश्चयका बल	१२३
२८.	रामाकी चान्नी	१२८
२९.	बाजोंका अिलाज	१३१
३०.	श्रावणी सोमवार	१३५
३१.	अँगुलियाँ चटकायीं !	१३८
३२.	बुरे संस्कार	१४३
३३.	मैं बड़ा कब हुआ ?	१४६
३४.	पचरंगी तोता	१४९
३५.	छोटा होनेसे !	१५४
३६.	होशियार बननेसे अिनकार	१५९
३७.	देशभक्तिकी भनक	१६४
३८.	ख़ूनकी ख़बरें	१६५
३९.	शत्रु-मित्र	१६८
४०.	अंग्रेज़ी वाचन	१७१
४१.	हिम्मतकी दीक्षा	१७२
४२.	पनवाड़ी	१७४
४३.	हकीम साहब	१७७
४४.	दीनपरस्त कुतिया	१८५
४५.	भाषान्तर-पाठमाला	१८७
४६.	टिड्डी-दल	१९१
४७.	शेरकी मौसी	१९६
४८.	सरो पार्क	२०१
४९.	गणित-बुद्धि	२०६
५०.	भाअूका अुपदेश	२११
५१.	जगन्नाथ बाबा	२१४

५२.	कपाल-युद्ध	२१८
५३.	प्रेमल बाळिगा	२२०
५४.	मीठी नींद	२२४
५५.	मेरी योग्यता	२२८
५६.	शनिवारकी तोप	२३३
५७.	अिन्साफ़का अत्याचार	२४१
५८.	हिन्दू स्कूलमें	२४५
५९.	वामन मास्टर	२५२
६०.	सिंहनाद	२५७
६१.	शिक्षकसे अीर्ष्या	२६३
६२.	नशीला वाचन	२७०
६३.	धारवाड़की सब्जी-मंडी	२७५
६४.	गुप्त मंडली	२८०
६५.	कुसंस्कारोंका पाश	२८३
६६.	फोटोकी चोरी	२८९
६७.	अफ़सरका लड़का	२९४
६८.	खच्चर-गाड़ी	२९७
६९.	काव्यमय बरात	३००
७०.	चोरोंका पीछा	३०३
७१.	गृहस्थाश्रम	३०६
७२.	बच्चोंका खेल	३०८
७३.	पड़ोसकी पीड़ा	३११
७४.	विठु और भानु	३१४
७५.	जला हुआ भगत	३३०
७६.	तेरदालका मृगजल	३३२
७७.	जीवन-पाथेय	३३५
परिशिष्ट		
	संस्मरणोंकी पृष्ठभूमि	३३८

प्रयोजन और परिचय

बचपनमें हमने जो जीवन बिताया, अुसे संस्मरणोंके रूपमें फिरसे जीनेमें अेक तरहका आनंद रहता है। जीवन-यात्राकी मंज़िल बहुत कुछ तै हो जानेके बाद अिस तरह स्मरण द्वारा अुसे फिरसे दोहरानेको ही मैं स्मरण-यात्रा कहता हूँ। मेरे जीवनके लगभग छठे बरससे लेकर अठारहवें बरस तकका हिस्सा अिस स्मरण-यात्रामें आ जाता है।

लेकिन मेरी यह स्मरण-यात्रा कोअी आत्मकथा नहीं, बल्कि बीच-बीचमें याद आये हुअे जीवन-प्रसंगोंका अेक संग्रह मात्र है। अिसमें यह अिरादा भी नहीं है कि जीवनके महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों या समय-समय पर आये हुअे गहरे अनुभवोंको दर्ज किया जाय।

शिक्षकके नाते बालकों तथा युवकोंके पवित्र सहवासमें जिसने बहुत दिन बिताये हैं, वह जानता है कि बालकों तथा युवकोंके मनसे संकोचको दूर करके अुन्हें अपने विषयमें बोलनेको प्रवृत्त करना हो, अुनके प्रति हमारी सहानुभूति प्रकट करनी हो या अुन्हें आत्मपरीक्षणकी कला सिखानी हो, तो जिन स्वाभाविक साधनोंका प्रयोग हम कर सकते हैं अुनमें से अेक महत्त्वका साधन यह है कि हम अपने निजी बचपनका प्रांजल अेवं निःसंकोच निवेदन अुनके सामने पेश करें। बचपनमें हमने आशा-निराशाओंका अनुभव किया, अुस वक़्त हमारा मुग्ध हृदय कैसे छटपटाता रहा और नये-नये काव्यमय प्रसंग पहली बार हमें कैसे आकर्षित करते गये आदि बातोंका यथार्थ वर्णन अगर हम करें, तो बच्चोंका हृदय-कमल अपने आप खिलने लगता है। अपने गुण-दोष, जय-पराजय, कभी कभी मनमें आये हुअे क्षुद्र अहंकार, और सहज रूपसे होनेवाले स्वार्थत्याग आदिका हू-ब-हू चित्र अगर हम अुनके सामने खींच दें, तो अुनको असाधारण आनंद मिलता है। क्योंकि अुससे बालकोंको अैसा लगने लगता है कि अिन

बुज़ुर्गोंका जीवन भी हमारे जीवन जैसा ही था, अतः ये लोग हमारे मानसको आसानीसे अेवं ठीक-ठीक समझ पायेंगे; अितना ही नहीं, वे सहानुभूतिके साथ अुस पर विचार भी कर सकेंगे।

जब कोअी नया राष्ट्र जन्म लेता है, तो वह दुनियाके सब पुराने राष्ट्रों पर यह ज़ाहिर कर देता है कि 'हम नये नयें पैदा हुअे हैं, हमारे अस्तित्वको आप लोग स्वीकार करें।' जब मुख्य मुख्य राष्ट्रोंसे अुस नये राष्ट्रको स्वीकृति मिलती है, तब अुसे धन्यताका अनुभव होता है और यह आत्मविश्वास भी पैदा होता है कि दुनियामें हम भी कोअी हैं।

बच्चों और युवकोंकी भी हालत अैसी ही होती है। यह देखकर अुन्हें बड़ी तसल्ली होती है कि अुनके अनुभव, अुनकी ग़लतियाँ, अुनकी महत्त्वाकांक्षाअें और अुनका बुद्धूपन — अिनमें से कुछ भी असाधारण नहीं है; अुन्हींके जैसे और भी बहुतेरे हैं; बल्कि मानव-जाति पुश्तोंसे अुनकें जैसा ही अनुभव लेकर और अुन्हींके जैसे आघातोंको सहकर जीवन-समृद्ध होती आयी है। अुन्हें अैसा लगता है कि अुनका महत्त्व यथोचित है, जो चीज़ दूसरे लोग कर सके अुसे वे भी कर सकेंगे। और अिस तरह अुनका आत्मविश्वास बढ़ने लगता है।

जहाँ तक मेरा संबंध है, अपने जीवन-प्रसंगोंको बिलकुल प्रामाणिक शब्दोंमें युवकोंके सामने पेश करके मैंने कअी मुग्ध हृदयोंको खोल दिया है। जब अन्य किसी प्रकारकी मदद न दे सका, अुस समय भी में अुन्हें सहानुभूतिकी मूल्यवान मदद दे सका हूँ।

यह बात नहीं कि प्रत्येक संस्मरणमें कोअी बड़ा भारी बोध यानी नसीहत, विचारोंका गांभीर्य या काव्यमय चमत्कृति होनी ही चाहिये। प्रत्येक संस्मरणसे यदि मुग्ध हृदयका अेक भी तार छेड़ा गया और अुससे मुस्कराती या भीगी हुअी आँखोंसे यह स्वीकृति मिल गयी कि 'हाँ, मुझे भी अैसा ही अनुभव हुआ था!' तो काफ़ी है।

हमारे देशमें जीवन-चरित्र लेखन बहुत कम पाया जाता है। हमारे लोग माहात्म्य लिखते हैं, स्तोत्र लिखते हैं, लेकिन जीवनियाँ नहीं लिख सकते। जहाँ दूसरोंकी जीवनियोंके बारेंमें अैसा अकाल हो, वहाँ आत्म-कथाकी तो बात ही क्या? तुकाराम महाराजने अपने बारेंमें दस-पाँच अभंग लिखनेंमें भी कितनी अरुचि अेवं संकोच प्रकट किया था!

पहले मुझे अैसा लगा कि हम लोग जीवनियाँ लिख ही नही सकते। लेकिन 'स्मरण-यात्रा' के कुछ अध्याय पढ़कर कअी मित्रोंने अुस पर जो आलोचना की, अुसे सुनकर यह बात मेरे ध्यानमें आ गयी कि आत्मकथा या आपबीती लिखना तो हमारी संस्कृति अेवं सभ्यताको मंजूर ही नहीं। लालची मनुष्यके हाथों आसानीसे होनेवाले अनेक पापोंकी परम्परा गिनाते हुअे बिलकुल हद या चरम सीमाके तौर पर भर्तृहरिने अपने अेक श्लोकमें 'निजगुणकथापातक' का ज़िक्र किया है।

आदमी अपनी आत्मकथा लिखे या न लिखे, अिसकी चर्चा करके गांधीजीने अपना फ़ैसला दे ही दिया है। मेरा अपना ख़याल यह है कि श्रेष्ठ अेवं असाधारण विभूतियाँ ही नहीं, बल्कि अत्यंत साधारण, निर्विशेष, प्राकृत व्यक्ति भी अगर प्रांजलतासे, खास शिष्टाचारोंकी पाबन्दियोंमें रहकर आत्मकथाअें लिखें तो वह अिष्ट ही होगा।

हरअेक मनुष्यके पास यदि कोअी सबसे क़ीमती चीज़ हो, तो वह अुसका अपना अनुभव है। यदि कोअी सहृदयतापूर्वक अपना अनुभव हमें देना चाहता है, तो हम क्यों न अुसका स्वागत करें? मतलबी प्रचारकों द्वारा लिखे गये अितिहास और जीवनियाँ पढ़नेकी अपेक्षा अेक सच्ची आत्मकथा पढ़नेसे हमें ज्यादा बोध मिलता है। और यदि हमारी अभिरुचि कृत्रिम न बन गयी हो, तो किसी अुपन्यासकी अपेक्षा अैसी आत्मकथामें हमें कम आनन्द नहीं मिलना चाहिये। लेकिन दुःखकी बात तो यह है कि बहुतेरे लोग अपने

अनुभवोंको अैसे रूपमें पेश ही नहीं कर सकते कि दूसरे लोग अुन्हें समझ सकें।

लेकिन मेरे लिअे तो स्मरण-यात्राके संबंधमें अितना भी बचाव करनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि जैसा मैंने शुरूमें कहा है, यह आत्मकथा है ही नहीं।

किसी किसीको अिस स्मरण-यात्रामें कहीं-कहीं आत्मप्रशंसाकी बू आयेगी। अुसके लिअे वे मुझ पर नाराज़ हों, अुसके पहले में अुनसे अितना ही कहूँगा कि मैं जानता हूँ, आत्मप्रशंसासे मनुष्यकी प्रतिष्ठा बढ़ती नहीं, बल्कि घटती ही है। मनुष्य जब अपने ही मुँह मियाँ मिट्ठू बनने लगे, तो अुसकी छाप अच्छी तो पड़ ही नहीं सकती; बल्कि लोग तुरन्त ही साशंक होकर कहने लगते हैं कि आखिर अपने ही मुँहसे अपने आपको दिया हुआ यह प्रमाणपत्र है न?

अितना सजग भान होते हुअे भी जब मैंने कुछ लिखा है, तो वह अन्धेकी तरह नहीं, बल्कि स्पष्ट जोखिम अुठाकर ही लिखा है। पाठक यदि बारीकीसे जाँच-पड़ताल करेंगे, तो अुन्हें दिखाअी देगा कि जिन प्रसंगोंमें यह सब आया है वे बिलकुल सामान्य हैं। अुनमें आत्म-प्रशंसा करने जैसा कुछ भी नहीं है। फिर बचपनकी बातोंमें अैसा क्या हो सकता है, जिसके कारण मुझे अपनी तटस्थताका त्याग करनेका मोह हो सके? मुझे अपने श्रोताओं तक पहुँचनेके लिअे जितनी स्वाभाविकताकी आवश्यकता जान पड़ी है, अुतनी ही स्वतंत्रताका अुपभोग मैंने निःसंकोच होकर किया है। ये संस्मरण नसीहत देनेके अिरादेसे नहीं, बल्कि सिर्फ़ सहानुभूति पैदा करनेके अुद्देश्यसे प्रेरित होकर लिखे गये हैं। बहुत बार नीतिबोधकी अपेक्षा हृदय-परिचय ही ज़्यादा मददगार और संस्कारक साबित होता है।

यहाँ जितने भी संस्मरण दिये गये हैं, वे सब युवकोंके लिअे ही हैं। यदि अिन्हें दूसरोंको पढ़ना हो और अुन्हें अिनमें की

हुअी आत्मप्रशंसा अखरती हो, तो अुनसे मेरा निवेदन है कि वे अिन्हें काल्पनिक मानकर पढ़ें, ताकि पढ़ते समय रंगमें भंग न हो।

राष्ट्र-सेवककी हैसियतसे कार्य करते समय 'स्मरण-यात्रा' लिखने जितना समय मिलना या वैसा संकल्प मनमें पैदा होना संभव नहीं था। लेकिन बीमार पड़नेसे जब जीवन-यात्राकी गति रुक गयी, तब मुझे मनोविनोदके तौर पर यह स्मरण-यात्रा लिख डालनेकी प्रेरणा हुअी। यदि मेरे तरुण मित्र और साथी श्री चंद्रशंकर शुक्लने अिसमें मुझे अुत्साहित न किया होता तो यह पुस्तक मैं लिख नहीं पाता। अिस पुस्तकका जितना श्रेय श्री चंद्रशंकर शुक्लको है, अुतना ही मेरी बीमारीको भी है। बीमारीकी फुरसत भोगनेके लिअे लाचार न हो जाता, तो अैसे आत्मलक्षी लेखोंके पीछे समय खर्च करनेका मुझे हक़ नहीं मिलता।

जब जब अिन प्रकरणोंको मैं पढ़ता हूँ अथवा अिनके बारेमें मित्रोंको बातचीत करते सुनता हूँ, तब तब मुझे अैसे ही कअी विविध प्रसंग याद आते हैं। यदि अुन सबको लिखने बैठूँ, तो अिस स्मरण-यात्राके बराबर समानान्तर अिसी ज़मानेकी दूसरी स्मरण-यात्रा आसानीसे तैयार हो सकती है। जीवनके अुसी कालके संबंधमें यदि नये संस्मरण आजकी मनोवृत्तिमें लिखे जायें, तो अेक नयी चीज़ आसानीसे दिखाअी दे सकती है। अेक ही जीवनके, अेक ही कालके दो प्रामाणिक बयान भिन्न-भिन्न कालमें और भिन्न-भिन्न वृत्तिसे लिखे जायँ, तो यह देखकर आश्चर्य होगा कि अुनमें अेकता होते हुअे भी कितनी भिन्नता आ सकती है। और अुससे हमें अिस बातका कुछ खयाल हो सकता है कि साहित्यमें सोनेकी अपेक्षा सुनारका ही असर कितना अधिक होता है।

जीवनके जिस कालके प्रसंग यहाँ दिये गये हैं, अुस कालका मेरा जीवन ज़्यादातर कौटुम्बिक था। सामाजिक तो वह लगभग था ही नहीं। व्यापक सामाजिक जीवनका स्पष्ट खयाल तो कॉलेजमें जानेके

बाद ही पैदा हुआ। कॉलेजके अुन चार-पाँच वर्षोंकी अवधिमें सिर्फ़ व्यापक सामाजिक, धार्मिक अेवं राजनैतिक जीवनका आकलन ही नहीं हुआ, बल्कि जीवनके अनेक अंग-अुपांगोंके बारेमें मेरे आदर्श भी कम या अधिक मात्रामें निश्चित हुअे। अुस वक़्तका मनोमन्थन और जीवन-दर्शनका नाविन्य अेवं कुतूहल यदि शब्दबद्ध किया जाये, तो वह अुसी अवस्थासे गुज़रनेवाले लोगोंके लिअे कुछ-न-कुछ अुपयोगी अवश्य हो सकता है।

अिस पुस्तकके मूल लेख कालक्रमसे नहीं लिखे गये थे। जैसे-जैसे प्रसंग याद आते गये, वैसे-वैसे मैं लिखता गया। बादमें अिन प्रकरणोंको कालक्रमके हिसाबसे जमानेमें अेक कठिनाअी अुपस्थित हुअी। कहीं-कहीं स्थान और मनुष्योंका अुल्लेख आदि पहले आता है और अुनके बारेमें प्राथमिक परिचय देनेवाले वाक्य बादमें आते हैं। अुस सबको सुधारने और आवश्यकता होने पर फिरसे लिखनेका समय पहली आवृत्तिके समय न होनेके कारण पाठकोंसे क्षमा माँगी गयी थी। अिस आवृत्तिमें मुझे वैसी क्षमा माँगनेका अधिकार नहीं है, फिर भी मुझे कहना तो होगा ही कि अिस बार भी वे आवश्यक सुधार मैं नहीं कर पाया हूँ। नये जोड़े हुअे नौ प्रकरण साधारणतः कालक्रमके हिसाबसे जहाँ जमाने चाहिये जमा दिये गये हैं। मेरा विचार तो था कि अिन सारे प्रकरणोंमें थोड़ी बहुत काट-छाँट करके अमुक हिस्सा तो निकाल ही दूँ, लेकिन वह भी मैं नहीं कर पाया। मालीकी कठोरता और कुशलता जब अिन हाथोंमें आयेगी और जब अुसकी ऋतु आयेगी, तब अिसमेंका कुछ हिस्सा निकाल डालनेकी अभी भी मेरी अिच्छा है। लेकिन वह हो जाय तब सही।

८-४-'४०

संतोष

जीवन-यात्राका अेक बार स्मरण करके स्मरण-यात्रा लिख डाली और अिस प्रकार जीवन-रसको दूना बनानेका आनन्द प्राप्त किया। अब अिस स्मरण-यात्राको फिरसे छपवाते समय अिसका स्मरण करते हुअे मन रसिक न रहकर समालोचक बन गया है।

अिसलिअे अेक विचार यहाँ पर दर्ज कर देना चाहिये। क्या अैसे साहित्यका दरअसल कुछ अुपयोग भी है? अिसका जवाब लेखक भी दे सकता है और पाठक भी। लेखक प्रधानतः अपने दिलकी प्रवृत्तिके अनुसार जवाब दे सकता है। पाठक अिसमें से अुन्हें कोअी रस मिलता है या नहीं, कोअी जानकारी मिलती है या नहीं, अिस आधार पर अपनी राय बतला सकते हैं। यदि साहित्यके द्वारा भाषा सुधरती हो और मानवीय अनुभव, भावनाअें, कल्पनाअें या अनुमान व्यक्त करनेकी भाषाकी शक्ति बढ़ती हो, तो भाषाभक्त अुस कारणसे भी अैसे साहित्यका स्वागत अवश्य करेंगे।

मैं तो केवल समाजशास्त्रके विद्यार्थीके नाते तटस्थ भावसे अिस प्रश्न पर विचार करता हूँ।

कहा जाता है कि बॉसवेलने अंग्रेज़ विद्वान् जॉनसनका जो जीवन-चरित्र लिखा है, अुसमें अुसने भक्तकी तरह कअी छोटी-छोटी बातें भी भर दी हैं। आज पंडित जॉनसनको जाननेकी लोगोंकी अिच्छा बहुत कम हो गअी है। बॉसवेलके स्वभावमें रही हुअी अन्ध-भक्ति और विभूति-पूजाकी आलोचना करते करते भी समाज थक गया है। आज जो लोग बॉसवेल लिखित जॉनसनकी जीवनी पढ़ते हैं, वे जॉनसनके बारेमें अधिक अच्छी जानकारी प्राप्त करने या बॉसवेलकी मनोवृत्तिको समझनेके लिअे नहीं, बल्कि अिसलिअे पढ़ते हैं कि अुसमें जीवनी लिखनेकी कलाको विकसित करनेका अेक नमूना देखनेको मिलता है। और अिससे भी अधिक तो वह पुस्तक अठारहवीं सदीके अिंग्लैण्डकी सामाजिक स्थितिका हू-ब-हू चित्र प्राप्त करनेके लिअे ही आज पढ़ी जाती है। आजका विवेचक मानवीय मन किसीके गढ़े-गढ़ाये अितिहासको पढ़नेकी अपेक्षा अैसे कच्चे दस्तावेजोंके मसालेको, जिसके आधार पर अितिहास रचा जा सकता है, जाँचकर अपने आप

स्वतंत्र अितिहासका निर्माण करनेमें विश्वास करता है। अिस प्रवृत्तिके परिणामस्वरूप अनेक प्रचलित मान्यताअें बदल गयी हैं। और अितिहास, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा मानसशास्त्रके अनेक सिद्धान्त छोड़ कर अुनकी जगह नये विशेष अुचित सिद्धान्त गढ़े जा चुके हैं। अिस प्रकार रहस्य खोलनेकी कला बढ़ती ही जा रही है। जैसे ज़मीनको जितना गहरा जोता जाय अुतना अुसका अुपजाअूपन बढ़ता जाता है, वैसे ही मौलिक साधनोंके अध्ययनके बढ़नेसे मनुष्य जीवनके रहस्यको विशेष स्पष्टतासे समझा जा सकता है।

अिस दृष्टिसे जीवन-चरित्रकी अपेक्षा आत्मकथाकी क़ीमत ज़्यादा होती है। मनुष्यका अनुभव अेकांगी हो या विविध, गहरा हो या छिछला, जहाँ तक वह मौलिक है वहाँ तक अुसकी क़ीमत निःसन्देह असाधारण होती है। कुछ भी सिद्ध या असिद्ध करनेके संकल्प या आग्रहके बिना जब मनुष्य अपने संस्मरण पेश कर देता है, तब जैसे जैसे समय बीतता जाता है, वैसे वैसे समाजकी स्थितिके अध्ययनकी दृष्टिसे अुसका अुपयोग बढ़ता जाता है। यह तो हुअी कालक्रमकी दृष्टिसे महत्त्व रखनेवाली वस्तुकी बात। लेकिन कितनी ही वस्तुअें काल-निरपेक्ष होती हैं। मनुष्य-हृदयकी भावनाअें, अुसके रस और अुलझनें जैसी प्राचीन कालमें थीं वैसी ही आज भी हैं। अिस सनातन वृत्तिका चित्रण यदि अुचित रूपमें किया गया हो, तो अुससे मनुष्य-हृदयको असाधारण तृप्ति मिलती है। रामायण पढ़ते समय हमारा मन अिस खोजमें नहीं दौड़ता कि श्री रामचंद्रजीके समयका, वाल्मीकिके समयका या तुलसीदासके समयका समाज कैसा था, बल्कि वाल्मीकि या तुलसीदासका हृदय मनुष्य-हृदयको जिस प्रकार चित्रित करता है अुसे देखकर हमारा हृदय भी अुसी रागमें नाचने लगता है और देशकालके भेदको लाँघ जाता है।

अिस गुणके कारण जैसे पाश्चात्य लोग भी रामायणमें रस ले सकते हैं, वैसे ही 'अिलियड' पढ़कर हम भी ग्रीक और ट्रोजन लोगोंकी भावनाओंके साथ अेकरूप हो सकते हैं। लेकिन वह ज़माना शूरवीरों, शासकों और कुशल कूटनीतिज्ञोंका था। साथ ही साथ अुस वक़्त अुनकी दुनियाके साथ-साथ चलनेवाली, किन्तु

अुस दुनियासे अछूती रहनेवाली त्यागवीरोंकी दूसरी दुनिया भी खिली हुअी थी। दिग्विजय और मार-विजय, ये दो ही चीज़ें अुस वक़्तके लोगोंको आकृष्ट करती थीं। आजका रस अुस ज़मानेके रससे अलग है। आज मनुष्य यद्यपि प्रकृति-विजय और ज्ञानकी विजयके पीछे पड़ा हुआ है, फिर भी साहित्यमें वह ख़ासकर आत्म-परिचयका भूखा है। और अिसी दृष्टिसे आत्मकथाओं और संस्मरणोंकी अुपयोगिताका मूल्यांकन किया जाता है। अब मनुष्यको अुदात्त-भव्यकी खोज कम करके आत्मीयताकी अुत्कटताको बढ़ानेका ख़याल होने लगा है। मुझ जैसा व्यक्ति यदि अिसके पीछे अहिंसा-वृत्तिका अुदय देखे, तो पाठकोंको अुस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

ये सब विचार जब मनमें अुठते हैं, और अुनके वातावरणमें जब मैं स्मरण-यात्राका विचार करता हूँ, तब यह प्रश्न अुठता है कि क्या ये संस्मरण कालके प्रवाहमें टिक सकेंगे? महात्माओंके सत्यके प्रयोग अजर-अमर हो सकते हैं। पत्थर पर खुदी हुअी अशोककी विजय और अनुतापकी स्वीकृतियाँ हज़ारों वर्ष बाद भी जैसीकी तैसी रह सकती हैं। सेन्ट ऑगस्टाअिनके 'कन्फेशन्स' साधक वृत्तिको नयी नयी सूचनाअें दे सकते हैं; रूसोका आत्म-परिचय मनुष्य-हृदयको हिला सकता है; टॉल्स्टॉयके बचपनके चित्र साहित्यकलाको नयी प्रेरणा दे सकते हैं; और समाजमें सब तरहसे बदनाम हुअे ऑस्कर वाअिल्डका 'डी प्रोफण्डिस' भी कल्पना-प्राण मानवीय हृदयके आक्रंदनके तौर पर मनुष्य दिलचस्पीके साथ पढ़ सकता है। लेकिन अिस स्मरण-यात्राका प्रवाह सखी मार्कण्डी* के सौम्य प्रवाहके समान है। अिसमें न तो कुछ भव्य है, न अुदात्त और न ललित ही। अिसमें न तो गहरी खाअियाँ हैं और न अुत्तुंग शिखर ही। मैं तो सामान्य कोटिके मनुष्यका प्रतिनिधि हूँ, वैसा ही रहना चाहता हूँ; और अिसी दृष्टिको सामने रखकर मैंने अपने अनुभवोंका यहाँ स्मरण किया है। सामान्य मनुष्यको मुख्यतः अद्भुत और असाधारण देखने-जाननेकी

---

* अेक नदी जो मेरे गाँव बेलगुंदीके पाससे बहती है।

अिच्छा होती है; वैसा रस अुसे कभी-कभी मिलता भी है। फिर भी सामान्य मनुष्य विचार तो अपना ही करता है। सामान्य मनुष्यके लिअे यदि दुनियामें स्थान हो, तो अुसके संस्मरणोंको भी साहित्यमें स्थान मिलना चाहिये, बशर्ते कि अुससे हम अूब न जायँ।

जब मैं अिस दृष्टिसे विचार करता हूँ, तो मेरी पुस्तकके सम्बन्धमें चिन्ता मिट जाती है। क्योंकि साधारण मनुष्यने स्मरण-यात्राके दूसरे संस्करणकी माँग करके अपना अुत्तर दे दिया है। मुझे अिससे सन्तोष है।

२६–३–'४०

"स्मरण-यात्रा" मूल गुजरातीमें लिखी थी। अनेक बरसोंके बाद मैंने अुसका मराठी अनुवाद किया। अिसके हिन्दी अनुवादके कअी प्रयत्न हुअे। लेकिन अेक मित्र अनुवाद करते, तो दूसरेको वह पसन्द न आता, और मैं अुदासीन रहता। अैसी हालतमें बेचारी स्मरण-यात्रा चल न सकी। आखिरकार नवजीवन प्रकाशन मंदिर अुत्साहके साथ अिसे पूरा करवाकर हिंदी जगत्के सामने धर रहा है। अनुवाद मैं देख जानेवाला था, लेकिन अैसा नहीं कर सका। नवजीवन प्रकाशन मंदिरने श्री खुशालसिंह चौहानसे अनुवाद करवाया और सारा अनुवाद फिरसे देख जानेका काम मेरी ओरसे श्री श्रीपाद जोशीने किया। अिस तरह यह अनुवाद हिंदी जगत्के सामने रखा जा रहा है।

गुजरातीमें या मराठीमें अिस चीज़को पाठकोंके सामने धरते मुझे अुतना संकोच नहीं हुआ था, जितना हिंदी जगत्के सामने धरते हुअे हो रहा है। गुजरात और महाराष्ट्रके लोग मेरी सब तरहकी विविध प्रवृत्तियोंके साथ मुझे पहचानते हैं। हिंदी जगत्ने मुझे केवल हिंदी प्रचारककी हैसियतसे ही पहचाना है। हिंदी जगत् मुझ पर कभी राजी भी हुआ है, कभी नाराज़ भी। जो नाराज़ी महात्माजीके प्रति वह व्यक्त नहीं कर सकता था, अुसके लिअे अुसने मुझे निशाना भी बनाया था। लेकिन सेवक अपनी सेवानिष्ठासे विचलित क्यों हो?

मैंने अूपर कहा ही है कि सामान्य मनुष्यके सामान्य अनुभवोंको मैंने यहाँ वाणीबद्ध किया है। सामान्य मनुष्यको अगर अिसमें कुछ आनंद मिले, तो मुझे संतोष है।

१५ मार्च, १९५३ **काका कालेलकर**

स्मरण-यात्रा

१

मेरा नाम

छोटे बच्चोंसे जब अुनका नाम पूछा जाता है, तो अक्सर शर्मसे या संकोचवश वे अपना नाम नहीं बताते। तब में मज़ाकमें अुनसे कहता हूँ, "दरअसल तुमको अपना नाम याद ही नहीं है। जब छोटे बच्चे सो जाते हैं तो नींदमें अपना नाम भूल जाते हैं और जाग जाने पर जब कोअी अुन्हें अुनके नामसे पुकारता है, तब अुन्हें अपना नाम याद आ जाता है। आज सुबहसे तुमको किसीने पुकारा न होगा, अिसलिअे तुम्हें अपना नाम याद नहीं आ रहा है। क्यों, है न?" अैसा कहनेसे कुछ बच्चे जोशमें आकर कह देते हैं, "जी नहीं, मुझे अपना नाम अच्छी तरह याद है।"

"क्या सचमुच तुमको अपना नाम याद है? फिर बताओ तो सही!"

मेरी यह तरकीब निश्चित रूपसे सफल हो जाती है और वह बच्चा अपना नाम बता देता है। लेकिन अेक बार अेक गुम्मे लड़केसे पाला पड़ गया। जब अुसने मेरा यह शास्त्रोक्त प्रश्न सुना कि 'क्या तुम अपना नाम भूल गये?' तो अुसने अपने गालोंको फुलाकर अेवं आँखोंमें गंभीरता लाकर गर्दन हिलायी और कहा, "जी हाँ, मैं अपना नाम भूल गया हूँ।" मैंने मुँहकी खायी, लेकिन किसी तरह लीपा-पोती करनेके विचारसे मैं बोला, "अरे, यह तो बड़े अफ़सोसकी बात है! है कोअी यहाँ, जो आकर अिस बेचारेको अुसका नाम बता दे?" मगर वह लड़का भी बड़ा चंट था। अुसने यह देखनेके लिअे चारों ओर नज़र दौड़ायी कि क्या सचमुच अुसका नाम बतानेके लिअे कोअी आ रहा है?

आज जबकि मैं बड़ा हो गया हूँ, किसीके न पूछने पर भी अपना नाम बतानेवाला हूँ। मैं नहीं जानता कि मैंने अपना नाम पहले पहल कब सुना। यह मैं कैसे बता सकता हूँ कि 'यही मेरा नाम है' अिसकी जानकारी मुझे किस तरह प्राप्त हुअी? किन्तु पशुपक्षियोंको जो नाम हम देते हैं, अुसे वे भी पहचानने लगते हैं। अिसका मतलब यही हुआ कि अपने नामको पहचाननेके लिअे बहुत अधिक बुद्धिमत्ताकी आवश्यकता नहीं होती होगी। अिस संबंधमें अगर किसी शास्त्रीसे पूछा जाय तो बड़े प्रतिष्ठित स्वरमें वह कहेगा, 'भूयः श्रवणेन नाम-ग्रहणम्।'

जहाँ अक्ल नहीं चलती वहाँ हम संस्कृतको चला देते हैं!

हमारे नाम बहुधा हमारे जन्मनक्षत्रके अक्षरों परसे रखे जाते हैं। पंचांगमें 'अवकहड़ा चक्र' नामका अेक गोल चक्र होता है। अुस चक्रके किनारे पर ग्रीक वर्णमालाके जैसे अक्षर लिखे हुअे होते हैं और अन्दरके खानेमें नक्षत्र, राशियाँ, गण, नाड़ियाँ आदि अनेक बात दी जाती हैं। प्रत्येक नक्षत्रके हिस्सेमें चार-चार अक्षर आते हैं। अुनमें से किसी अेक अक्षरको आद्य अक्षर मानकर अपनी पसंदका नाम रखनेका रिवाज हमारे यहाँ है। यह काम आम तौर पर जन्मपत्री बनानेवाले जोषी या पुरोहित किया करते हैं।

लेकिन मेरा नाम अिस पुराने ढंगसे नहीं रखा गया। मेरे जन्मसे कुछ दिन पहले अेक साधु हमारे यहाँ आया था। अुसने मेरे पिताजीसे कहा, "अिस बार भी आपके यहाँ लड़का ही पैदा होगा। अुसका नाम आप दत्तात्रेय रखिये, क्योंकि वह श्री गुरु दत्तात्रेयका प्रसाद है।" मेरे पिताजीने अुस साधुसे कुछ दान ग्रहण करनेको कहा तो अुसने कुछ भी लेनेसे अिनकार कर दिया और वह बोला, "आपके यहाँ लड़का पैदा होने पर हर गुरु द्वादशीके दिन आप बारह ब्राह्मणोंको अवश्य भोजन करवाअिये।" जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे, हमारे यहाँ प्रति वर्ष कार्तिकी कृष्णा द्वादशी (गुरु द्वादशी) के दिन बारह ब्राह्मणोंकी यह 'समाराधना' होती रही।

मुझे लगता है कि प्रत्येक व्यक्तिको अपना नाम स्वयं चुननेका अधिकार होना चाहिये। कअी लोगोंको खुद पसन्द न आनेवाला नाम सारी ज़िन्दगी मजबूरन् बर्दाश्त करना पड़ता है। अिस बारेमें लड़कियोंको कुछ हद तक खुशक़िस्मत समझना चाहिये, क्योंकि ब्याहके समय अुनके नाम बदले जाते हैं; लेकिन अुस वक़्त भी अुन्हें अपना नया नाम चुननेकी आज़ादी कहाँ होती है!

अगर मुझे अपना नाम चुननेके लिअे कहा जाता, तो मैं नहीं कह सकता कि मैं कौनसा नाम पसन्द करता। लेकिन मुझे अितना तो संतोष है कि मेरा नाम सुदूर आकाशके तटस्थ तारोंके हाथमें न रहकर मेरे प्रेमल माता-पिताके हाथमें रहा और अुन्होंने फलित ज्योतिषकी शरणमें न जाकर अेक विरागी भक्तके सुझावको स्वीकार किया।

बड़ी अुम्रमें अेक बार अेक आदरणीय व्यक्तिने मेरे नामका महत्त्व मुझे समझाते हुअे निम्नलिखित पंक्तियाँ कही थीं: —

"आपणासि करि आपण दत्त।
श्रीपती म्हणति यास्तव दत्त।"

अुस दिन मुझे मालूम हुआ कि अपने जीवनको समर्पित कर देनेसे ही दत्त नाम सार्थक होगा। अपना सर्वस्व समर्पित करना, किसी चीज़का लोभ न रखना, स्वात्मार्पण करना — अिस वृत्तिको यदि मैं अपनेमें पैदा कर सका, अिस आदर्शको अगर मैं अपने मनमें और जीवनमें अपना सका, तभी मेरा दत्त नाम सार्थक होगा, यह मैं जानता हूँ। लेकिन आज भी मैं यह नहीं कह सकता कि अिसके अनुसार मैं अपना जीवन बिता सका हूँ या अुस दिशामें जा रहा हूँ। अतः मेरे अिस नामके साथ अेक प्रकारका विषाद हमेशा ही रहता आया है।

'दत्त' और 'आत्रेय' मिलकर 'दत्तात्रेय' शब्द बना है। अत्रि ऋषिका लड़का ही आत्रेय है। 'त्रि' यानी त्रिगुण — सत्त्व, रज, तम। जो अिन तीनों गुणोंसे परे हो गया है, त्रिगुणातीत बन गया है, वह है अ-त्रि ऋषि। असूयारहित अनसूयाके पेटसे त्रिगुणातीत अत्रि

ऋषिने जिस पुत्रको जन्म दिया हो, वह स्वात्मार्पण करके ही तो अपने जीवनको सार्थक अेवं कृतार्थ बनायेगा।

लेकिन अिस दुनियामें नामके अनुसार गुण सर्वत्र कहाँ पाये जाते हैं?

२
दाहिना या बायाँ?

घरमें जो लड़का सबसे छोटा होता है, वह जल्दी बड़ा नहीं होता। मेरी स्थिति वैसी ही थी। अपने हाथसे भोजन करना भी सीखना पड़ता है, अिसका खयाल तक मुझे नहीं था। माँ खिलाती, जीजी खिलाती या भाभी खिलाती। कअी बार बाबा (बड़े भाअी) चिढ़कर कहते, 'अितना बड़ा अूँट जैसा हो गया है, लेकिन अभी तक अपने हाथसे नहीं खाता।' अैसी बातें सुनकर मुझे बुरा तो लगता, लेकिन अितनी टीका-टिप्पणी होने पर भी मेरे दिमाग़में यह बात कभी नहीं आयी कि अपने आचरण या आदतमें कुछ परिवर्तन करनेकी ज़रूरत है।

अेक बार घरके सब लोगोंने अेक षड्यंत्र रचा। सारे दिनकी अुछल-कूदके बाद मैं शामको थककर सो गया था। वहाँसे अुठाकर मुझे रसोअीघरमें ले जाया गया। परोसी हुअी अेक थाली मेरे सामने रखी गयी। फिर मेरे तीसरे भाअी विष्णुने चीमीको बुलाकर कहा, 'चीमी, अिस थालीमें भात-दाल मिलाकर तैयार कर।' चीमी मेरी भतीजी, मुझसे डेढ़ वर्ष छोटी थी। अुसने दाल-भात मिलाकर तैयार किया। फिर विष्णुने चीमीसे कहा, 'अब अिस दत्तूको खिला!' चीमी अेक निवाला हाथमें लेकर मेरे मुँहके सामने लायी। मैंने हमेशाकी आदतके मुताबिक भोलेपनसे मुँह खोलकर वह निवाला ले लिया। अचानक तालियोंकी आवाज गूंज अुठी। सब खिलखिलाकर हँसने लगे और चिल्लाने लगे, 'भतीजी काकाको खिला रही है, फिर भी अिसे शर्म

नहीं आती ! ' तब कहीं मुझे पता चला कि मेरी फज़ीहत हो रही है। मैं झेंप गया और मैंने दूसरा निवाला लेनेसे अिनकार कर दिया। मैं हड़बड़ाकर जाग गया और अुसी वक़्त मैंने अपने हाथसे खानेका निश्चय कर लिया।

लेकिन किस हाथसे खाया जाता है यह किसे पता था ? मैं असमंजसमें पड़ गया। सामने बैठे हुअे लोगोंकी ओर देखा और अुनका अनुकरण करनेकी कोशिशमें मैंने अपना बायाँ हाथ थालीमें डाला। जिस तरह आअीनेमें देखते समय दायें-बायेंकी गड़बड़ी होती है, अुसी तरह मेरी हालत हुअी। विष्णुने फिर ताना कसा, ' देखो अिस घोड़ेको अबतक यह भी नहीं मालूम कि अपना दाहिना हाथ कौन-सा है और बायाँ कौन-सा ! '

फिर तो मैं पिताजीके पास बैठकर भोजन करने लगा। दो-तीन बार हाथोंकी गड़बड़ी होने पर मैंने मनमें तय किया कि अिस शास्त्रमें निजी बुद्धि किसी कामकी नहीं। तब तो रोज़ाना खाना शुरू करनेसे पहले मैं पिताजीसे साफ साफ पूछ लेता कि ' मेरा दाहिना हाथ कौन-सा है ? ' जहाँ दाहिना हाथ अेकबार जूठा हो गया कि फिर अपने राम निश्चिंत हो गये।

अेक दिन अचानक ही मेरे दिमागने अेक आविष्कार कर लिया। मेरे दाहिने कानमें दो मोतियोंकी अेक बाली थी। अुस परसे मैंने यह सिद्धान्त बना लिया कि जिस तरफके कानमें बाली है वह दाहिनी बाज़ू है; अुस तरफके हाथसे खाया जाता है। अिस आविष्कारके बाद मैंने पिताजीसे फतवा मांगना छोड़ दिया। खाना शुरू करनेसे पहले मैं दोनों कानोंको टटोलकर देख लेता और जिस कानमें मोतियोंका स्पर्श होता अुस ओरके हाथसे भोजन करना शुरू कर देता। मेरे अिस आविष्कारकी तरफ किसीका ध्यान नहीं गया, क्योंकि अपनी हँसी होनेके डरसे मैं बड़ी होशियारीसे यह काम चुपचाप निबटा लेता था।

* * *

बचपनमें हमें बूट पहनने पड़ते थे। वास्तवमें हमारा खानदान पुराने ढंगका था। अुसमें अंग्रेजी फैशन घुस न पाया था। अंग्रेजी फैशनके साथ जो अेक तरहकी अकड़ होती है, और गरीबोंके प्रति तुच्छताका जो भाव रहता है वह हमारे घरमें लानेवाला कोअी नहीं था। फिर भी औरोंकी देखा देखी कअी विदेशी वस्तुअें तो हमारे घरमें पैठ ही गयी थीं। मेरे नसीबमें अेक रेशमी चोगा और विलायती बूट पहनना बदा था। चोगा पहननेमें तो ज़्यादा कठिनाअी नहीं होती थी। थोड़ी-सी जबर्दस्ती करने पर अुसके बटन लग जाते थे। लेकिन बूटोंमें दाहिना और बायाँ अैसी दो जातियाँ थीं, जो लाख कोशिश करने पर भी मेरी समझमें न आती थीं। हर रोज सवेरे अुठकर मुझे पिताजीसे पूछना पड़ता कि दाहिना बूट कौन-सा है और बायाँ कौन-सा?

अुन्होंने कअी बार पैर और बूटके आकारकी समानता मुझे समझानेका प्रयत्न किया, लेकिन वह बात किसी तरह मेरे दिमागमें बैठी ही नहीं।

मैं नहीं मानता कि पिताजीमें समझानेकी शक्ति कम होगी और न मैं यह माननेको तैयार हूँ कि मेरी समझ-शक्ति बिलकुल बेकार होगी। फिर भी मैं दाहिने-बायेंका वह शास्त्र तनिक भी न सीख सका। शायद अुनकी समझानेकी दिशा और मेरी समझनेकी दिशा दोनों अलग-अलग रही हों। अितना स्पष्ट है कि अुन दोनोंका मेल नहीं बैठता था। मनोविज्ञानके विद्यार्थियोंने अैसे कअी अुदाहरण देखे होंगे। गणितका कोअी रोज़मर्राके कामका सवाल दो व्यक्ति जबानी करते हों, लेकिन दोनोंकी हिसाब करनेकी रीतियाँ भिन्न हों तो अेक क्या कर रहा है अुसको दूसरा नहीं समझ सकता। अैसी ही कुछ हम दोनोंकी हालत होती होगी।

अिसके बाद मैं दोनों बूट अभेद बुद्धिसे चाहे जैसे पहनने लगा और कुछ ही दिनोंमें मैंने दोनों बूटोंको अितना कुछ निराकार बना दिया कि फिर तो पिताजीके लिअे भी यह पहचानना असंभव हो गया कि कौन-सा बूट दाहिना है और कौन-सा बायाँ!

३

साताराके संस्मरण

अपना परिचय देते समय नाम, स्थान और अुसका पता बताना चाहिये। मैंने तो सिर्फ अपना नाम बता दिया; दूसरी बातें बताना अभी बाकी है।

महाराष्ट्रके सातारा शहरमें यादो गोपाल पेठ (मुहल्ले) में लक्कड़-वालेकी कोठीमें हम रहते थे। मेरे जीवनके सबसे पहले संस्मरण साताराके ही हैं। अतः वहींसे प्रारंभ करना ठीक होगा।

अुलटी दुनिया

हम अपने घरके बरामदेकी सीढ़ियों पर खड़े हो जाते तो दाहिनी तरफ दूर 'अज़ीम तारा' या 'अजिक्य तारा' क़िला दिखाअी देता। अेक दिन मैंने यह आविष्कार किया कि सीढ़ियों पर खड़े होकर अगर हम अुठ-बैठ करें तो किला भी अूँचा-नीचा होता है। अिस अीजादके बाद मुझ पर अुस आनन्दको लूटनेकी धुन सवार हुअी। अुठ-बैठ करता जाता और मुँहसे 'अ . . . ब' 'अ . . . ब' बोलता जाता। यह तो अब याद नहीं कि 'अ . . . ब' ही क्यों बोलता था। मैंने तुरन्त ही अपनी यह खोज अपने भाअी गोंदू (गोविंद) और केशू (केशव)को बतायी। फिर तो वे भी 'अ . . . ब' 'अ . . . ब' करने लगे। पड़ोसके नामदेव दर्जीके लड़के नाना और हरि भी अिस खेलमें शरीक हो गये। अिस आनन्ददायी व्यवसायका आविष्कारकर्ता मैं हूँ, अिस गर्वसे मैं फूला नहीं समाता। मानवजातिके बाल्य-कालमें मनुष्यने जब लगातार अैसी खोजें की होंगी, तब अुसे भी क्या अैसा ही आनन्द हुआ होगा?

मेरी दूसरी खोज भी अितनी ही आनन्ददायी थी। अेक दिन मैं रास्तेमें दोनों पाँव फैलाकर 'अज़ीम तारा' की ओर पीठ करके खड़ा

हुआ और नीचे झुककर दोनों टाँगोंके बीचसे औंधे सिर 'अज़ीम तारा'को देखने लगा। सिर औंधा होनेसे सारी दुनिया औंधी दिखाअी देने लगी। दुनिया औंधी दिखाअी देती अुसका आनन्द तो था ही, लेकिन अिस तरह सारा दृश्य विशेष सुंदर, सुघड़ और आकर्षक दिखाअी देता था, यह अधिक आनन्दकी बात थी। हम रोज़ाना जो दृश्य देखते हैं अुसमें हमें कोअी खासियत नहीं मालूम होती। लेकिन अगर अुसकी तस्वीर खींची जाय तो वह दृश्य तस्वीरमें और भी ज्यादा सुन्दर दिखाअी देने लगता है। औंधे सिर दुनियाको देखा जाय तो वह भी अुसी तरह काव्यमय हो जाती है। 'नवं नवं प्रीतिकरं नराणाम्।'—यही सत्य है। हमेशा औंधे सिर लटकनेवाले चमगादड़को दुनियामें कोअी विशेष काव्य मिलता होगा अैसा नहीं लगता। खैर! अिस खोजको भी मैंने बड़ी शानसे सब पर ज़ाहिर किया।

अिस आनन्दको लूटते लूटते मुझे अेक अैसा विचार सूझा, जो किसी दार्शनिकको ही सूझ सकता था। आज भी मुझे आश्चर्य होता है कि अुस अुम्रमें मुझे वैसा विचार कैसे सूझा होगा। मैं औंधे सिर दुनियाको देख रहा था। मनमें शक पैदा हुआ कि अिस तरह जो दुनिया दिखाअी देती है वह औंधी है या सीधे खड़े होने पर जो दिखाअी देती है वही औंधी है? यदि सभी लोग सिर नीचे और पैर अूपर करके वृक्षकी तरह चलने लगें, तो सबको दुनिया अैसी ही औंधी दिखाअी देगी और अुसीको वे सीधी कहेंगे। फिर यदि मुझ जैसा कोअी नटखट लड़का अपने पैरों पर खड़ा हो जाय तो अुसे दुनिया वैसी ही दिखाअी देगी जैसी आज हमें दिखाअी देती है; और तब वह हैरान होकर कहेगा, 'देखो दुनिया कैसी अुलटी बन गयी है! सिर पर आसमान और पैरोंके नीचे ज़मीन!'

यह विचार मेरे मनमें आया तो सही, लेकिन अुसे प्रकट करनेकी अिच्छा मुझे नहीं हुअी। यह कहना मुश्किल है कि वह अिच्छा क्यों न हुअी। हो सकता है, बालकमें जो रहस्य-गोपनकी वृत्ति होती है अुसका

वह परिणाम हो या अिन विचारोंको प्रकट करनेके लिअे जितनी भाषा-समृद्धि होनी चाहिये अुतनी अुस वक्त मेरे पास नहीं थी, अिसलिअे अैसा हुआ हो। पर्याप्त भाषाके अभावमें मनुष्यजातिने कुछ कम दुःख नहीं अुठाया है।

* * *

मेरे पिताजीको फोटोग्राफीका शौक़ था। बक्स जैसे दो बड़े बड़े कैमरे हमारे घरमें थे। हमें सामने कुर्सी पर बिठाकर वे अेक काला कपड़ा अपने सिर पर ओढ़कर कैमरेमें देखते। अेक दिन मैंने अुनसे कहा, 'तस्वीर खींचनेके अिस यंत्रमें क्या दिखाअी देता है, यह ज़रा मुझे देखने देंगे?' अुन्होंने मुझे कैमरेके पीछे अेक चौकी पर खड़ा किया और सिर पर काला कपड़ा ओढ़ाकर कहने लगे, 'देखो, अुस सफ़ेद शीशे पर क्या दिखाअी देता है?' पहले तो मेरा यह ख़याल था कि काँचमें से आरपार दिखाअी देता होगा और मुझे दीवार पर लटकनेवाला पर्दा देखना है। पर मुझे तुरन्त ही मालूम हो गया कि सफ़ेद शीशे पर ही अक्स पड़ता है। लेकिन अरे, यह क्या? सामनेकी कुर्सी तो अुलटे पाँववाली दिखाअी देती है! और वह देखो, केशू कुर्सी पर आकर बैठ गया तो वह भी सिर नीचे और पैर अूपर करके चलता है। वह देखो, बिल्ली भी पूँछ अूपर अुठाकर केशूके पैरोंसे अपनी नाक रगड़ रही है। केशू जीभ निकालता है और कुत्तेकी तरह हाथ हिलाता है। अब मालूम हुआ कि सच्ची दुनिया औंधी ही है। पागलकी तरह हम पैरों पर चलते हैं, अिसलिअे हमें यों औंधा-औंधा दिखाअी देता है। दर-असल आकाश नीचे है और ज़मीन अूपर है!

* * *

पेटकी आग

अेक दिन अेक बेहद दुबला पतला मरियल-सा बूढ़ा हमारे दरवाज़े पर आया और कहने लगा, 'थोड़ें ताक द्या। पोटांत आग पडली आहे। (थोड़ा मट्ठा दो; पेटमें आग जल रही है।)' मेरे मनमें आया

कि अिस आदमीने भूलसे अंगार खा लिये होंगे, वरना पेटमें आग कहाँसे लगे? मैंने कहा, "मैं तुझे अेक लोटा पानी पिला दूँ, तो यह आग बुझ जायेगी!' मुझे आश्चर्य तो हो ही रहा था कि अिसने आग कैसे खा ली होगी! (श्रीकृष्ण भगवान दावानल खा गये थे, यह बात मैं अुस वक़्त नहीं जानता था।) अितनेमें भीतरसे विष्णु आया। अुसने बूढ़ेकी बात सूनी और अुसे अेक लोटाभर छाछ पिलायी। वह बूढ़ा आशीर्वाद देता हुआ चला गया। दूसरे दिन दोपहरको वह फिर आया और कहने लगा, 'पेटमें आग लगी है, थोड़ी-सी छाछ दे दो!' तो मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यह बूढ़ा लुच्चा है; कल ही तो अिसकी आग बुझा दी गयी थी! अतः मैंने गुस्सा होकर अुससे कहा, 'बदमाश कहींका! झूठ बोलता है? हट जा यहाँसे, वरना लात मार दूंगा।' लेकिन विष्णुने आकर अुलटे मुझीको डाँटा और अुसे फिर छाछ पिलायी।

बेचारा बूढ़ा! अगर मैं अुसकी सच्ची हालत जानता तो अुसका यों अपमान न करता; और यदि वह मेरे अज्ञानको जानता तो अुसे भी मेरे शब्दोंका बुरा न लगता। किसे मालूम कि मुझे अेक नासमझ बालक समझकर अुसने मेरी बातोंको नज़र-अन्दाज़ कर दिया होगा या बड़े घरका गुस्ताख़ लड़का समझकर मन ही मन वह मुझसे नाराज़ हुआ होगा?

लेकिन अब क्या हो सकता है? वह बूढ़ा अब थोड़े ही मुझे फिरसे मिलनेवाला है!

* * *

मेरा चन्दन-तिलक

काशी भाभीके मनमें मेरे प्रति विशेष पक्षपात था। वह मुझे नहलाती, अच्छे कपड़े पहनाती, मेरी छोटी-सी चोटीको गूथती और माथे पर कुंकुमका गोल टीका लगाकर मेरी तरफ आँखभर देखती।

यह सब देखकर केशू-गोंदू मेरा मज़ाक अुड़ाते। वे कहते, 'देखो, यह छोकरीकी तरह चोटी गुथवाता और कुंकुमका टीका लगवाता है।' मैं रोवासा हो जाता तो काशी भाभी मुझे हिम्मत बँधाती और कहती, 'बकने दो अुन लोगोंको! तुम अुनकी बात पर ज़रा भी ध्यान मत दो!' लेकिन आखिरकार मैं तो केशूकी बातोंका कायल हो गया और मैंने छोटी भाभीसे साफ़ साफ़ कह दिया कि 'हम कुंकुमका टीका हरगिज़ नहीं लगवायेंगे।'

अुस दिनसे केशू मुझे लाल चंदनका तिलक लगाने लगा। हम लोग स्मार्त शैव ठहरे, अिसलिअे हमारा तिलक तो आड़ा ही हो सकता था। मराठीमें तिलकको 'गंध' कहते हैं। 'गंध' लगाकर मैं माँके पास गया, दादीके पास गया और अुनसे पूछने लगा, 'मेरा 'गंध' कैसा दिखाअी देता है?' अुन्होंने कहा, 'बहुत ही सुन्दर!' बस, मैं नाचता-कूदता दौड़ा, 'माझें गंध छान छान! (मेरा तिलक सुन्दर है, सुन्दर है।)' अीसामसीहने कह रखा ह कि गिरनेसे पहले मनुष्य पर गर्व सवार होता है। अुस दिन मेरा यही हाल हुआ। मैं दौड़ता हुआ पिछले दरवाज़ेसे आँगनमें जाने लगा, तो बड़े ज़ोरकी ठोकर खाकर मुँहके बल नीचे गिर गया। सिरमें बड़ी चोट आयी, खूनकी धारा बह निकली। मेरी आवाज़ सुनकर सभी दौड़ आये। कोअी जाकर पिताजीको बुला लाया। अुन्होंने घावको धोकर अुसकी मरहमपट्टी कर दी। केशू कहने लगा, 'देखो तो दत्तूका ज़ख्म—गुणाकारके चिन्ह जैसा (×) है।' मानो वह भी मेरी कोअी बहादुरी ही हो। सभीको मुझ पर तरस आ रहा था; लेकिन तब भी काशी भाभीसे यह कहे बिना न रहा गया कि, 'देखो, कुंकुमके गोल टीकेकी जगह तिलक करवाने गये, अुसका यह फल मिला!' लेकिन जब अेक दफा काशी भाभीका साथ छोड़ ही दिया तो फिर अुस निर्णयमें कैसे परिवर्तन हो सकता था? मैंने कुछ अकड़कर कहा, 'चोट तो क्या, यदि सिर भी फूट जाय, तब भी मैं कुंकुमका गोल टीका नहीं लगवाअूँगा।'

मिर्च-बहादुर

लेकिन मेरी ज़िद या बहादुरीका बढ़िया अुदाहरण तो दूसरा ही है।

अेक दिन घरमें 'सांबार पूड' नामका गर्म मसाला तैयार हो रहा था। अुसके लिअे खोपरा, चावल और अलग अलग किस्मकी दालोंको तवे पर सेंका जा रहा था। विष्णु रसोअीघरमें जाकर सिककर लाल-सुर्ख बने हुअे चावल खानेके लिअे ले आया। लड़कोंको यदि यह टैक्स न मिले तो घरका कोअी भी काम निर्विघ्नतासे पूरा नहीं हो सकता, यह बात दुनियाकी सभी माताअें जानती हैं। मैं अक्सर रातको दूध जमानेके अैन मौक़े पर बिल्लीकी तरह रसोअीघरमें जा पहुँचता था और कभी अेक हाथ पर तो कभी दोनों हाथों पर मलाअी लिये बिना वहाँसे न टलता था। कभी कभी मलाअीके बजाय मुझे दूधका खुरचन ही मिल जाता। खैर!

मैंने विष्णुसे पूछा, 'तू क्या खा रहा है? मुझे दे दे न?' विष्णुको न जाने कैसी दुष्ट बुद्धि सूझी! अुसका स्वभाव नटखट अवश्य था, लेकिन दुष्ट नहीं था। पर अुस दिन अुसे दरअसल दुर्बुद्धि ही सूझी। अेक बोरेमें लाल मिर्चके सफ़ेद सफ़ेद बीज पड़े हुअे थे। अुसकी ओर अिशारा करके विष्णुने मुझसे कहा, 'मैं वही खा रहा हूँ जो अुस बोरेमें भरा है।' मैंने तुरन्त मुठ्ठीभर मिर्चके बीज लेकर मुँहमें डाल दिये! विष्णु भौचक्का होकर देखता ही रह गया और पूछने लगा, 'कैसा लगता है?' मेरे मुँहमें मानो आग-सी जल रही थी; फिर भी चेहरे पर अुसको कतअी प्रकट न करते हुअे मैंने कहा, 'बहुत ही बढ़िया है!' रोनेका मन तो हुआ, लेकिन जवाँमर्द क्या अैसे ही हार सकता है? मुँहमें भरे हुअे सभी बीज बड़ी दृढ़ताके साथ चबाकर किसी तरह निगल गया और मैंने मैदान मार लिया। मेरा चेहरा मिर्चकी तरह लाल-सुर्ख हो गया होगा, लेकिन मैंने चूँ तक न किया। दूसरे

दिन सुबह मेरी जो हालत हुअी अुसे तो मुझ जैसा मिर्च-बहादुर ही जान सकता है!

*　　　*　　　*

छूतछातका शास्त्र

छुआछूतका ख़याल मुझमें पहले-पहल कब पैदा हुआ, अिसका विचार जब मैं करता हूँ तब मुझे नीचेकी घटनाअें याद आ जाती हैं:

अेक दिन दोपहरको दो बजे हस्ब मामूल केशू स्कूल जानेके लिअे निकला। अुस ज़मानेमें सभी लड़के टोपी नहीं पहनते थे, कअी लड़के साफा भी बाँधते थे। केशूका साफा काला था और अुसमें सफ़ेद चित्तियाँ थीं। घरसे निकले चार छः मिनट भी नहीं हुअे होंगे कि वह बस्ता लेकर वापस आया। दादीने पूछा, 'बेटा, वापस क्यों आया?' तो कहने लगा, 'पाठशाला जाते समय रास्तेमें गधा छू गया, अतः नहानेके लिअे वापस आया हूँ।' दादीने तुरन्त ही थोड़ासा पानी गर्म किया, अुसके कपड़ोंको भिगो दिया, अुसे नहलाया, अुसके बस्ते पर तुलसीपत्रका पानी छिड़का और अुसे फिरसे स्कूल भेज दिया।

गधेको छूआ नहीं जा सकता, और यदि छू लिया जाय तो नहाना पड़ता है, यह छुआछूतका पहला पाठ मुझे देखनेको मिला।

अुसी दिन शामको अमरूद खानेकी मेरी अिच्छा हुअी। अिसलिअे माँने मुझे महादूके कन्धे पर बिठाकर बाज़ार भेजा। महादू हमारे घरका अीमानदार नौकर था। अुस समय पैसे मेरे हाथमें कौन देता? वे तो महादूके पास ही थे। अमरूद भी रास्तेमें नहीं खाये जा सकते थे, घर आनेके बाद ही पानीसे धोकर वे खाये जाते थे। मैं महादूके कन्धे पर चढ़कर बाज़ार गया। अमरूद मैंने पसंद किये और महादूने वे ख़रीदे। हम लौट रहे थे कि रास्तेमें विष्णु मिला। मैंने अुससे कहा, 'मुझे प्यास लगी है।' वह हमें पासके अेक गोलाकार हौज़ पर ले गया। हौज़के चारों ओर पीतलके बने हुअे तरह-तरहके प्राणियोंके मुंहमें से

पानी बह रहा था— अेक तरफ मनुष्यका, अेक तरफ गायका तो अेक तरफ सिंहका मुँह था। मेरे मनमें विचार आया कि मनुष्यके मुँहसे निकलनेवाला पानी तो जूठा हो गया। अतः मैंने आगे बढ़कर गायके मुँहसे निकलनेवाला पानी पी लिया। अितनेमें विष्णु चिल्लाया, 'अरे दत्तू, यह तूने क्या किया? अुस ओर तो महार (अछूत) लोग पानी पीते हैं। अुस नलको तो हमें छूना भी नहीं चाहिये। मेरी जिन्दगीमें यह पहला ही सामाजिक गुनाह था। अपना-सा मुँह लेकर मैं घर आया। फिर मुझको और मुझे अुठाकर लानेवाले महादूको भी नहाना पड़ा। मैंने सीख लिया कि जैसा गधा वैसा महार; दोनोंको छूआ नहीं जा सकता।

मुझे क्या पता था कि अिन घटनाओं द्वारा मैं धर्म नहीं, बल्कि अधर्म सीख रहा हूँ और किसी दिन मुझे अिसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा? अिस प्रकार सातारामें मैंने जो कुछ छुआछूतकी भावना सीख ली, वह पंढरपुर जानेके बाद बहुत कुछ चली गयी। लेकिन अुसका वर्णन मैं यहाँ नहीं करूँगा।

* * *

कंकड़-बहादुर

हमारी पाठशालाके रास्तेमें डाक-घर पड़ता था। तार-घर भी अुसीमें था। तारघरका अेक तार पासके पानीके हौज़में छोड़ दिया गया था। डांग्या नामक अेक मुसलमान लड़का हमारे पड़ोसमें रहता था। अुसने मुझे पहले-पहल बताया था कि 'जब आकाशमें बादल गरजते हैं और बिजली गिरती है तो वह अिस तारमें अुतरकर पानीमें समा जाती है। यह तार न हो तो सारा मकान जलकर खाक हो जाय।

अेक दिन पाठशालामें पारितोषिक-वितरणका समारोह था। हम बालवर्गमें पढ़नेवालोंको हेडमास्टर साहबने स्कूलमें आनेसे मना किया था। मैंने मनमें सोचा, 'हमें अिनाम भले ही न मिले, लेकिन वहाँका

मज़ा देखनेमें क्या हर्ज़ है ? ' मैं बढ़िया रेशमी जामा और तोतेवाली ज़रकी टोपी पहनकर स्कूल गया, लेकिन मुझे कोओी अन्दर जाने ही न देता। स्वयं हेडमास्टर साहब दरवाज़े पर खड़े थे। मैंने गिड़-गिड़ाकर अुनसे कहा, 'मुझे अिनाम न मिला तो भी मैं भीतर रोअूँगा नहीं। मुझे अन्दर जाने दीजिये; मैं चुपचाप बैठकर सब देखता रहूँगा।' लेकिन वह टससे मस न हुअे। अुन्होंने मुझे डाँटकर वहाँसे भगा दिया। लौटते हुअे मेरा हृदय भर आया; लेकिन रास्तेमें रोया भी कैसे जाता? घर जानेके लिअे पैर अुठ नहीं रहे थे। हेडमास्टर और पाठशाला पर मुझे बेहद गुस्सा आया। मैं डाक-घरके दरवाज़ेकी सीढ़ी पर बैठ गया। न जाने कितनी देर तक वहाँ बैठा रहा। गुस्सा किस पर अुतारा जाय? मनमें अेक विचार आया। अुस पर अमल करनेको मन हुआ। लेकिन साथ ही डर भी लगता था। बहुत देर तक 'भवति न भवति' करके—आगा पीछा सोचकर—आख़िर हिम्मत कर ही ली। अिधर अुधर अच्छी तरह देख लिया और मनके सारे गुस्सेको अिकट्ठा करके अपने निश्चयको मज़बूत बनाया। फिर धीरेसे रास्तेपरका अेक कंकड़ अुठाया और झटसे डाक-पेटीमें डाल दिया। मराठीमें अेक कहावत है, 'भित्यापाठीं ब्रह्मराक्षस' यानी डरपोकके पीछे ही डर लगा रहता है। मैंने कंकड़ डाला ही था कि रास्तेसे जानेवाला अेक आदमी मेरे पास आ खड़ा हुआ और अुसने मुझसे पूछा, 'क्यों बे छोकरे, तूने बक्समें अभी क्या डाला?' मेरी समझमें न आया कि क्या अुत्तर दिया जाय। तनिक ओंठ हिलाये। अितनेमें अक़्ल सूझी कि अैसे मौक़े पर ओंठ हिलानेकी अपेक्षा पैर हिलाना ही ज़्यादा मुफ़ीद होता है। अतः मैं वहाँसे अैसा सरपट भागा कि देखते-देखते कंकड़-बहादुर घर पहुँच गये!

४

बाबाका कमरा

मेरे सबसे बड़े भाअी बाबा हमारी नैतिकताके चौकीदार थे। हमारे आचरण पर अुनकी कड़ी निगरानी रहती थी, अिसलिअे हम सब पर अुनकी धाक जमी रहती थी। अगर हम कहीं घर छोड़कर रास्ते पर चले जाते, तो बाबा हमें पकड़कर घरमें ला बिठाते। असभ्य लड़कोंके मुँहसे हमारे कानोंमें गन्दे शब्द आ जायँ, तो हमारी ज़बान खराब हो जायगी। अिस डरसे हमें रास्ते पर नहीं जाने दिया जाता था।

बाबाके पढ़ने-लिखनेका कमरा मानो अेक बड़ी भारी सार्वजनिक संस्था ही थी। बाबा जब पाठशालामें पढ़नेके लिअे चले जाते, तो वहाँ सब सुनसान हो जाता। लेकिन बाकी सारे वक़्त वहाँ काव्यशास्त्र और विनोदके फव्वारे छूटते रहते।

बाबाको पुस्तकोंका बेहद शौक़ था; अतः हाअीस्कूलके विद्यार्थियोंके लिअे आवश्यक तथा अनावश्यक सभी तरहकी विभिन्न पुस्तकोंका ढेर अुनके कमरेमें लगा रहता था। चुनाँचे यह स्वाभाविक ही था कि जिस तरह गुड़को देखकर मक्खियाँ और चींटे जमा हो जाते हैं, अुसी तरह स्कूलके बहुत-से विद्यार्थी बाबाके कमरेसे चिपके रहते थे। बाबा पाठशालामें जितना पढ़ते थे, अुतना घर आकर विद्यार्थियोंको पढ़ाते थे। संस्कृत और नींद ये दो अुनके विशेष रूपसे प्रिय विषय थे। जब वे सोते न होते तो संस्कृतके श्लोक गुनगुनाया करते और जब श्लोकोंसे थक जाते तो लम्बी तानकर सो जाते! अुनकी नींद भी गूँगी नहीं थी। जहाँ बिस्तर पर पड़े कि तुरन्त ही वे खर्राटे भरने लगते।

बाबासे छोटे भाअी अण्णा थे। अुन्हें बाबाका खर्राटे भरना अच्छा नहीं लगता। वे सूतकी छोटीसी बत्ती बनाकर बाबाको 'हवा देते'।

'हवा देना' यह हमारा पारिभाषिक शब्द था। सूतकी बत्ती नाकम डालते ही ज़ोरसे छींक आती और नींद अुड़ जाती। लोक-जागृतिके अिस महान् सेवा-कार्यको 'हवा देना' जैसा सादा नाम दिया गया था।

अेक दिन मेरे मनमें आया कि चलो, अपने राम भी कुछ पुण्य लूटें। सूतकी बत्ती कहीं मिली नहीं, अिसलिअे दियासलाअी ले ली और बड़ी सावधानीसे बाबाके नकसूड़ेमें अुसका प्रवेश कराया। कहते हैं कि कलियुगमें कर्मका फल-तुरन्त मिल जाता है। मुझे अिसका ख़ासा अनुभव हुआ। अपने कर्मका गर्म-गर्म पुण्य-फल तो मुझे गालों पर चखनेको मिला ही, लेकिन अुसके अलावा 'द्वाड' (शरारती), 'मस्तीखोर' (अुत्पाती) और 'खोडकर' (खुराफाती) अैसी तीन अुपाधियाँ भी मुझे प्राप्त हुअीं!

बाबाको और अण्णाको पढ़ानेके लिअे भिसे मास्टर रातमें आते। भाषा, गणित और क्रोध ये अुनके ख़ास विषय थे। अुन्होंने घरमें पैर रखा कि हमें मार्जार-मूषक (चूहा-बिल्ली) न्यायके अनुसार किसी कोनेमें छिप जाना पड़ता। अतः भिसे मास्टरके प्रति हम छोटे बालकोंमें ख़ास तिरस्कार होना स्वाभाविक था। अेक दिन भिसे मास्टर पढ़ानेमें बड़े तल्लीन हो गये थे। मुझसे वह न देखा गया। रंगमें भंग कैसे किया जाय अिस विचारमें मैं पड़ा। (लेकिन 'पड़ा' भी क्योंकर कहूँ?) आख़िर कुछ न सूझ पड़ने पर दरवाज़ेके सामने खड़े होकर मैंने रेलकी सीटीकी तरह 'कुअू अू अू . . . . ' के महामंत्रका ज़ोरसे अुच्चारण किया।

बस, भिसे मास्टर कालिया नागकी तरह फुफकारने लगे। अुनकी नज़र मुझ पर पड़े अुसके पहले ही मैं जान लेकर वहाँसे नौ दो ग्यारह हुआ। अितनेमें गोंदूका दुर्भाग्य अुसे भगाते भगाते वहाँ ले आया। भिसे मास्टरने अुसीको पकड़कर अेक चपत जड़ दी और कहा, 'क्यों रे बदमाश, शोर क्यों मचाता ह?' अुस बेचारेको क्या मालूम? अुसने

तो मुँह फाड़कर ज़ोर ज़ोरसे रोना ही शुरू कर दिया। भिसे मास्टरके मनमें आया, यह तो और ही आफ़त हो गयी। क्योंकि जबतक वह चुप न हो जाय तबतक पढ़ाओीका काम कैसे आगे चलता?

लेकिन भिसे साहबका दिमाग़ बड़ा अुपजाअू था। अुन्होंने अेक दियासलाअी सुलगायी और गोंदूसे कहने लगे, 'मुँह बन्द कर, वरना देख, यह तेरे मुँहमें डाल देता हूँ।' मैं धीरेसे आकर पीछे खड़ा-खड़ा यह सारा करुण प्रसंग देख रहा था। पहले तो यही ख़याल मनमें आया कि मैं किसी तरह बच तो गया। फिर यह सोचकर हँसी भी आयी कि कैसे अचानक गोंदू आ फँसा और अुसकी अच्छी फज़ीहत हो रही है। लेकिन किसी भी तरह मन प्रसन्न नहीं हो रहा था। अिसमें कुछ न कुछ दोष है, मैंने कुछ अशोभनीय काम किया है, यह ख़याल भी मनमें आया; और मैंने अैसी शर्मका अनुभव किया, जिसका मुझे पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था। लेकिन यह शर्म किस बातकी है, अिसका पृथक्करण मैं तब नहीं कर सका। सज़ा पूरी हो जानेके बाद गोंदू बाहर आया। लेकिन अुसकी आँखसे आँख मिलानेकी मेरी हिम्मत न हुअी। मैंने अुसका कुछ अपराध किया है, अिसका तो स्पष्ट भान नहीं हो रहा था; लेकिन कुछ न कुछ ग़लती ज़रूर हुअी है, यह बात मनमें — ना, मनमें ही नहीं, हृदयमें जम गयी। अुस दिन सोनेके समय तक मैंने गोंदूके साथ विशेष कोमलताका व्यवहार किया, बग़ैर किसी कारणके अुसकी ख़ुशामद की। लेकिन फिर भी मुझे वह शांति नहीं मिली, जिससे मैं अुस दिनका प्रसंग भूल जाता।

* * *

घरमें हम कुछ भी अूधम मचाते या हमसे कोअी अपराध हो जाता, तो हमें बाबाके कमरेमें बैठा दिया जाता था। हमारे लिअे यह सज़ा तमाचे या बेंतसे भी बुरी होती थी। कमरेमें पहुँचे कि अेक कोना दिखाते हुअे अुनका हुक्म होता — 'बस तिकडे

देवा सारखा हात जोडून।' (देवताकी तरह हाथ जोड़कर वहाँ बैठ जा।) मेरा शरीर तो बैठ जाता, लेकिन मन थोड़े ही बैठ सकता था? मनमें विचार आता कि देवता कैसे विचित्र हैं! वे न तो खेलते हैं और न अूधम हो मचाते हैं; सिर्फ़ हाथ जोड़े बैठे रहते हैं! क्या वे सचमुच अैसे ही बैठे रहते होंगे? वास्तवमें अैसी शंका मनमें आनेका कोअी कारण नहीं था; क्योंकि घरमें सिंहासन परके जिन देवताओंको मैं देखता, वे अैसे ही बैठे रहते थे। दूसरा नहलाता तब वे नहाते और खिलाता तब वे खाते।

मैं बैठा-बैठा बाबाके कमरेका चारों ओरसे निरीक्षण भी किया करता। छड़ी कहाँ है, पुस्तकें कहाँ हैं, स्याहीकी बड़ी शीशी कहाँ है, बिस्तर कहाँ है, वगैरा सब कुछ देख लेता। दीपकके आसपास प्रदक्षिणा करते हुअे मकोड़ोंको देखकर मुझे बड़ा मज़ा आता और दीपकके भगवान होनेमें कोअी शंका न रहती। सभी मकोड़े अेक ही दिशामें गोल-गोल घूमते, लेकिन कोअी बड़ा मकोड़ा अचानक धूमकेतुकी तरह अुल्टी ही दिशामें घूमने लग जाता।

अेक दिन अिसी तरह बाबाके कमरेमें मेरी स्थापना हो गयी। अशोकवनमें से सीताको छुड़ानेके लिअे रामचन्द्रजीने हनुमानजी जैसे वीरोंको भेजा था। लेकिन मुझे बाबाके कमरेमें से छुड़ानेवाला कोअी नहीं था! अिसलिअे यद्यपि अुस समय शिवाजीका किस्सा मुझे मालूम न था, फिर भी मैंने अुन्हींका अनुकरण किया। वहाँ जो लपेटा हुआ बिस्तर पड़ा था, अुसके पीछे थककर सो जानेका मैंने बहाना बनाया। यह भी अच्छी तरह जान लिया कि बाबाने मुझे अुस स्थितिमें अेक-दो बार देखा है, और फिर किसीका ध्यान नहीं है अैसा मौक़ा देखकर पेटके बल रेंगता हुआ मैं वहाँसे भाग निकला! मुझे यों बाहर आया देख केशूको बहुत प्रसन्नता हुअी। अुसने मेरे पराक्रमकी सारी बातें मुझसे जान लीं और गोंदूके सामने मेरी ख़ूब तारीफ़ की। गोंदूमें दूरदृष्टि नामको भी न थी। अुसने जाकर

बड़ी भाभीसे सब कुछ कह दिया और मेरी पलायन-कलाका भेद सब पर प्रकट हो गया! लेकिन किसीने मेरे सामने अिस प्रसंगकी चर्चा नहीं की।

मैंने मनमें सोचा कि यह अच्छी युक्ति हाथ लगी है। दूसरी बार जब कोअी अपराध मुझसे हुआ और कमरेकी सज़ा मिली, तो मैंने फिरसे पहली ही युक्ति आजमायी। लेकिन अिस बार मुझसे बाबा ही ज्यादा होशियार साबित हुअे। अुन्होंने जानबूझकर मेरी ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया, और मैं खिसकते खिसकते मुश्किलसे दरवाज़े तक पहुँचा ही था कि वे अेकदम गरज पड़े: 'अरे चोरा, पळतोस होय? चल ये परत!' (अरे चोर, भागता है क्या? चल, वापस आ!) मैं पकड़ा गया अिसका तो मुझे दुःख न हुआ, लेकिन मेरी साख चली गयी, अब सब लोग मुझे हमेशा भगोड़ा चोर ही कहेंगे, अिस अस्पष्ट डरसे मैं बेचैन हो गया। शामको भोजन करते समय अण्णाने हँसते-हँसते यह घटना सबको कह सुनायी। मैं तो शरमके मारे पानी-पानी हो गया। अुस दिन भोजनमें मूलेकी तरकारी थी। शरमके कारण अुसकी अेक-अेक फाँक गलेसे नीचे अुतारते हुअे कैसे चुभ रही थी, अुसका स्मरण आज भी ताज़ा है।

बालकोंके भी अिज्ज़त होती है। फज़ीहतसे वे कुम्हला जाते हैं। बड़ोंकी अपेक्षा बालकोंमें अिज्ज़त और स्वमानकी भावना विशेष तीव्र होती है, अिसका ख़याल बड़े लोग भला क्यों नहीं करते?

दो दिनकी खुले आम फज़ीहतके कारण मैं कुछ लापरवाह-सा हो गया। अुसके बाद जब-जब मुझे बाबाके कमरेमें बन्द करके रखा जाता, तब-तब मैं वहाँसे भाग जानेका प्रयत्न करता और यदि अुस प्रयत्नमें पकड़ा जाता तो भी मुझे बिलकुल शरम न आती।

अेक दिन केशूकी दवात लुढ़क गअी। स्कूल जानेका समय हो गया था। स्याहीके बिना कैसे जाया जा सकता था? केशू रोवासा हो गया। अितनेमें मैंने अुससे कहा, 'केशू, बाबाके कमरेमें स्याहीकी

अेक बड़ी शीशी भरी हुअी है, अुसमें से चाहे जितनी स्याही मिल सकती है।' फिर तो पूछना ही क्या? केशूने दवात भरकर स्याही ली और चोरी पकड़ी न जाय अिसलिअे अुतना ही पानी अुस शीशीमें भर दिया। यह तो बड़ी सुविधा हो गयी, अतः केशू और गोंदू स्याहीकी हिफ़ाज़तके बारेमें लापरवाह हो गये। दिनमें चार बार दवात लुढ़कती और चार बार बाबाकी शीशीसे चुंगी वसूल की जाती! कुछ ही दिनोंमें स्याही बिलकुल पानी जैसी हो गयी और हमारी पोल खुल गयी। बाबाने डाँटकर कहा, 'केश्या, तू स्याही तो चोरता ही है, लेकिन अूपरसे अुसमें पानी डालकर बाकीकी स्याही भी बिगाड़ डालता है! ठहर, तुझे अच्छा सबक़ सिखाता हूँ।'

यह सुनकर मेरा विचार-यंत्र फिर चलने लगा! मैंने केशूसे कहा, 'हम लोग हर शनिवारको कोयलेसे पट्टी घिसते हैं, तब काला-काला पानी ख़ूब निकलता है। यदि हम वह शीशीमें भर दें, तो न स्याही पतली होगी और न हम पकड़े ही जायेंगे।' प्रयोग आज़मानेमें देर कितनी थी!

दूसरे दिन शीशीकी सब स्याही फट गयी। अुसके कारण केशू पर मार पड़ी। अुस गुनाहमें मेरा 'हाथ' नहीं था, सिर्फ़ 'दिमाग़' ही था, अिसलिअे मुझे गुनाह करनेका भान नहीं हुआ। ख़ैर, केशू पर मार तो पड़ी, लेकिन साथ ही कोयलेका या मामूली पानी बोतलमें न डालनेकी शर्त पर ज़रूरत हो तब माँसे कहकर बाबाकी शीशीसे स्याही लेनेका हक़ भी मिल गया।

गोंदूके भोलेपनके कारण मेरी अैसी अनेक युक्तियोंकी शोध घरके सब लोग जान जाते थे। लेकिन मैंने देखा कि मुझसे नाराज़ होने पर भी सभी मुझे प्यार करते थे। अेक तो यह कि मैं सबसे छोटा था और जो कुछ भी करता था, वह केशू-गोंदूकी मदद करनेकी नीयतसे करता था। अिसलिअे बाबाके कमरेके सब सदस्योंमें मेरी कीर्ति फैल गयी। सब मुझे अेक मज़ेदार खिलौना समझने लगे।

लेकिन अुसमें से अेक आकस्मिक परिणाम आया। अेक दिन अण्णाने कहा, 'या लबाडाला आमच्या खोलींतच नीजूं द्या!' (अिस लुच्चेको हमारे कमरेमें ही सोने दो)। बस, अुसी दिनसे मेरा बिस्तर बाबाके कमरेमें बिछानेका हुक्म महादूको दिया गया और अण्णा रोज़ाना सोनेके पहले मुझे थोड़ा-थोड़ा पढ़ाने लगे।

५

सीताफलका बीज

सातारामें हमारे घरके पीछे सीताफल (शरीफ़ा) का अेक छोटासा पेड़ था। फल लगनेका मौसम आता तो हम रोज़ाना जाकर यह देखते कि अुसमें कितने नये फल लगे हैं और पहले दिन देखे हुअे फल कितने बड़े हो गये हैं। जब हम फल तोड़ने जाते तब दादी कहतीं, 'ये फल अभी अन्धे हैं। अुन्हें तोड़ना मत। अुनकी आँखें ज़रा बड़ी होने दो। आँखें खुलीं कि फल पक गया समझो।'

गोंदूका दिमाग़ बचपनसे ही यांत्रिक शोध करनेकी ओर दौड़ता और अिसीलिअे वह आगे जाकर रसायन-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान और फोटोग्राफीमें प्रवीण हुआ। अेक दिन वह कहने लगा, 'हमारी आँखें अच्छी नहीं हैं। ये हिलती हैं। अिन्हें निकालकर अिनकी जगह सीताफलकी आँखें बिठानी चाहियें।' पिताजी जहाँ तसवीरका यंत्र (कैमरा) तिपाअी पर खड़ा करते कि तुरन्त ही गोंदू कहता, 'हमारे पैर अच्छे नहीं हैं। टेढ़े-मेढ़े हैं और बीचमें मुड़ते हैं। अिन्हें काटकर अिनकी जगह कैमरेके सीधे और मज़बूत पैर बैठा लेने चाहियें। फिर तो चलनेमें बहुत मज़ा आवेगा!'

अेक दिन सीताफल खाते-खाते अेक बीज मेरे पेटमें चला गया। मैंने घबड़ाकर केशूसे कहा, 'केशू, मैं सीताफलका बीज निगल गया।

अब क्या होगा ?' बात विष्णुने सुनी। मज़ाकका अैसा सुन्दर मौक़ा भला वह कैसे जाने देता ? अुसने मुँह लटकाकर कहा, 'अरेरेरे, यह क्या गज़ब किया ? अब तेरी तोंदीमें से पेड़ निकलेगा।' 'और फिर हम', केशूने आगे कहा, 'अुस पेड़ पर चढ़कर सीताफल खायेंगे। जैसे-जैसे हम फल तोड़ते जायेंगे, वैसे-वैसे तेरा पेट दर्द करने लगेगा; हम खाते रहेंगे और तू रोता रहेगा।'

मैं बेहद डर गया और पेटमें से पेड़ निकलनेके पहले ही रोने लगा। लेकिन अितनेमें यह शंका मनमें आअी कि 'क्या आजतक कभी अैसा हुआ है ? क्या पेटमें से पेड़ निकलते होंगे ?' अन्दरसे जवाब मिला—'हाँ-हाँ, अिसमें क्या शक ? अुस चित्रशालावाले चित्रमें साँपकी गेंड़ली। पर सोये हुअे शेषशायी विष्णुकी नाभीमें से तो कमलकी बेल अुगी है।'

अिस बातकी अच्छी तरह जाँच-पड़ताल करनेके हेतुसे चुपचाप दादीके पास जाकर मैंने पूछा, दादी क्या कमलके भी बीज होते हैं ?' दादीने कहा, 'होते क्यों नहीं, कमलके बीजोंको कमलककड़ी कहते हैं। अुपवासके दिन अुनके आटेकी लापसी बनाकर खाअी जाती है।' मैंने सोचा, भगवान विष्णु ग़लतीसे पूरीकी पूरी कमलककड़ी निगल गये होंगे, अिसीलिअे अुनकी तोंदीसे कमलकी बेल फूट निकली है।

अब मुझे सोलह आने विश्वास हो गया कि मेरे पेटमेंसे सीताफलका पेड़ ज़रूर निकलेगा और केशू जब चाहेगा तब अुसके फल तोड़कर खा सकेगा।

अिसके बाद कअी दिनों तक मैं रोज़ाना अपना पेट टटोलकर देखता कि कहीं अंकुर तो नहीं फूटा है ?

६

'विद्यारंभ'

साताराके महाराजाके हाथी रोज़ाना हमारे दरवाज़े परसे गुज़रते। महाराजाके तीन हाथी थे। अेक बूढ़ी हथनी थी और दूसरा अेक बड़ा हाथी। अुसका नाम दंत्या था, क्योंकि अुसके अेक ही दाँत था। तीसरे हाथीको 'छोटा हाथी' कहते थे, क्योंकि अुसके अेक भी दाँत न था। अेक दिन हम पड़ोसके नामदेव दर्जीकी दूकानमें बैठे थे; अितनेमें रास्तेसे जाता हुआ दंत्या हाथी दूकानके पास आया और अुसने दूकानमें अपनी सूँड़ डाली। हम डर तो गये, लेकिन दूकानसे भाग निकलनेके लिअे रास्ता ही नहीं था। नामदेवने समय-सूचकता बरतकर दूकानमें पड़ा हुआ अेक नारियल हाथीकी सूँड़में दे दिया, और हाथी भी नारियल लेकर चलता बना। नामदेवकी अिस होशियारीका किस्सा हम कअी दिनों तक कहते रहे थे। आज मैं समझता हूँ कि हाथीका आगमन कोअी आकस्मिक बात नहीं थी। किसी त्योहारके कारण नामदेवने ही महावतसे हाथीको नारियल देनेकी बात कही होगी, और महावत हाथीको अुसकी दूकानके पास ले आया होगा। वरना अुसी दिन दूकानमें नारियल कहाँसे आ जाता? लेकिन यह तो मेरी आजकी कल्पना है। अुस दिनका अनुभव तो यही था कि अेक महान दुर्घटनासे हम किसी तरह बाल बाल बच गये।

हमारे घरके पिछवाड़े दो पेड़ थे — अेक गूलरका और अेक सीताफलका। दोनोंके बीच अेक बड़ाभारी 'तुलसी-वृन्दावन'* था।

---

* मिट्टी या अींट-चूनेका बहुत बड़ा गमला जिसमें तुलसीका पेड़ लगाया जाता है।

अुसके आसपासकी ज़मीन हमेशा गोबरसे लीप-पोतकर साफ़ रखते और शामको पाँच बजे वहाँ हम रोटी खाने बैठते। रोटीके साथ घी, अचार, भाजी आदिमें से कुछ न कुछ होता ही था, लेकिन लोक-कथाओंकी खूराक भी हमें अिसी जगह नियमित रूपसे मिलती। मेरी काशी भाभीके पास कहानियोंको भंडार था। काशी भाभीको फ़ुरसत न होती तब मैं अपनी दादीसे कहानियोंका लगान वसूल करता। महादेव-पार्वतीका सारा जीवन-चरित्र पहले पहल मैंने अपनी दादीसे ही सुना था। आज भी जब-जब मैं भगवान महादेवका नाम सुनता हूँ, तब-तब दादीके वर्णन किये हुअे लम्बी-लम्बी जटावाले और लाल-लाल आँखोंवाले बाबाजीका ही चित्र मेरी आँखोंके सामने खड़ा हो जाता है।

हम जब घरमें खेलते, तब केशू हाथी बनता, गोंदू हाथीका महावत बनकर चलता और मैं दत्तू राजा बनकर केशूकी पीठ पर अम्बारीमें बैठता, क्योंकि मैं था सबसे छोटा। केशूके सिर पर गुलूबन्द बाँधकर अुसका सिरा सूँड़की जगह लटकता हुआ छोड़ते और घरके अन्दर ही हाथी-हाथी खेलते, क्योंकि हमें कोअी रास्ते पर जाने ही नहीं देता था। रास्ते पर जायँ तो खराब लड़कोंके मुँहकी गालियाँ कानमें पड़ें! मैं पाँच वर्षका हुआ, तब तक सड़क पर गया ही नहीं। बाज़ारमें जाता तो महादूके कंधे पर बैठकर। महादू हमारा वफ़ादार 'घाटी' नौकर था। अुसकी हुकूमत हम पर पूरी पूरी रहती। बाज़ारमें भी वह हमें पाँच क़दम भी नहीं चलने देता। यदि कुछ चला होअूँ तो दादीको राज़ी करके पीछेके दरवाज़ेसे हनुमानजीके मंदिर तक —यानी गलीके सिरे तक।

अैसी परिस्थितिमें परवरिश पाया हुआ बालक यदि व्यवहारमें बुद्धू जैसा दिखाअी दे, तो अुसमें क्या आश्चर्य? मेरे भाअी गोंदूमें

और मुझमें सिर्फ़ डेढ़ वर्षका अन्तर था। अुसका स्वभाव बिलकुल भोला था, अिसलिअे अुसकी तुलनामें मैं हमेशा होशियार माना जाता।

मैं पाँच वर्षका हुआ, तो ज़िद करने लगा कि मैं तो पाठशाला जाअूँगा। जब घरमें कोअी मेरी बात नहीं मानता, तो ढाअी-तीन बजे जब पिताजी आफ़िसमें होते और बड़े भाअी पाठशालामें पढ़ते होते, तब मैं माँके पास रोता हुआ रट लगाता कि 'मुझे स्कूल भेज दे।' आख़िर अेक दिन अूबकर माँने मुझे जाने दिया। सफ़ेद-सफ़ेद बुँदकीवाला अेक लाल साफ़ा मेरे सिर पर बाँधा गया और मैं पाठशाला गया। पाठशालाके लड़कोंके लिअे अेक नया खिलौना मिल गया। लड़के मुझे कभी रुलाते तो कभी खेलाते। अब तो अुस वक़्तके पेठे नामक अेक ही मास्टरकी याद है। अुनकी जेबमें हमेशा बताशे पड़े रहते। मुझे देखते तो पास बुलाकर वे अेकाध बताशा दिये बिना नहीं रहते। अिन बताशोंके कारण पाठशालाके मेरे शुरूके संस्मरण अत्यन्त ही मीठे रहे हैं।

लेकिन पहले ही दिन अेक संकट आ खड़ा हुआ। खेलते-खेलते सिर परका साफ़ा खुल गया। मुझे वह दुबारा बाँधना नहीं आता था, और यह बात लड़कोंके सामने कबूल करते शरम आती थी, अिसलिअे मैं बड़ी फिक्रमें पड़ा। अितनेमें अेक लड़केने अपने घुटनों पर साफ़ा बाँध कर मेरे सिर पर रख दिया, और मैं साफ़ा-सलामत घर आया।

फिर तो मैं हर रोज पाठशाला जाने लगा। धीरे-धीरे सड़क पर चलनेकी हिम्मत भी आयी और फ़िर सब मना करें तो भी मैं दौड़ता हुआ स्कूल चला जाता। मुझे पकड़नेके लिअे महादू अक्सर मेरे पीछे आता, अिसलिअे दौड़ता-दौड़ता भी मैं बार-बार सिंहावलोकन करता जाता।

मेरी अिस शाला-परायणताको देखकर अेक शुभ मुहूर्तमें मुझे पाठशालामें दाख़िल कराना तय हुआ। बहुत करके वह दशहरेका दिन होगा। सारी पाठशाला अिकट्ठी हुअी थी। स्कूलके सभी लड़के अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर आये थे। पुराने राज-महलके अेक बड़े दालानमें पाठशाला लगती थी, अिसलिअे मकानकी भव्यता तो थी ही। सभी लड़कोंको मिठाअी बाँटी गयी। पाठशालाके चपरासियोंको खीलके बड़े-बड़े लड्डू दिये गये। पाठशालाके मास्टरको चाँदीकी तश्तरीमें ख़ास बढ़िया मिठाअी दी गयी। और मैं ‘पट्टी पर बैठा’। अेक बूढ़े मास्टर मेरे पास आकर बैठे। अुन्होंने मेरी सिलेट पर बड़े-बड़े सुंदर अक्षरोंमें ‘श्री गणेशाय नमः ओ नामा सीधं’* लिख दिया। पट्टी पर हल्दी-कुंकुम वग़ैरा चढ़ाकर मेरे हाथों अुसकी पूजा करवायी। फिर अुन्होंने मेरे हाथमें अेक पेन्सिल दी, और मेरा हाथ पकड़कर मुझसे अेक-अेक अक्षर पर हाथ फिरवाने लगे और मुँहसे बुलवाने लगे। सारे अक्षरों पर अेक बार हाथ फेरा कि अुस दिनकी पाठशाला खतम। अिस तरह मैं शास्त्रोक्त विद्यार्थी बना और मुझे घर ले जाया गया।

विद्यारंभके अिस अुत्सवके लिअे मेरे हाथोंमें सोनेके कड़े, कानमें मोतीकी बालियाँ और गलेमें सोनेकी कंठी पहनायी गयी थी। अिस प्रकार नन्दीकी तरह साज सजा कर मुझे रोज़ाना महादूके साथ स्कूल भेजा जाता। अुसमें अेक बड़ी कठिनाअी पैदा हो गयी। ठीक दसकी घंटी लगते ही लड़के सिलेट और किताबोंका बस्ता लेकर बछड़ोंकी तरह छलाँगें मारते अपने-अपने घर जाते। मेरे शरीर पर सोनेके गहनोंकी जोखिम होनेसे हमारे हेडमास्टर मुझे अकेला नहीं जाने देते; और महादू तो कभी-कभी दस-दस मिनिट देरसे आता। शुरूसे ही मुझे बिना किसी अपराधके अैसी बग़ैर सज़ाकी

* ‘ॐ नमः सिद्धम्’ का बिगड़ा हुआ रूप।

सज़ा भुगतनी पड़ती । मैं हेडमास्टर साहबसे बड़ी आजिज़ीके साथ कहता, 'कंठी तो कपड़ेके अन्दर है, कड़े मैं बाँहोंके अन्दर छिपाकर दौड़ता-दौड़ता घर चला जाअूँगा । महादू मुझे रास्तेमें ही मिल जायेगा तो फिर क्या हर्ज है?' लेकिन हेडमास्टर साहब टससे मस न होते।

नअी पाठशालाके नौ दिन पूरे हुअे और मेरा यह सारा आनन्द काफ़ूर हो गया । हमारी पाठशालामें चाँदवडकर नामक अेक नये मास्टर आये, और दुर्भाग्यसे अुन्हें हमारी ही कक्षा सौंपी गयी। वे शरीरसे मोटे-ताज़े और हृष्ट-पुष्ट थे । अुम्र भी कुछ ज़्यादा नहीं थी । लेकिन वे जहाँ बैठते वहाँसे अुठनेमें अुन्हें बड़ा आलस आता । हर लड़केको अपने सबक़के लिअे अपनी सिलेट लेकर अुनके पास जाना पड़ता । हम सब अुनसे दूर अर्धगोलाकारमें बैठते। हम लड़के ही ठहरे, अिसलिअे बग़ैर शरारतके तो रह ही कैसे सकते? और शरारत न करें तो भी किसी-न-किसी कारणसे ग़लती हो ही जाती। सच पूछा जाय तो मुझमें शरारत थी ही नहीं। ग़लती क्या होती है और गुनाह किसे कहते हैं, यह भी मैं नहीं जानता था। क्लासका थोड़ा बहुत अनुशासन मेरी समझमें आने लगा था और अुसका पालन भी मैं करता था। जहाँ कुछ समझमें न आता वहाँ शून्य दृष्टिसे देखा करता। अुस वक़्तके मेरे फोटोको देखनेसे मुझे लगता है कि मैं बिलकुल बुद्धू-जैसा तो हरगिज़ नहीं दीखता था। सिर्फ़ चेहरे पर थोड़ा भोलापन या नज़ाकत झलकती थी। फिर भी किसी न किसी कारणसे मुझे रोज़ाना मार पड़ती। चाँदवडकर मास्टरके पास बाँसकी तीन हाथ लम्बी अेक छड़ी थी। आसन पर बैठे-बैठे लड़कोंको सज़ा देनेके लिअे यह दिव्य शस्त्र अुनके लिअे बहुत ही सुविधाजनक था। छड़ी खानेके लिअे वे गरजकर हमसे हाथ आगे बढ़ानेको कहते । हाथ बढ़ानेकी मेरी हिम्मत नहीं होती । लेकिन हाथ न बढ़ाता तो गुरु

महाराज पालथी मारी हुअी मेरी खुली जाँघ पर छड़ी जड़ देते। अिस कसरतके कारण हाथ बढ़ानेकी हिम्मत मुझमें आ गयी। यह दुःख रोज़ाना रहता। लेकिन चूँकि सभी लड़के मार खाते थे, असलिअे मैंने मान लिया कि स्कूलकी यह भी अेक आवश्यक विधि है। मुझे अैसा कभी लगा ही नहीं कि अिसमें कुछ अनुचित है या अिसकी चर्चा घर पर करनी चाहिये। लेकिन पाठशालामें जानेकी मेरी प्रफुल्लता कुम्हला गयी। अब तो पाठशाला जानेके लिअे मैं बहुत देरसे अुठता, और अुत्साह-हीन-सा पाठशालाका रास्ता काटता।

यह सिलसिला कअी दिनों तक चलता रहा। अेक दिन पाठशालासे घर आकर मैं पेज़ (पतला भात) खानेको बैठा। छड़ीकी मारके कारण हाथ तो लाल-सुर्ख हो गये थे। गरम भात किसी भी तरह हाथमें नहीं लिया जाता था। आँखोंमें आँसू भर आये। लेकिन अुन्हें बाहर भी नहीं निकलने दिया जा सकता था। भाभीने वह देखा और पूछा, 'स्कूलमें मास्टरने तुझे मारा तो नहीं?' मैंने साफ़ अिनकार कर दिया। लेकिन भाभी कुछ अैसी ही माननेवाली नहीं थी। अुसने सारे घरमें शोर मचा दिया कि दत्तूको मास्टर मारता है। मुझ बुद्धूकी समझमें यह न आया कि भाभी मेरा पक्ष लेकर अितना शोर मचा रही है। मैं तो समझा कि भाभी मेरी फ़ज़ीहत करना चाहती है। मार खानेवाला बालक ख़राब ही होता है, अितना शालेय नीतिशास्त्र मैं जानने लगा था; अिसलिअे मार पड़ने पर भी अुससे अिनकार करनेकी वृत्ति रहती थी। मुझे भाभी पर बहुत ग़ुस्सा आया। लेकिन शाम तक तो मैं सब कुछ भूल भी गया। अिस प्रकरणमें मेरे पीछे क्या क्या बातें हुअीं सो मैं क्या जानूं?

पाठशालाकी हमारी शिक्षा (!) हमेशाकी तरह बराबर चलती रही। अितनेमें अेक दिन अेक पुलिसका आदमी हमारी क्लासमें आया और चाँदवडकर मास्टरको बुलाकर ले गया। थोड़ी देर बाद वे वापस आये। अुन्होंने मुझसे पूछा, 'क्यों रे, तूने घर जाकर

कुछ कहा था ?' मैंने बिना कुछ समझे कहा, 'नहीं तो।' लेकिन अब चाँदवडकर साहबका सारा रुआब अुतर गया था। वे अपना-सा मुँह लेकर रह गये। वे कुछ नहीं बोले, और न अुस दिन मुझे या दूसरे लड़कोंको मार ही पड़ी। दूसरे दिन चाँदवडकर क्लासमें आये ही नहीं। अूँची कक्षाके विद्यार्थियोंसे हमें खुशखबरी मिली कि चाँदवडकरको बरखास्त कर दिया गया है। वे बेचारे नये-नये अुम्मीदवार थे।

अिसके बाद मैंने कअी मास्टरोंके हाथों मार खायी होगी, लेकिन बेचारे चाँदवडकरकी ज़िन्दगीकी शुरुआतमें ही मैं बाधक बना। बादमें मुझे मालूम हुआ कि मेरी भाभीके कहनेसे मेरे बड़े भाअीने कहीं शिकायत की थी और अुसीके परिणामस्वरूप पाठशालाकी छोटी-सी दुनियामें अितनी बड़ी क्रांति हो गयी थी!

अिस घटनाका परिणाम यह हुआ कि सारी पाठशालाका ध्यान मेरी ओर आकर्षित हुआ, और पीटनेवाले मास्टरके शिकंजेसे सारी क्लासको मुक्त करनेके कारण वर्गके लड़के मुझे दुआ देने लगे।

७

अक्का

हम सातारामें रहते थे। अेक दिन अेक गाड़ी हमारे दरवाज़े पर आकर खड़ी हुअी और अुसमें से मज़ेदार छींटकी साड़ी पहने अेक महिला नीचे अुतरी। अुसके पास सामान भी बहुत था। मैंने चिल्लाकर माँसे कहा, 'माँ, अपने यहाँ कोअी महिला आयी हैं।' मेरी अपेक्षा थी कि माँ अंदरसे बाहर आती है, तब तक वह दरवाज़े पर ही अिन्तज़ार करेगी। लेकिन वह तो सीधी अन्दर चली गयी, और घरके ही किसी व्यक्तिकी तरह घरमें घूमने-फिरने लगी।

बादमें पता लगा कि वह तो मेरी बहन थी और बहुत दिन ससुरालमें रहकर मायके आयी थी।

भोजनके बाद मेरी अुस बहनने, जिसे हम अक्का कहते थे, अपना सब सामान खोल-खालकर माँको दिखाया। अुसमें से पाँच-छः सुन्दर गोटियाँ निकलीं। अुन्हें मेरे हाथमें देते हुअे अक्काने कहा, 'दत्तू, ले यह गोटियाँ।' मैं खुश तो हुआ, लेकिन खुशीसे ज़्यादा मुझे आश्चर्य हुआ। बाबा हमें गोटियोंको छूने भी न देते थे। यह बात हमारे मन पर अंकित कर दी गयी थी कि गोटियोंको तो जुआरी लोग ही छूते हैं; गोटियोंका गन्दा खेल भले घरके बालकोंके लिअे नहीं होता। अिसलिअे गोल गोल गोटियाँ देखकर मुँहमें पानी भर आता, तो भी अुन्हें छूनेकी हिम्मत हमारी नहीं होती थी।

गोटियाँ लेकर मैं खुश तो हुआ, लेकिन अुनसे कैसे खेला जाता है यह किसे मालूम था? दौड़ता-दौड़ता मैं गोंदूके पास गया और अुससे कहा, 'देख, ये मेरी गोटियाँ!' लेकिन अुसे भी खेलना नहीं आता था। अिसलिअे हम दोनों आमने-सामने बैठकर गोटियाँ फेंकने लगे। जब हमारी गोटियाँ आपसमें टकरातीं, तो हमें खूब मज़ा आता। पर मनमें यह डर भी अवश्य था कि बाबाकी नज़र पड़ते ही न सिर्फ़ खेल बन्द होगा, बल्कि गोटियाँ भी ज़ब्त हो जायेंगी!

मैंने तुरन्त ही देख लिया कि घरमें अक्काको सब लोग बहुत प्यार करते हैं। माँ तो अुसकी होशियारी और प्रेमल स्वभाव पर फ़रेफ़्ता थीं। पिताजी सारे दिन यही जाननेको अुत्सुक रहते थे कि भागूको* कौनसी चीज़ पसन्द आती है, और अुसे क्या चाहिये। बाबा और अण्णा अुससे तरह-तरहकी मीठी हँसी-ठठोली करके अुसे प्रसन्न

---

* 'भागीरथी' का संक्षिप्त रूप 'भागू' था।

रखनेका प्रयत्न करते। मेरे मनमें यह बात अंकित हो गयी थी कि अक्काका बरताव ही आदर्श बरताव है। लेकिन अुसकी अेक बात मुझे खटकती थी। अक्का जब हाथमें पुस्तक पकड़ती, तो हमें शालामें बताये हुअे ढंगसे नहीं पकड़ती, बल्कि बायीं ओरके पन्नोंको मोड़कर दोनों जिल्दोंको मिला देती और अेक हाथसे पुस्तक पकड़कर तेज़ीसे पढ़ जाती। अुसके मुँहसे कहानी सुनना तो मुझे अच्छा लगता था, लेकिन अुसका यों पुस्तककी दुर्गत करना मुझे किसी भी तरह गवारा नहीं होता था!

अुसी दिनसे अक्काने मुझे पढ़ाना शुरू किया। मैं पहली कक्षामें था। मुझे पढ़ना नहीं आता था, फिर भी वह मुझसे चिढ़ती न थी। बड़े प्रेम और होशियारीसे पढ़ाती। पढ़ानेकी कला वह बहुत अच्छी तरह जानती थी। हररोज़ शामके वक़्त माँको 'रामविजय' पढ़ सुनाती। मैं भी वहाँ नियमित रूपसे जाकर बैठता।

अेक दिन अक्का माँसे कहने लगी, 'घरमें हमने जो तोता पाल रखा है, अुसे हम छोड़ दें।' मैंने आश्चर्यसे पूछा, 'क्यों? यह तोता तो हम सबका लाड़ला है।' अक्काने तुरन्त ही मधुर कंठसे नल-दमयन्तीका मराठी आख्यान गाना शुरू किया। अुसमें राजाके हाथमें फँसा हुआ हंस छूटनेके लिअे पंख फड़फड़ाता है, अपनेको छोड़ देनेके लिअे राजासे अनेक तरहसे गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करता है, और फिर भी जब राजा अुसे नहीं छोड़ता, तो निराश होकर अपनी जराजर्जर माँ, सद्यःप्रसूता पत्नी और छोटे बच्चोंका स्मरण करके विलाप करता है। जब यह प्रसंग आया तो अक्कासे न रहा गया। वह बरबस रो पड़ी। थोड़ी देर बाद अुसने आँसू पोंछकर हर पंक्तिका अर्थ करके हमें बतलाया। सबके हृदय हिल गये और तुरन्त तय हुआ कि तोतेको छोड़ दिया जाय। विष्णुने सीताफलके पेड़ पर पिंजरा टाँगा और धीरेसे अुसका दरवाज़ा खोल दिया। अेक क्षण भर तो तोतेको बाहर निकलना सूझा ही नहीं।

शायद वह आश्चर्यचकित होकर घबड़ा गया होगा। लेकिन दूसरे ही क्षण पिंजरेके सरिया परसे कूद कर दरवाजेमें बैठा और वहाँसे भर्र्र्-से आकाशमें अुड़ गया। अक्काकी आँखोंमें आनन्दाश्रु छलछला आये। केशूने तालियाँ पीटीं और हम सब गर्दनें अुठाकर यह देखने लगे कि तोता कहाँ जाता है। थोड़ी ही देर बाद तोता वापस आया और पिंजरे पर जा बैठा। विष्णु कहने लगा, 'अरे, वह तो हमें छोड़कर जानेवाला नहीं है। चलो, अुसे धीरेसे पकड़कर फिरसे पिंजरेमें बन्द कर दें।' लेकिन अक्काने साफ़ मना कर दिया। बादमें वह तोता हररोज़ सीताफलके पेड़ पर आकर बैठता, हम अुसे केला या मिरचियाँ देते, तो हमारे हाथसे लेकर वह खा लेता और अुड़ जाता। यह सिलसिला लगभग अेक महीने तक चलता रहा। कुछ दिनों बाद वह तोता दूसरे तोतोंमें मिल गया और फिर तो हमारे नज़दीक आनेसे भी डरने लगा।

कुछ दिन बाद अक्काके पति बेलगाँवसे हमारे घर आये। हमारे अण्णाके बराबर ही अुनकी अुम्र होगी, लेकिन पिताजी अुन्हें नाअीक कहकर आदरसे बुलाते थे और अुनको हाथ धोनेके लिअे खुद पानी देते थे। अैसे नौजवानकी अितनी खुशामद पिताजी क्यों करते हैं, यह मेरी समझमें न आता था। मुझे वह सारा कुछ अप्रिय-सा लगता था। अब तो अुनका नाम भी मैं भूल गया हूँ। अितना ही याद है कि वे न बहुत बोलते थे, न हममें घुलते-मिलते थे। अुनके कानकी बाली बार बार आगे आती थी और भोजनके समय वे बहुत थोड़ा खाते थे।

बाबाकी लड़की चीमी बहुत ही खुशमिज़ाज थी। घरके सब लोगोंका मानो वह खिलौना था। अपनी अुम्रके लिहाज़से वह बहुत ही होशियार थी। अक्का अुसे खेलाते-खेलाते कभी खिन्न हो जाती और माँसे कहती, 'आअी, शहाणं माणूस लाभत नाहीं।' (माँ, समझदार आदमी ज़्यादा नहीं जीता।) मेरे मनमें यही चिन्ता

घर किये बं ी है कि हमारी चीमी जब अितनी समझदार है, तो अिसे लम्बी आयु कैसे प्राप्त हो सकेगी।' लेकिन अक्काके शब्द अुसी पर लागू होनेवाले हैं, यह बात न अुस समय अक्काके ध्यानमें आयी, और न माँको ही वैसी आशंका हुअी।

अब हम सातारासे शाहपुर आ गये थे। सराफ़-गलीमें जो भिसेका घर था, वह हमारा ननिहाल था। वहाँ हम रहनेके लिअे आये थे। अक्का बीमार थी। हमारी बड़ी मामी रोज़ाना सबेरे अुठकर पेज़ (चावलका पतला भात) तैयार करती। और हम सब बड़ी कतारमें खाना खाने बैठते। सब्जीकी जगह हमें कद्दूकी बनाअी हुअी बड़ियाँ तलकर दी जातीं। सातारामें मैं चावलके आटेकी बड़ियाँ खानेका आदी था। मुझे कद्दूकी बड़ियाँ कैसे अच्छी लगतीं? मैंने अपनी नापसन्दगी अिस प्रकार मामीके सामने ज़ाहिर की कि, 'हमारे यहाँकी बड़ियाँ कौअेकी तरह काँव्-काँव् बोलती हैं; तुम्हारे यहाँकी चिड़ियाकी तरह चीव्-चीव् बोलती हैं। अिसलिअे तुम्हारी बड़ियाँ मुझे नहीं भातीं।' मेरा यह काव्य सब जगह फैल गया।

कुछ ही दिनोंमें घरमें सब जगह अुदासी और चिन्ता छा गयी। अक्काको सख़्त बुख़ार आने लगा था। डॉक्टर शिरगाँवकरने कहा कि 'नवज्वर' (टाअिफॉअिड) है। प्रसूतिके बादका टाअि-फॉअिड! फिर कहना ही क्या? अेक दिन सबेरे अुठते ही हमें सामनेके घरसे जीमनेका न्यौता मिला। हम सब लड़के वहाँ जीमने गये। न जाने क्यों हमें सारा दिन वहीं रोक रखनेकी कोशिशें होने लगीं। मैं घर जानेकी बात करता, तो कोअी बड़ा लड़का रोककर कहता, 'चल, तुझे अेक कहानी सुनाअूँ।' कहानी पूरी होती तो कोअी गाने लगता। आख़िर शाम होने लगी। अब मुझे लगा कि सारा दिन हमें यहाँ रोक रखनेमें कुछ रहस्य ज़रूर है। मैं तंग आकर रोने लगा। मुझे रोता देखकर समवेदनाके तौर पर गोंदू भी

रोने लगा। जिनके घर हम गये थे, वहाँके लड़के भी परेशान हो अुठे। आखिर अुन्होंने अेक नाटक खेलनेका शगूफ़ा छोड़ा। किसी लड़केने अेक लंबा साफा बाँधकर अुसका सिरा नाकसे नीचे लटकता हुआ रखा और अिस तरह अेक सूँड़वाले लम्बोदर गणेशजी तैयार हुअे। दूसरे किसीने दो-चार झाड़ुओंको अिकट्ठा बाँधकर मोर-पंखा बनाया और वह अपनी पीठ पर बाँधकर स्वयं मयूरवाहनी सरस्वती बन गया। फिर गणेशजी गाने लगे और सरस्वती नाचने लगी।

नाटक तो बड़ी देर तक चलता रहा; लेकिन किसी भी तरह मज़ा नहीं आ रहा था। अितनेमें पड़ोसके दूसरे अेक लड़केने आकर मुझसे कहा, 'तेरा बाप ज़ोर-ज़ोरसे रो रहा है।' अुसके ये शब्द सुनकर मुझे बड़ा ग़ुस्सा आया। मेरे पिताजीके लिअे अुसने 'तेरा बाप' जैसे अपमानजनक शब्दोंका प्रयोग किया था। और क्या मेरे पिताजी कभी रो सकते हैं? अपने छोटेसे जीवनमें मैंने कभी वैसा नहीं देखा था; अतः मैंने चिढ़कर अुससे कहा, 'तू झूठा है।' आखिर नौ बजे हमें घर ले जाया गया। वहाँ सब जगह मातमकी शान्ति छायी हुअी थी। कोअी किसीसे बोलता न था। श्मशानसे लौटे हुअे लोग गरम पानीसे नहा रहे थे। घरमें बस अितनी ही हलचल दिखाअी देती थी। अेक कोनेमें चावल भरा हुआ आधा बोरा रखा था। अुस पर पिताजी अेक महीन चद्दर ओढ़कर बैठे थे — अैसा लगता था मानो ठंडसे काँप रहे हों। मुझे गोदमें लेकर दुःखी स्वरसे कहने लगे, 'दत्तू, अपनी भागू (भागीरथी) हमें छोड़कर दूर चली गयी।' मेरी समझमें नहीं आता था कि आखिर हुआ क्या है। दूर यानी कहाँ तक? किस लिअे? पिताजी अितने दुःखी क्यों हैं? घरमें कोअी किसीके साथ बोलता क्यों नहीं? पिताजी तो बार-बार अेक ही वाक्य कहते थे, 'अपनी भागू हमें छोड़कर दूर चली गयी।'

मैं अन्दर गया। मैंने देखा कि माँ कपड़ा ओढ़कर सो गयी है। मुझे क्या मालूम कि माँ सोयी नहीं है, बल्कि वज्राघातसे बेसुध होकर पड़ी है! मेरी मौसी असके पास बैठी थी। मुझे देखकर वह रोने लगी तो मामा अस पर नाराज हुअे। कहने लगे, 'अगर अिस तरह तू रोती रहेगी, तो बच्चे क्या करेंगे?'

रात जैसे तैसे बीती। दूसरे दिन माँने कुछ भी खानेसे अिनकार कर दिया। सब लोगोंने असे हर तरहसे समझानेकी कोशिश की मगर असने अेक न सुनी। तब आखिरी अपायके तौर पर राम मामा मुझे असके पास ले गये और मुझसे बोले, 'तू अपनी माँसे कह कि यदि तू खाना न खाये तो मेरे गलेकी क़सम।' मैं कहने ही वाला था कि माँने दृढ़तापूर्वक मना किया 'दत्तू, वैसा कुछ मत बोल।' फिर तो मातृभक्त दत्तूकी ज़बान खुलती ही कैसे? सभी मुझ पर नाराज़ होने लगे। मेरे प्रति राम मामाका तिरस्कार-भाव तो स्पष्ट दिखाअी दे रहा था। लेकिन मैं किसी तरह टससे मस न हुआ।

'शहाणं माणूस लाभत नाहीं' ये अक्काके शब्द आखिर अक्काके संबंधमें ही सार्थक हुअे। माँ रोज़ाना अिन शब्दोंको याद करती और रोती। आखिरी दिनोंमें अक्काने अनन्नास खानेको माँगा था, अिसलिअे माँने असके बाद फिर कभी अनन्नास नहीं खाया।

अक्काके संबंधमें मेरे प्रत्यक्ष संस्मरण तो अितने ही हैं। लेकिन फिर भी छुटपनसे अिन्हीं संस्मरणोंका ध्यान करके मैं अपने मनमें अनका पोषण करता आया हूँ। आम तौर पर हिन्दू कुटुम्बमें लड़कियोंकी अपेक्षा की जाती है। लड़के तो सब लाड़ले और लड़कियाँ सब अपेक्षिता, यह हालत अनेक प्रान्तोंमें है। कन्नड़ भाषामें तो यह कहावत ही है कि 'साकु सावित्री बेकु त्र्यंकप्पा' यानी जब बहुत लड़कियाँ हो जायँ तो लड़कीका नाम रखा जाय सावित्री,

जिसका मतलब यह हुआ कि साकुं यानी बस, अब लड़की नहीं चाहिये; और जब लड़कोंके लिअे भगवानसे प्रार्थना करनी हो तो लड़केका नाम व्यंकटेश रखा जाय। बेकु यानी चाहिये।

लेकिन हमारे घरकी हालत अिससे अलग थी। हमारे यहाँ अक्काकी स्थिति सब तरहसे स्पृहणीय थी। बाबा-अण्णाकी तरह ही अुसको प्यार किया जाता था और लड़कोंकी तरह ही अुसकी शिक्षा-दीक्षा हुअी थी। मनुष्यकी लगभग सभी शुभ वृत्तियाँ कौटुम्बिक वातावरणमें ही खिलती हैं। अुसमें भी माँके बाद यदि लड़कों पर ज्यादासे ज्यादा किसीका प्रभाव पड़ता है तो वह बड़ी बहनका होता है। मनुष्यका अपनी माँके साथका संबंध असाधारण होता है। अपनी पत्नीके साथका अुसका संबंध अेकान्तिक और अद्वितीय ही होता है। अपनी लड़कीका संबंध भी अैसा ही वैशिष्ट्यपूर्ण होता है। लेकिन जो संबंध आसानीसे व्यापक बन सकता है, जिसमें सारी स्त्री-जातिका अन्तर्भाव हो सकता है, वह तो भाअी-बहनका ही है। मैं बहुत छोटा था तभी मेरी अिकलौती बहन गुज़र गयी, अिसलिअे ज़िन्दगीका मेरा यह अंग पहलेसे ही शून्यवत् हो गया है। स्त्रियोंकी भक्ति मैं दूरसे ही करता हूँ, स्वाभाविक ढंगसे अुनसे परिचय प्राप्त करना मुझे आता ही नहीं। भगिनी-प्रेमकी भूख रह ही गयी है। जैसे-जैसे जीवनकी व्यापकता और सर्वांग-सुन्दरताका आदर्श परिपक्व होता गया, वैसे-वैसे अिस विचारसे मन हमेशा अुदास रहा है कि मेरे अेक बहन होती तो कितना अच्छा होता। अपनी बहन न होनेके कारण नअी-नअी बहनें बनाना नहीं आता, यह कोअी मामूली कठिनाअी नहीं है।

अपने आदर्शके अनुसार मैं अैसी कअी बहनोंको जानता हूँ जो पूजनीया हैं। और मुझे पूरा विश्वास है कि अुनके परिचयसे मैं अवश्य पावन और अुन्नत बनूँगा। लेकिन हृदयकी भूख तो अक्काके अिन थोड़े-से पवित्र संस्मरणोंसे ही बुझानी रही।

८
पैसे खोये

खराब लड़कोंसे हम गंदी भाषा सीख लेंगे, अिस डरसे जैसे हमें किसी भी समय घरमेंसे रास्ते पर नहीं जाने दिया जाता था, अुसी प्रकार किसी भी समय किसी भी कारणसे हमारे हाथको पैसेका स्पर्श नहीं होने दिया जाता था। अच्छे घरके लड़कोंको जैसे हड्डी या बीड़ीको नहीं छूने देते, वैसे और अुतनी ही कड़ाओसे हमें पैसेसे दूर रखा गया था। पैसे-रुपयेको हमें छूना नहीं चाहिये, यह बात हमारी रग-रगमें अुतर गयी थी। फिर भी अुसी कारण कअी बार गोल-गोल सिक्के हाथमें लेकर खेलनेका मन अवश्य हो जाता था।

अेक बार शाहपुरमें नारायण मामाके साथ गाड़ीमें बैठकर मैं डॉक्टरके यहाँ गया था। लौटते समय मैंने मामासे कहा, 'नारायण मामा, नारायण मामा, आपके पास जो पैसे हैं, अुन्हें मुझे जरा हाथमें लेकर देखने दीजिये न।' माँगनेकी हिम्मत तो मैंने की, लेकिन मनमें लगभग पूरा यक़ीन ही था कि 'छोटे बालकोंको पैसेको छूना ही नहीं चाहिये', यह चिरपरिचित स्मृति-वाक्य नारायण मामा मेरे सिरमें दे मारेंगे। लेकिन अैसा कुछ न हुआ। अुल्टे अुन्होंने दो-तीन आनेके पैसे मेरे हाथमें दिये। मेरे आनन्दकी सीमा न रही। मुट्ठीभर पैसे मेरे हाथमें आये, भला यह कोअी मामूली बात थी? अेक-अेक पैसा लेकर मैंने गोल-गोल फिराया। सब पैसे बार-बार गिनकर देखे। (अुस वक़्त मुझे सौ तक गिनना आता था।) अिसके बाद पैसोंके साथ खेलनेका मज़ा खतम हो गया, लेकिन फिर भी पैसे मुट्ठीमें ही रख लिये, और कोअी भिखारीका लड़का गाड़ीकी पिछली सीढ़ी पर न बैठे, अिसलिअे हाथ गाड़ीसे बाहर लटकाये मैं पीछे झुककर देखने लगा।

हनुमानके मंदिर तक आये होंगे; वहाँ कुछ लड़के गुल्ली-डण्डा खेल रहे थे। अुस ओर ध्यान गया और मुट्ठीका खयाल कम हुआ। मुट्ठी ढीली पड़ गयी और हाथमेंके पैसे नीचे गिर गये। अिस भयंकर दुर्घटनासे मैं अितना दिङ्मूढ़ बन गया कि मुझे सूझ ही न पड़ा कि क्या किया जाय। हमारे कहनेसे गाड़ी रुक सकती है, यह बात तो ध्यानमें आने जैसी थी ही नहीं। यह मैंने कभी देखा नहीं था कि छोटे बालकोंकी अैसी अिच्छाकी कद्र की जाती है। मामाजीसे यदि कहूँगा, तो वे नाराज़ होंगे, अिसका मनमें विश्वास था। अिसलिअे डरपोक बालकोंकी चुपचाप बैठ रहनेकी सार्वभौम नीतिका मैंने पालन किया। गुल्ली-डण्डा खेलनेवाले लड़कोंमें से अेकने पैसोंको गिरते देखा। वह धीरे-धीरे रास्ते पर आया। अुसने पैसे अुठा लिये, मेरी ओर देखा और पैसे जेबमें डाल लिये। मैं शून्य दृष्टिसे अुसकी तरफ़ देखता रहा। अुसने भी अेक नज़र मेरी ओर डाली और फिर जैसे कुछ हुआ ही न हो अैसा मासूम चेहरा बनाकर आहिस्तेसे चलकर वह खेलमें शामिल हो गया। आसपासके लड़के अुसकी ओर देखकर राज़दाना ढंगसे मुस्करा दिये। अुनकी मुस्कराहटमें अुनके दोस्तको जो अनपेक्षित लाभ हुआ था अुसके लिअे अभिनन्दन और अुन्हें वैसा मौक़ा न मिला अिसकी औीर्ष्या — अैसे दोनों भाव स्पष्ट दिखाअी देते थे। मुँह परसे मनुष्यका अितना सूक्ष्म भाव पहचान लेने जितनी अक़ल मुझमें थी। लेकिन अैसे समय कुछ किया भी जा सकता है, यह न सूझने जितना बुद्धूपन भी मुझमें था!

जब छोटे-छोटे बालक कक्षामें ध्यान नहीं देते, जल्दी जवाब नहीं देते, अथवा अिशारेसे कही हुअी बात तुरन्त नहीं करते, तब जो शिक्षक और घरके लोग अुबल पड़ते हैं, अुनके लिअे मेरा यह किस्सा ध्यानमें रखने जैसा है। बाल-मानसका विकास अेक निश्चित क्रमसे नहीं होता। अुसमें अनेक संस्कारोंके कारण अितनी

विविधता होती है कि वह बड़ोंकी समझमें नहीं आ सकती। अितनी-सी बात भी यदि वे ध्यानमें रखेंगे, और बच्चोंके साथ बरताव करते समय अपनेमें आवश्यक धीरज पैदा कर सकेंगे तो बाल-द्रोहसे बच जायेंगे।

आख़िरकार गाड़ी घरके दरवाज़े पर आकर खड़ी हुअी। मामा कहने लगे, "दत्तू, पैसे ला तो देखूं।' दत्तू पैसे कहांसे लाता? वह तो दीवानेकी तरह टुकुर-टुकुर देखता ही रह गया। लेकिन कुछ तो जवाब देना ही चाहिये था। मैंने कहा—'पैसे तो हाथमें से गिर गये!'

'कहाँ गिर गये? कैसे गिर गये?'

'हनुमानके मंदिरके सामने, जहाँ वे लड़के खेल रहे थे।

'तब पगले, मुझे अुसी वक़्त क्यों नहीं बताया?'

'लेकिन अेक लड़केने अुन्हें अुठाया, यह मैंने देख लिया था।'

मामा तिरस्कारसे हँसे। अिसके अुत्तरमें मैंने अपना लज्जित और दीन चेहरा अुन्हें दिखाया। मामा न मुझ पर नाराज़ हुअे और न मेरे सामने घरमें किसीसे अुन्होंने अुसके संबंधमें कुछ कहा ही। बच जानेके अिस आनन्दसे मैं तो अपनी झेंप भूल गया। अपनी प्रिय बहनका सबसे छोटा लड़का घर आया है, अुस पर नाराज़ कैसे हुआ जा सकता है? अिस अुदार विचारसे ही मामाने मनकी बात मनमें रखी होगी। यह लड़का निरा बेवकूफ़ है, अैसा निर्णय भी अुन्होंने अपने मनमें कर लिया होगा, और आखिर वह बात वे भूल भी गये होंगे। लेकिन मेरे सामने तो अुस दिनका सारा दृश्य अुस दिन जितना ही आज भी ताज़ा है। आप यदि कहें, तो हनुमानके मन्दिरके सामनेकी वह जगह आज भी बराबर दिखा सकता हूँ।

६

ठूँठा मास्टर

सातारासे हम अकसर शाहपुर आते। शाहपुर और बेलगाँव दोनों लगभग अेक ही हैं। शाहपुरमें हमारा ननिहाल था। अुन दिनों रेल न थी। अिसलिअे मुसाफ़िरी बैलगाड़ीसे होती थी। अेक बार हम बैलगाड़ीमें बैठकर सातारासे शाहपुर आये थे, अुसकी मुझे अभी तक याद है। हम अपने मँझले भाअी विष्णुकी शादीमें जा रहे थे। अक्का, अण्णा और बाबासे विष्णु छोटा था। वह बाल-विवाहका ज़माना था — लड़की आठ बरसकी और लड़का बारह बरसका हो जाता तो अुनके ब्याहकी फ़िक्र माँ-बापों पर सवार हो जाती। अिसीलिअे विष्णुकी शादी भी छोटी अुम्रमें होने जा रही थी।

रास्तेमें अेक सुन्दर पत्थरके पुलके नीचे नदीके किनारे हम अुतरे थे। पिताजी साथमें नहीं थे। गाड़ीकी मुसाफ़िरीमें बहुत समय लगता था और अुन्हें अितनी छुट्टी मिलना संभव न था। अिसलिअे वे बादमें डाकके ताँगेमें आनेवाले थे। मेरे भाअीने नदीके किनारे तीन पत्थर जमा कर चूल्हा बनाया और रसोअी बनानेकी तैयारी की। अितनेमें माँने कहा — 'यहाँ रसोअी नहीं बनायी जा सकती, चलो आगे चलें।' अैसा मज़ेदार पुल, शीतल छाया और भूखका समय। अैसी हालतमें माँने कूच करनेका हुक्म क्यों दिया होगा, यह हमारी समझमें नहीं आया। हम सब माँकी तरफ़ देखते ही रह गये। माँने कहा, 'नदीके पानीमें सब बुलबुले भरे हैं।' देखता हूँ तो सचमुच पानी धीरे-धीरे बह रहा था और अूपर बहुत-सा गन्दा फेन और बुलबुले थे। मैंने दलील पेश की, 'अूपर भले ही

बुलबुले हों, पर नीचेका पानी तो साफ़ है न!' माँने कहा, 'ना, यह नदी अपवित्र है। शास्त्रमें कहा है कि जब नदीमें बुलबुले हों, तब अुस पानीको छूना भी न चाहिये। अैसी नदी रजस्वला समझी जाती है।'

शाहपुर पहुँचे तो वहाँकी दुनिया ही अलग थी। ज़मीन सब लाल-लाल। ज़मीन पर तनिक बैठ जायँ तो कपड़े लाल हो जाते। पहले दिन मैंने कुछ लाल कंकर अिकट्ठे किये; लेकिन बादमें अुनका वह आकर्षण नहीं रहा। मेरे मामाकी लड़की मुझसे जिस भाषामें बोलती, वह मेरी समझमें पूरी नहीं आती। मेरी भाषा मराठी, अुसकी कोंकणी। सब जंगली-जंगली जैसा लगता था। लाडू बहन मुझसे कहने लगी, 'चल! हम ठूँठे मास्टरकी पाठशालामें पढ़ने चलें।' ठूँठे मास्टर सचमुच अेक विचित्र व्यक्ति थे। कद ठिगना, स्वभाव अुग्र और दोनों हाथ ठूँठे। धोती बदलनी होती तो स्त्रीकी मदद लेनी पड़ती! लेकिन पढ़ानेमें बड़े माहिर थे। अुनके यहाँ ओसारेमें लड़के कतारमें बैठते। वे हर लड़केके पास बारी-बारीसे आकर बैठते, पैरमें सिलेट-पेन्सिल पकड़कर पट्टी पर सुन्दर अक्षरोंमें लिखते और कहते 'अिस पर हाथ फिरा'। कागज़ भी ज़मीन पर रखकर और पैरके अँगूठे और पासकी अँगुलीमें कलम पकड़कर अितनी तेज़ीसे और अितने सुन्दर अक्षर लिखते, मानो आजकलके अख़बारोंके रिपोर्टर हों!

चाँदवडकर मास्टरका अनुभव ताज़ा ही था। लेकिन ठूँठे मास्टरको देख लेनेके बाद मनमें विचार आया कि यहाँ तो हम सलामत हैं। जहाँ हाथ ही न हों, वहाँ छड़ीका भय ही कैसा? लेकिन मेरा यह आनन्द अधिक समय तक नहीं टिका। मैं जरा अिधर-अुधर देख रहा था कि ठूँठे मास्टरने आकर पैरसे मेरी खुली जाँघ पर अैसी चिमटी भरी कि मैं चीखता हुआ पाठशालासे भाग ही गया! दूसरे दिन पाठशालामें जानेसे मैंने साफ़ अिनकार कर दिया। मैंने विचार किया

कि यहाँ कहाँ बाबा हैं जो मुझे डराकर पाठशाला भेजेंगे? लेकिन मेरे दुर्भाग्यसे बाबाका काम मेरी बड़ी मामीने किया। वह मुझे ज़बर्दस्ती उठाकर पाठशाला ले गयीं। रास्तेमें ही मैंने सोचा कि यदि आज हार गये, तो पाठशालाकी बला हमेशाके लिअे सिर पर — अथवा सच कहूँ तो जाँघ पर — चिपट जायेगी। अिसलिअे पाठशालाके दरवाज़ेमें मामीने मुझे ज़मीन पर रखा ही था कि मैंने दोनों पैरोंका पूरा अुपयोग करके गलीका दूसरा सिरा पकड़ा। मामीका शरीर कोअी हलका-फुलका न था, जो वे मेरे पीछे दौड़कर मुझे पकड़ लेतीं। आखिर मेरी जीत हुअी, और जब तक हम शाहपुरमें रहे मुझे पाठशाला न जानेकी छूट मिल गयी। मेरे कारण लाडू बहन भी घर पर ही रहने लगी। और हमने कहानियोंका मज़ा लेना शुरू किया।

१०

तू किसका ?

बेलगुंदी हमारा मूल गाँव। वह शाहपुरसे लगभग आठ मील दूर है। दो छोटी छोटी सुंदर पहाड़ियोंकी तलहटीमें अेक ओर वह बसा हुआ है। हम अेक बार बेलगुंदी देखनेको गये और मामाके यहाँ रहे। पहले ही दिन सहज ही माँके साथ ग्राम-ज्योतिषीके घर गये थे। वहाँ पहुँचे कि तुरन्त ही अपने राम तो झोंपड़ीकी ओलतीके बाँसको पकड़कर झूलने लगे। देहाती छप्पर, वह क्या अैसा अुत्पात सह सकता था? अुसने तुरन्त ही कर्रर कर्रर आवाज़ करके मेरे खिलाफ़ शिकायत की। सभी मुझ पर नाराज़ होने लगे। मुझे वहाँसे तरकीबसे निकाल देनेके लिअे मेरी छोटी मामीने कहा, 'ले, हमारी अिस छोटी येसू (यशोदा) को लेकर घर जा। अिसे अच्छी तरह सभालना। देखो, रास्तेमें ठोकर खाकर दोनों गिर न पड़ना।' भाअी बहनको लेकर चला तो

सही, लेकिन 'मामाका घर किधर है' यह याद न रहा! बहनका हाथ पकड़कर चलता ही चला गया। गाँवका दूसरा सिरा आ गया, अन्त्यज-बाड़ा आया, फिर भी हम चले ही जा रहे थे। आखिर अेक मेहतरानी बुढ़ियाने हमें देखकर कहा, 'ये किसके बालक हैं? कहाँ जा रहे हैं?' मेरे सामने आकर वह पूछने लगी, 'बाळ तू कोणाचा?' (बेटा, तू किसका लड़का है?)

मैं रास्ता भूल गया हूँ और मेरा ठिकाना जाननेके लिअे यह बुढ़िया मुझे पूछ रही है, अितना भी मेरे दिमाग़में न आया। मैंने तुरन्त ही जवाब दिया, 'मी आओीचा' (मैं अपनी माँका)। रास्ते परके सभी लोग हँसने लगे। सच पूछो तो मेरा जवाब कोअी बुद्धू-जैसा तो न था। हमारे घरमें सगे-संबंधियोंमें से कअी बूढ़ियाँ आकर, यह जाननेके लिअे कि हमारा प्यार माँकी ओर है या पिताकी ओर, हमें सवाल पूछतीं कि 'बेटा, तू किसका?' अुस दिनकी अपनी धुनके अनुसार हम कह देते माँका या पिताका। मैंने सोचा कि यह बुढ़िया भी अुसी भावसे लाड़ लड़ानेके लिअे पूछ रही है। अिसलिअे मैंने अपना स्पष्ट जवाब दे दिया था। बुढ़ियाने गेसूकी ओर झुक कर पूछा, 'और बेटी, तू किसकी?' बहन क्या अपने भाअीके प्रति बेवफा हो सकती है? अुसने तुरन्त ही जवाब दिया, 'मी नानाची' (मैं नानाकी हूँ)। वह अपने पिताको नाना कहती थी। हमसे अिससे ज़्यादा जानकारी मालूम होनेकी संभावना तो थी ही नहीं। अिसलिअे बुढ़ियाने कहा, 'बेटा, चल मेरे साथ; मैं तुझे घर पहुँचा दूँ। यह तेरा रास्ता नहीं है।' हम बुढ़ियाके पीछे-पीछे चलने लगे। रास्तेमें पूछती पूछती बुढ़िया हमें अपने मामाके घर तक ले आयी। वहींसे यदि वह लौट जाती तब तो मैं अुसका अुपकार जन्म भर नहीं भूलता। लेकिन अुस बुड्ढीने तो हमारे सवाल-जवाबकी रिपोर्ट अक्षरशः मामाको दे दी। सब हँस पड़े। जहाँ जाता वहीं मेरा मज़ाक अुड़ने लगा। जो भी मुझे देखता, कहता —

मी आओीचा।' मैं शरमसे पानी पानी हो जाता। दत्तू निरा बुद्धू है, अैसा मामाके यहाँ सबको पूरा विश्वास हो गया। लेकिन अीश्वरकी कृपासे दूसरे ही दिन मुझे अपनी योग्यता सिद्ध करनेका मौक़ा मिल गया।

११

अमरूद और जलेबियाँ

हमारी मौसीके बगीचेमें बहुत अच्छे अमरूद होते थे। बड़े बड़े अमरूद अन्दरसे बिलकुल लाल होते हुअे भी अुनमें ज़्यादा बीज न रहते थे। अेक बार मौसीने अेक बड़ा टोकरा भरके बड़ी-बड़ी नारंगी जैसे अमरूद भेजे। नौकर ज़मीन पर टोकरा रखता अुसके पहले ही हम सब लड़के वहाँ पहुँच गये और हरअेकने अेक-अेक बड़ा अमरूद हाथमें ले लिया। सब लोग यह समझते थे कि छोटे बालक यदि पूरा अमरूद खा जायँ तो बीमार पड़ेंगे। अिसलिअे मेरे बड़े भाअी अण्णा और विष्णु हमारे पीछे दौड़े और कहने लगे, 'लाओ, सारे अमरूद लौटाओ।' लड़कियाँ तो सभी डरपोक। जिस तरह हथियारबंदीका क़ानून बन जाते ही हिन्दुस्तानके लोगोंने अपने शस्त्रास्त्र अंग्रेज सरकारको सौंप दिये, अुसी प्रकार लड़कियोंने अेकके बाद अेक अपने अमरूद झट-झट लौटा दिये। लेकिन हम लड़के तो लुटेरे ठहरे! जब तक दममें दम रहे तब तक आत्मसमर्पण न करनेका हमने निश्चय किया। हमने पलायन-युद्ध शुरू किया! अण्णा और विष्णु हमारे पीछे लग गये। केशू, गोंदू वग़ैरा सब पलायन-विद्यामें प्रवीण थे। अुनमें से कोअी हाथ न लगा। मैं सबमें छोटा था। मेरी बिसात ही कितनी? तुरन्त ही अण्णाने मुझे पकड़ लिया। पीछेसे आकर अुन्होंने दोनों बाजूसे पकड़कर मुझे अूपर

ही अुठा दिया। केशू-गोंदूने हाहाकार मचाया! और मचायें क्यों नहीं? अपने पक्षका अेक महारथी (यद्यपि कहना तो महापशति चाहिये) मात खाये, यह अुन्हें कैसे सहन हो? और यदि मेरा अमरूद छिन जाता, तो फिर अमरूद खानेमें अुनको मजा ही कैसे आता? वे लोग मेरी कोअी मदद तो कर नहीं सकते थे। अतः केशू कहने लगा, 'फेंक तेरा अमरूद मेरी ओर।' लेकिन अुसे क्या मालूम कि विष्णु पीछेसे आकर क्रिकेटके wicket keeper (त्रिफलारक्षक)की तरह अुसके पीछे ही खड़ा था? मैं यदि अमरूद फेंक देता तो विष्णु अुसे अूपर ही अूपर रोक लेता। तब क्या किया जाय? मेरे हृदयमें अुस वक्त कितना मंथन चल रहा था! आज यदि हार गया तो तमाम बेलगुंदी गाँवमें मेरी अिज्जत न रहेगी। अभी कल ही तो मेरी फजीहत फैल चुकी है। लेकिन जैसा कि भगवद् गीतामें कहा गया है, "ददामि बुद्धियोगं तम्' अिस न्यायसे अुसी वक्त मुझे युक्ति सूझी। मेरे हाथ खुले ही थे। मैंने अमरूदका अेक बड़ा टुकड़ा मुँहसे तोड़ कर अण्णासे कहा, 'अब लो, यह जूठा अमरूद खाना हो तो।' अुन्होंने मुझे जमीन पर रख दिया, और सचमुच अमरूद लेनेके लिअे हाथ बढ़ाया। मैंने बिलकुल अभेद बुद्धिसे अमरूद जितने ही स्वादसे अुनकी पहुँचीको भी काटा। वे झुंझलाते अुसके पहले ही केशू और गोंदूने विजयध्वनि की। मेरी बहादुरीसे खुश होकर विष्णु भी मेरी तारीफ करने लगा। यह सब देखकर अण्णाने भी अब झुंझलानेके बजाय हँसनेमें ही अपनी होशियारी समझी।

आरामसे अमरूद खा लेनेके बाद भोजनकी भूख कम ही थी। लेकिन केशू कहने लगा, 'यदि आज हम कम खायेंगे, तो हमारी टीका-टिप्पणी होगी। हमें तो सिद्ध करना चाहिये कि अमरूद खाना तो बच्चोंके लिअे खेल है।' अिसलिअे अपनी साख जमानेकी खातिर अुस दिन हमने प्रतिदिनकी अपेक्षा ज्यादा खाया। हमें किसीको यह न सूझ पड़ा कि सच्ची साख तो बीमार न पड़नेमें है। अिसलिअे

जो बात अमरूदसे न होती, वह आबरूके अिस झूठे खयालसे हुआी और ज्यादा खानेसे गोंदू तो सचमुच बीमार पड़ा।

दूसरे दिन अेकान्त देखकर मैंने और केशूने गोंदूको खूब खरी-खोटी सुनायी कि 'तू सच्चा बहादुर ही नहीं। आबरू रखनेके लिअे यदि खायें, तो क्या अुससे बीमार पड़ा जाता है? दो दिन भी तुझसे न ठहरा गया?'

* * *

चार दिनके बाद गोंदू दो हरी मिरचियाँ ले आया और मुझसे कहने लगा, 'दत्तू, चल अिसमेंसे अेक तू खा ले।' मैंने पूछा, 'भला क्यों?' तो कहने लगा, "तुझे मालूम है? आज आबा (नाना) कहते थे कि 'यदि बचपनमें कष्ट अुठाओगे तो बड़ी अुमरमें सुखी होगे? छुटपनमें कड़वा खाओगे तो बड़े होने पर मीठा मिलेगा।' चल, आजसे हम दोनों मिरची खायें, ताकि बड़े होने पर हमें पेड़े-जलेबियाँ मिलें।" नानाजीकी बातका यह रहस्य तो मेरी समझमें न आया, लेकिन यदि ना कहूँ तो कायर माना जाअूँगा, अिस डरसे मैं गोंदूके बुद्धूपनका शिकार बन गया। हम दोनोंने अेक-अेक मिरची खायी। गोंदूको अितना तो सन्तोष था कि अिसके बदलेमें अुसे बड़ा होने पर मीठा-मीठा खानेको मिलेगा। मेरे पास तो अितना सन्तोष भी नहीं था। मेरा तो शुद्ध 'निष्काम कर्म' रहा।

कुछ ही दिनोंमें हम फिर शाहपुर गये। न जाने क्यों, मुझमें और गोंदूमें जितनी अीमानदारी थी, अुतनी केशूमें नहीं थी। वह चाहे जब, चाहे जो चीज़ (अलबत्ता घरकी हो तो ही) और चाहे जिस तरह अुठा लाता। अुसके नीतिशास्त्रमें चोरीकी हद दूसरेके घर तक ही मानी जाती, अपने घर चाहे जो किया जा सकता था।

सहालग आया। पिताजीने अलमारीमें अेक टोकरी भरकर जलेबियाँ रखी थीं। चींटियोंको भी मालूम हो, अुसके पहले केशूको अुसकी खबर लग गयी! अुसने अुसमेंसे दो-चार जलेबियाँ निकाल लीं। लेकिन अपने लाड़ले दत्तूके बिना वह खाता कैसे? मुझे अेकान्तमें बुलाकर

कहने लगा, 'ले, यह जलेबी खा।' असके पहले जलेबी मैंने न कभी देखी थी, न खायी थी। अेक टुकड़ा मैंने अपने मुँहमें डाला, लेकिन असका खट्टा-मीठा स्वाद मुझे पसंद नहीं आया। मैंने खानेसे अिनकार कर दिया। अितनी 'होशियारी' से हासिल की हुअी जलेबियोंको व्यर्थ जाते देखकर केशूको मुझ पर गुस्सा आया। असने मेरा गाल पकड़कर ज़ोरसे खींचा और कहने लगा, 'म्हारड्या (ढेड़) खा! खा, नहीं तो पीटता हूँ।' मारके डरसे मैंने जलेबी खायी और बुरा-बुरा मुंह बनाता हुआ मैं वहाँसे चला गया। चार-पाँच दिनों तक रोज़ाना जलेबी खानेकी यह जबरदस्ती मुझ पर होती रही और अिस तालीमके अन्तमें मैंने जलेबी 'भाना' सीख लिया!

१२

सातारासे कारवार

पिताजीका तबादला सातारासे कारवार हो गया और हम लोगोंने सातारासे हमेशाके लिअे बिदा ली। घर पर नरशा नामका अेक बैल था। असे हमने मामाके घर बेलगुंदी भेज दिया। महादूको छुट्टी देनी ही पड़ी। बेचारेने रो-रो कर आँखें सुर्ख कर लीं। नौकरानी मथुराको छोड़ते समय माँने असको अपनी अेक पुरानी किन्तु अच्छी साड़ी दे दी और असने हम सबको बहुत दुआअें दीं। घरके बहुत सारे सामान-असबाबको ठिकाने लगाकर हम पहले शाहपुर गये और वहाँ कुछ रोज़ रहकर वेस्टर्न अिण्डिया पेनिन्शुलर रेलवेसे मुरगाँव गये। रास्तेमें गुंजीके स्टेशन पर पानीके फ़व्वारे छूट रहे थे, जिन्हें देखनेमें हमें बड़ा मज़ा आया। लोंढ़े पर गाड़ी बदलकर हम डब्लू० आअी० पी० रेलवेके डिब्बेमें बैठ गये।

गोवा और भारतकी सरहद पर कैसल रॉक स्टेशन है। वहाँ पर कस्टमवालोंने हम सबकी तलाशी ली। हमारे पास चुंगीके

लायक़ भला होता ही क्या ? लेकिन सफ़रमें बच्चोंके खानेके लिअे डिब्बे भर-भरके छोटे-बड़े लड्डू लिये थे । अुन्हें देखकर कस्टम्सके सिपाहीके मुँहमें पानी भर आया । अुसने निःसंकोच हमसे वह माँग ही लिये । वह बोला, 'आपके ये लड्डू हमें खानेको दे दीजिये ।' मैंने सोचा कि हमारे लड्डू अब यहीं पर खत्म हो जायेंगे । माँका दिल पिघल गया और वह बोली, 'ले भैया, अिसमें क्या बड़ी बात है ?' लेकिन पिताजीने बीचमें दखल देते हुअे कहा, 'दूसरे किसीको भी दे दो, लेकिन अिस सिपाहीको देना तो रिश्वत देने जैसा है ।'

सिपाही बोला, "हम किसीसे कहने थोड़े ही जायेंगे ? आपके पास चुंगीके लायक़ चीज़ें मिली होतीं और हमने आपसे चुंगी वसूल न की होती तो आपका लड्डू देना रिश्वतमें शुमार हो जाता ।"

पिताजीका कहना न मानकर माँने अुन तीनोंको अेक-अेक बड़ा लड्डू दिया । घीमें तले हुअे और चीनीकी चाशनीमें पगे हुअे लड्डू अुन बेचारोंने शायद अुससे पहले कभी खाये न होंगे । अुन्होंने लड्डुओंके टुकड़े अपने मुँहमें ठूँसकर अपने गालोंके लड्डू बना लिये ।

पिताजीको मुखातिब करके माँ बोली, "क्या मैं घरके चपरासियोंको खानेको नहीं देती थी ? ये तो मेरे लड़कोंके समान हैं । अिन्हें खानेको देनेमें शर्म किस बातकी ? आज तक अैसा कभी नहीं हुआ कि किसीने मुझसे कुछ माँगा हो और मैंने देनेसे अिनकार किया हो । आज ही आपकी रिश्वत कहाँसे टपक पड़ी ?"

कैसल रॉकसे लेकर तिनअी घाट तककी शोभा देखकर आँखें ठंढी हो गयीं । यह कहना कठिन है कि अुसमें देखनेका आनन्द अधिक था या अेक-दूसरेको बतानेका । हमने दाहिनी तरफ़की खिड़कियोंसे बायीं तरफ़की खिड़कियों तक और फिर

बायीं तरफ़की खिड़कियोंसे दाहिनी तरफ़की खिड़कियों तक नाच-कूदकर डिब्बेमें बैठे हुअे मुसाफ़िरोंकी नाकोंमें दम कर दिया।

फिर आया दूधसागरका प्रपात। वह तो हमसे भी ज़ोरशोरसे कूद रहा था। हमने अिससे पहले कोअी जलप्रपात नहीं देखा था। अितना दूध बहता देख हमको बड़ा मज़ा आया। हमारी रेलगाड़ी भी बड़ी रसिक थी। प्रपातके बिलकुल सामनेवाले पुल पर आकर वह खड़ी हुअी और पानीकी ठंडी-ठंडी फुहार खिड़कीमें से हमारे डिब्बेमें आकर हमको गुदगुदाने लगी। अुस दिन हम सोनेके समय तक जलप्रपातकी ही बातें करते रहे।

हम मुरगांव पहुंच गये। आजकल मुरगांवको लोग मार्मागोवा कहते हैं। हम स्टेशन पर अुतरे और रेलकी बहुतसी पटरियोंको लांघकर अेक होटलमें गये। वहां भोजन करनेके बाद मैं अिधर अुधर पड़ी हुअी सीपियां लेकर खेलने लगा। अितनेमें केशू दौड़ता हुआ मेरे पास आया। अुसकी विस्फारित आंखें और हांफना देखकर मुझे लगा कि अुसके पीछे कोअी बैल लगा होगा।

अुसने चिल्लाकर कहा, 'दत्तू दत्तू जल्दी आ! जल्दी आ! देख, वहां कित्ता पानी है! अरे फेंक दे वह सीपियां। समुंदर है समुंदर! चल मैं तुझे दिखा दूं।' बचपनमें अेकका जोश दूसरेमें आ जानेके लिअे अुसके कारणको जान लेनेकी ज़रूरत नहीं हुआ करती। मुझमें भी केशू जैसा जोश भर गया और हम दोनों दौड़ने लगे। गोंदूने दूरसे हमको दौड़ते देखा तो वह भी भागने लगा; और हम तीन पागल ज़ोर-ज़ोरसे दौड़ने लगे।

हमने क्या देखा! अितना पानी सामने अुछल रहा था जितना अब तक हमने कभी नहीं देखा था। मैं आश्चर्यसे आंखें फाड़कर बोला, 'अबबबब...! कितना पानी!' और अपने दोनों हाथोंको अितना फैलाया कि छातीमें तनाव पैदा हो गया। केशू और गोंदूने

भी अपने अपने हाथोंको फैला दिया। अगर अुस हालतमें पिताजीने हमको देख लिया होता, तो अुन्होंने कैमेरा लाकर हमारी तस्वीरें खींच ली होतीं। 'कितना पानी है! अितना सारा पानी कहाँसे आया? देखो तो, धूपमें कैसा चमकता है!' हम अेक-दूसरेसे कहने लगे। बड़ी देर तक हम समुद्रकी तरफ़ देखते रहे फिर भी जी नहीं भरा। अब अिस पानीका किया क्या जाय? बिलकुल क्षितिज तक पानी ही पानी फैला हुआ था और अुससे चुप भी न रहा जाता था। अुसके साथ हम भी नाचने लगे और ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगे, "समुद्द्र! समुद्द्र!! समुद्द्र!!!" हर बार 'समुद्र' शब्दके 'मुद्र' को अधिकसे अधिक फुलाकर हम बोलते थे। समुद्रकी विशालता, लहरोंके खेल और अिस प्रकारका दृश्य पहली ही बार देखनेको मिलनेसे होनेवाले हमारे अत्यधिक आनंदको प्रकट करनेके लिअे हमारे पास अन्य कोअी साधन ही न था। जिस तरह समुद्रकी लहर अुभरकर, फूलकर फट जाती है, अुस तरह हम समुद्रकी रट लगाकर तालके साथ नाचने लगे; लेकिन हम लहरें तो थे नही, अिसलिअे अन्तमें थक गये और अिधर अुधर देखने लगे तो अेक तरफ़ अेक अेक कमरे जितनी बड़ी अींटें चुनी हुअी हमने देखीं। अुनमें से कुछ टेढ़ी थीं तो कुछ सीधी। अुस समय मुझे दूकानमें रखी हुअी साबुनकी बट्टियों और दियासलाअीकी डब्बियोंकी अुपमा सूझी। वास्तवमें वह मुरगाँवका चह था, जो बड़ी बड़ी अींटोंसे बनाया गया था। शिवजीके साँड़की तरह समुद्रकी लहरें आ आकर अुस चहके साथ टक्कर ले रही थीं।

हम घर लौटे और समुद्र कैसा दीखता है अिसके बारेमें घरके अन्य लोगोंको जानकारी देने लगे। समुद्रके नक्कारखानेमें बेचारे दूधसागरकी तूतीकी आवाज़ अब कौन सुनता?

सूर्य समुद्रमें डूब गया। सब जगह अंधेरा फैल गया। हम खाना खाकर चहके साथ लगे हुअे जहाज़ पर चढ़ गये। लोहेके

तारोंका जो कठड़ा होता है अुसके पासकी बेंच पर बैठकर गोंदू और मैं यह देखने लगे कि अूंट जैसी गर्दनवाले भारी बोझ अुठानेवाले यंत्र (क्रेन) बड़े बड़े बोरोंको रस्सोंसे बाँधकर कैसे अूपर अुठाते हैं और अेक तरफ़ रख देते हैं। हमारे सामनेके क्रेनने अेक बड़े ढेरमें से बोरे निकालकर हमारे जहाजके पेटको भर दिया। यंत्रोंकी घर्र घर्र आवाजके साथ मल्लाह ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाते, 'आवेस! आवेस! — आन्या! आन्या!' जब वे 'आवेस' कहते तब क्रेनकी ज़ंजीर कस जाती और 'आन्या' कहते तब वह ढीली पड़ जाती। कहते हैं कि ये अरबी शब्द हैं।

हम मज़ा देखनेमें मशग़ूल थे कि अितनेमें हमारे पीछेसे, मानो कानमें ही 'भोंओंओं...'की बड़े ज़ोरकी आवाज़ आयी। हम दोनों डरके मारे बेंचसे झट कूद पड़े और पागलकी तरह अिधर अुधर देखने लगे। हमारे कानोंके परदे गोया फटे जा रहे थे। अितने नज़दीक अितने ज़ोरकी आवाज़ बर्दाश्त भी कैसे हो? कहाँ तो दूरसे सुनाअी देनेवाली रेलकी 'अू...अू...अू...' वाली सीटी और कहाँ यह भैंसकी तरह रेंकनेवाली 'भोंओं...'की आवाज! आखिरकार वह आवाज़ रुक गयी; लकड़ीका पुल पीछे खींच लिया गया, आने-जानेके रास्ते परसे निकाला हुआ कँटीला कठड़ा फिरसे लगाया गया और 'घस घस' करते हुअे हमारे जहाज़ने किनारा छोड़ दिया। देखते देखते अंतर बढ़ने लगा। किसीने रूमालको हवामें फहराकर तो किसीने सिर्फ़ हाथ हिलाकर अेक-दूसरेसे बिदा ली। अैसे मौक़ों पर चंद लोगोंको कुछ न कुछ भूली हुअी बात ज़रूर याद आ जाती है। वे जोर ज़ोरसे चिल्लाकर अेक दूसरेको वह बताते हैं और दूसरा आदमी अुसकी तसल्लीके लिअे 'हाँ हाँ' कहता रहता है, फिर भले ही अुसकी समझमें खाक भी न आया हो।

यह सब मज़ा देखकर हम अपनी अपनी ज़गहों पर बैठ गये। जहाज़में सब जगह बिजलीकी बत्तियाँ थीं। रेलमें अलग ढंगके

दीये थे। वहाँ खोपरेके और मिट्टीके मिले हुअे तेलमें जलनेवाली बत्तियाँ काँचकी हंडियोंमें लटकती रहती थीं। यहाँ दीवारोंमें छोटे छोटे काँचके गोलोंके अंदर बिजलीके तार जलकर धीमी रोशनी दे रहे थे।

वह सारा दिन नये-नये और विभिन्न अनुभवोंकी अेक मज़ेदार खिचड़ी थी। आँखें, कान और मन अनुभव ले लेकर थक गये थे। अिसलिअे यह मालूम भी न हुआ कि नींदने कब और कैसे आकर घेर लिया। नींदमें से सपनेके राजमें केवल अेक ही बातने प्रवेश पाया था कि जहाज़का हिंडोला बड़े प्यारसे झूल रहा है।

१३

"मुझे धेला दीजिये"

हमें कारवार गये बहुत दिन हो गये थे। पहले-पहल समुद्र देखनेका कुतूहल कुछ-कुछ कम हो गया था। अूँचे-अूँचे और घने सरोके पेड़ोंमें से सू-सू करके बहती हुआी हवा अब परिचित हो गयी थी।

मैं मराठी पाठशालामें पढ़ने जाता था। शायद मैं दूसरी कक्षामें पढ़ रहा था। रामभाअू गोडबोले नामक अेक लड़का हमारे साथ था। अेक दिन अुसने मुझसे पूछा, 'क्यों रे कालेलकर, तेरे पास अपने कुछ पैसे हैं या नहीं?' मैंने अनजान भावसे जवाब दिया, 'ना भाआी, बच्चोंके पास पैसे कहाँसे आयें? अेक दिन मैं लिमयेके यहाँ गया था, तो वहाँ मिठाआी खानेके लिअे मुझे आठ आने मिले थे। वे पैसे मैंने तुरन्त ही घरमें दे दिये थे।' रामभाअू कहने लगा, 'तो अुससे क्या हुआ? वे पैसे कहलायेंगे तो तेरे ही। माँसे माँग लेना। हम बाज़ारसे कुछ अच्छी खानेकी चीज़ खरीदेंगे।' मैंने आश्चर्यसे कहा, 'हम क्या शूद्र हैं, जो बाज़ारकी चीज़ लेकर खायेंगे?' तो वह खीझकर कहने

लगा, 'तू तो कुछ समझता ही नहीं। पैसे तो ले आ। फिर तुझे सिखाअूंगा, पैसेका क्या करना। तेरे पैसे तुझे न मिलें, अिसका क्या मतलब ?'

मुझे बाज़ारसे कोअी चीज़ खरीदकर खानेकी अिच्छा तो बिलकुल न थी, लेकिन घरसे में पैसे नहीं पा सकता, यह बात दोस्तोंके सामने कैसे कबूल की जा सकती थी? अिसलिअे मैंने हाँ तो कह दिया। फिर भी रामभाअू बड़ा खुर्राट था; अुसने कहा, 'देख, माँ यदि पैसे देनेसे अिनकार करे, तो रो-धोकर ले लेना।'

अितनी सीखसे सुसज्जित होकर मैं घर गया। दूसरे दिन सवेरे माँके पास पैसे माँगने गया। मेरे पैसे मुझे क्यों न मिलें, यह भूत तो दिमाग़में घुसा ही था। लेकिन आठ आने माँगनेकी हिम्मत कौन करे? मैंने सिर्फ़ अेक धेला माँगा। धेला यानी आधा पैसा—डेढ़ पाअी। यह सिक्का आजकल दिखाअी नहीं देता। माँने कहा, 'बेटा, मैं ही अपने पास पैसे नहीं रखती, तो तुझे कहाँसे दूं? अुनसे जाकर माँग लेना।"

मैं सीधा पिताजीके पास गया और कहने लगा, 'मुझे अेक धेला दीजिये।'

कभी पैसेका नाम न लेनेवाला लड़का आज धेला क्यों माँगता है, अिसका अुन्हें आश्चर्य हुआ। अुन्होंने पूछा, 'तुझे धेला किस लिअे चाहिये?'

मैं बड़े संकटमें फँस गया। दोस्तका नाम तो बताया ही कैसे जा सकता था? फिर रामभाअूने मुझे यह ताकीद कर दी थी कि 'भूलकर भी मेरा नाम किसीको मत बताना।' न यह भी कहा जा सकता था कि बाज़ारकी चीज़ लेकर खाना है। अुससे आबरू जानेका डर था। और मेरे मनमें बाज़ारसे खानेकी चीज़ खरीदनेकी बात थी भी नहीं। अिसलिअे मैंने बिना कोअी कारण बताये सिर्फ़ यह रट लगायी कि 'मुझे धेला दीजिये।'

पिताजीने साफ़ साफ़ कह दिया कि, 'किस कामके लिअे धेला चाहिये, यह बताये बग़ैर धेला तो क्या अेक पाअी भी नहीं मिल सकती।'

मैंने भी हठ पकड़ा। सिखाये मुताबिक मैंने रोना शुरू किया—'मुझे . . . धेला . . . दी . . . जि . . . ये, मुझे . . . धे . . . ला . . . दी . . . जि . . . ये।' रोना सबेरेसे ग्यारह बजे तक जारी रखा। कुछ दिन पहले मेरी छोटी भाभीने मेरी माँसे पूछा था कि 'पिताजीको तनख्वाह कितनी मिलती है ?' माँने कहा था, 'दो सौ रुपये।' दस वर्षकी भाभीका कुतूहल जगा। दो सौ रुपये कितने होते होंगे ? माँने बहूकी अिच्छा पूरी करनेके लिअे पिताजीको ख़ास तौरसे कहा था कि 'अिस महीने नोट न लायें। सब नक़द रुपये ही लाअिये।' जब रुपये आये तब अेक चाँदीकी थालीमें भरकर माँने भाभीको बतलाये थे। अुस घटनाका स्मरण हो आनेसे मैंने मनमें कहा, 'पराये घरकी भाभीके लिअे ये लोग अितना करते हैं, और मुझे अेक धेला भी नहीं देते।'

पिताजी दफ़्तर गये और मैं रोते-रोते सो गया। शाम हुअी। पाँच बजे पिताजी घर आये। अुन्हें देखकर मैंने फिर शुरू किया, 'मुझे धेला दीजिये।' यह धेला-गीत रातको दस बजे तक चला। आखिर मेरी अिच्छाके बिना और अनजानेमें ही निद्राने मुझे घेर लिया और अिस किस्सेका अन्त हुआ।

दूसरे दिन पाठशाला जानेका मन न हुआ। रामभाअू पूछेगा तब अुसे क्या जवाब दूंगा, यह विचार ही मनमें बार बार चक्कर लगा रहा था। मेरा वश चलता, तो मैं अुस दिन पाठ-शालामें जाता ही नहीं। लेकिन मैं जानता था कि यदि जानेमें जरा भी आनाकानी की, तो चपरासीके कन्धे पर चढ़कर जाना होगा। अिसमें तो दूनी बेअिज्ज़ती थी—दफ़्तरके चपरासियोंके सामने और पाठशालाकी सारी दुनियाके सामने। अिसलिअे मैं पाठशाला

गया और रामभाअूको सारी हक़ीकत कह सुनायी तथा अुसका तिरस्कार प्राप्त किया।

नौ बजे हमें पेशाबकी छुट्टी मिलती थी। अुस वक़्त विश्वनाथ वकील नामक अेक लड़का मेरे पास आया। अुसका चेहरा अभी भी नज़रके सामने है। चोटीके लम्बे-लम्बे बालोंमें से अेकाध मुँहमें पकड़नेकी अुसे आदत थी। विश्वनाथ भले घरका था और रूपवान दिखाअी देता था। अुसके माथे पर पसीनेकी स्वच्छ बूँदें चमक रही थीं। अुसने मुझे अेक तरफ़ बुलाकर कहा, 'भाअी, कलसे तेरे और रामभाअूके बीच जो बात चल रही है, वह मैं सुन रहा हूँ। रामभाअू बदमाश लड़का है। वह आज तुझे पैसे माँगकर लानेको कहेगा; कभी तुझे अपने घरसे कोअी चीज़ लाकर खिलायेगा; कुछ दिन बाद चोरी करनेको कहेगा और फिर तो दूसरे भी खराब काम करनेको कहेगा। तू अुसकी सोहबत मत कर।'

विश्वनाथकी शिक्षाका मुझ पर बहुत असर हुआ। मैंने रामभाअूकी संगत छोड़ दी। आज जब सोचता हूँ, तो लगता है कि तीसरी कक्षामें पढ़नेवाले विश्वनाथकी शिक्षा अुसके खुदके अनुभवकी तो हो ही नहीं सकती। कहींसे सुना या पढ़ा हुआ ही अुसने मुझे कहा होगा। अपनी शिक्षाका पूरा अर्थ भी वह शायद न जानता हो, लेकिन अुसकी श्रद्धा सच्ची थी। अिसलिअे अुसकी बातका असर मुझ पर पड़ा। वह विश्वनाथ आज भी मेरी नज़रके सामने ताज़ाका ताज़ा है। आज बेचारा कहाँ होगा, मैं नहीं जानता। अुसके साथ मैंने दो दिन दोस्ती अवश्य की थी, लेकिन चूँकि वह मुझसे अुम्रमें दो साल बड़ा था, और बचपनमें दो बरसका अन्तर बहुत होता है, अिसलिअे वह दोस्ती अधिक बढ़ न पायी।

मेरे भले विश्वनाथ, तू कहाँ है, क्या करता है, यह मैं नहीं जानता। लेकिन तूने मेरे जीवन पर अेक ही क्षणमें जो प्रभाव डाला है, अुसके लिअे तू नमनके ही योग्य है।

१४

सभा

कारवारकी बात है। अेक दिन पिताजीने कहा, "आज शामको मुझे सभामें जाना है।' 'सभा' शब्द ही मेरे लिअे नया था। मैंने पूछा, 'सभा यानी क्या?' पिताजीने कहा, 'बड़े-बड़े लोग अिकट्ठा होकर भाषण देते हैं और सब लोग वे भाषण सुनते हैं, अुसे सभा कहते हैं।'

'भाषण यानी क्या?'

'भाषण यानी सभामें अेक आदमी खड़ा होकर अपने मनमें जो भी आता है कह डालता है, और दूसरे बैठे-बैठे सुनते हैं।'

'चाहे जो बोलते हैं?'

'और क्या, मनमें आयेगा वही न बोलेंगे?'

'तो क्या मेरे मनमें जो भी आये वह मैं सभामें बोल सकता हूँ? चाहे जो भी बोलूं, वह भाषण कहलायेगा?'

'हाँ, हाँ, लेकिन तू छोटा है। अभी तुझसे वह नहीं होगा।'

मैंने कहा, 'मुझे सभा देखनी है; क्या आप मुझे अपने साथ ले चलेंगे?'

शाम हुअी और हम सभामें गये। देखा तो सभा हमारी पाठशालामें ही थी। सिर्फ़ बैठनेके लिअे हमारी पाठशालाकी टाटपट्टीकी जगह कुर्सियाँ और बेंचें रखी गयी थीं। पिताजीको देखकर सब लोगोंने 'आअिये, आअिये' कहकर अुनका स्वागत किया और पिताजीने आगे बढ़कर कुर्सी पर तरतीबसे बैठते हुअे मुझे दूर बेंच पर बैठनेका अिशारा किया। बचपनकी हमारी मान्यता यह थी कि जो अंग्रेज़ी पढ़ता है, वही बेंच पर बैठ सकता है, सामान्य शिक्षा तो टाटपट्टी पर ही होती है। अुस दिन मुझे अपने स्कूलमें बेंच पर बैठनेका

मौक़ा मिला तो मनमें आया कि बिना हक़के कुछ असाधारण सम्मान मिला है। मेरे हर्षकी सीमा न रही। मैं बेंच पर बैठा हूँ, यह कौन कौन देख रहा है, यह जाननेके लिअे मैंने आसपास नज़र दौड़ायी।

अितनेमें सभा शुरू हुअी। मेरे लिअे वह बड़े मज़ेकी बात थी। अेक आदमी अुठ खड़ा होता, कुछ बोलता और बैठ जाता। वह बोलता तब दूसरे कुछ भी न बोलते, देवताओंकी तरह बैठे ही रहते। और अुसके बैठते ही दूसरे सब तालियाँ बजाते। मेरे मनमें आया कि अिन बड़े-बड़ोंको क्या हो गया है, जो ये अैसा कर रहे हैं? अेक आदमी बक-बक किये जाता है और दूसरे अुसमें कुछ भी नहीं जोड़ते। फिर ये लोग तालियाँ क्यों बजाते होंगे? क्या सभीकी फज़ीहत होती होगी?

अुपस्थितोंमें हमारे हेडमास्टर बिलकुल अेक कोनेमें चूहेकी तरह छिपे खड़े थे। मैं अपने मनमें सोचने लगा, हमारी पाठशालाके ये सम्राट आज चोरकी तरह यों चुपचाप क्यों खड़े हैं? ये तो अुस चपरासीसे भी ज़्यादा झेंप रहे हैं!

वक्ताओंमें मेरे परिचित केवल लक्ष्मणराव शिरगाँवकर ही थे। वे तो आकाशकी ओर देखकर ही बोले। वे क्या बोले थे, यह मैं अुस वक़्त भी नहीं समझ सका था तो फिर आज कहाँसे याद आये?

मैं अूब गया। अुठकर अिधर-अुधर घूमनेका मन हुआ। लेकिन दूसरे कोअी अुठते न थे, अिसलिअे बेचैन होकर बैठा रहा। अेक आसनसे बैठनेका बड़े लोगोंका सब्र देखकर अुनके प्रति मनमें कुछ प्रशंसाके भाव भी पैदा हुअे।

आखिर अँधेरा होने लगा। रोशनीका कोअी प्रबंध था नहीं। मेरे जैसा ही अूबा हुआ किन्तु व्यवहारकुशल कोअी होगा, अुसने बीचमें ही अुठकर रोशनीकी माँग की। बस, सभीके ध्यानमें आया कि

वे बहुत देरसे भाषण कर रहे हैं। जमा-जमाया रंग भंग हुआ। सबको घरकी याद हो आयी। वे अुठकर कुछ थोड़ा-सा बोलकर बाहर चले। मेरे मनमें आया, चलो, अिस सभाकी झंझटसे छूटे! अब फिर कभी सभामें नहीं जाअूंगा!

मेरी जिन्दगीकी यह पहली सभा थी।

१५

दो टाअिपोंका चोर

बालक हो या बड़ा, मनुष्य जितना स्वादिष्ट पदार्थों या सुन्दरताका रसिक होता है, अुतना ही यांत्रिक चमत्कृति तथा रचना-कौशल्यका भी पुजारी होता है। मथानी या रस्सीकी मददसे दहीसे मक्खन कैसे निकलता है, गाड़ीके पहिये पर लोहेका बंद कैसे चढ़ाया जाता है, चरखेसे सूत कैसे काता जाता है, कपड़ा कैसे बुना जाता है, लुहारकी धौंकनी कैसे चलती है, खराद या कुम्हारके चाक पर सुन्दर चीज़ें कैसे बनती हैं, यह सब देखनेमें हर बालकको ही नहीं बल्कि हरअेक जीवित मनुष्यको अपार आनन्द मिलता है।

मेरे बड़े भाअीके पास R. B. Kalelkar नामका रबड़का अेक सिक्का था। अुसमें यह खूबी थी कि रबड़के अक्षरों पर स्याहीकी गद्दीवाला अेक ढक्कन हमेशा लगा रहता था। हर बार दबाते ही अक्षर अन्दर दब जाते, स्याहीकी गद्दी अुन पर बैठ जाती, और जहाँ दूसरी बार दबाया कि गद्दी अेक ओर खिसक जाती और ताज़े गीले अक्षर कागज़ पर अपनी मुद्रा अंकित कर देते। अूपरका दबाव कम होते ही अक्षर पीछे हट जाते और गद्दीका ढक्कन अुन पर आ बैठता। वह सिक्का देखकर मुझे भी लगने लगा कि यदि मेरे नामका भी अेक अैसा ही सिक्का हो तो

कितना अच्छा? अुस वक़्त मैं मराठी दूसरी कक्षामें पढ़ता था। अुसी समय केशूने पूनाके शिवाजी छापाखानेसे 'कालेलकर' छापने जितने टाअिप वहाँ काम करनेवाले अेक कम्पोज़िटरसे प्राप्त किये थे। अुन्हें धागेसे मजबूत बाँधकर वह 'कालेलकर' नाम हर पुस्तक पर छापता था। अुन अुल्टे अक्षरोंसे सीधा नाम छपते देखकर मुझे बहुत ही आश्चर्य होता! पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि अैसे टाअिप बाज़ारमें नहीं मिलते। अतः पिताजी या माँसे हठ करके अुन्हें प्राप्त करनेकी संभावना तो थी ही नहीं। अतः टाअिप प्राप्त करनेकी अिच्छा मनमें ही रह गयी।

अुसी साल मैं कारवार गया। यह यात्रा शायद दूसरी बार थी। पाठशाला जाते समय रास्तेमें अेक 'मोहमेडन प्रिंटिंग वर्क्स' आता था। हमारी पाठशालाका अेक लड़का अुसमें काम करता था। मेरे मनमें आया कि अुससे टाअिप प्राप्त किये जा सकते हैं। अेक दिन बाज़ारसे कोअी चीज़ लेकर मैं लौट रहा था। रास्तेमें छापाखाना दीख पड़ा तो अन्दर चला गया। वास्तवमें यंत्र कैसे चलता है, यह देखनेके लिअे ही मैं गया था। लेकिन अन्दर वह सहपाठी काम करता दिखाअी दिया। मैंने अुससे कहा, 'भअी, मेरे नामके टाअिप मुझे दे दो न?' अुसने मुझसे पूछा, 'मुझे क्या देगा?' मेरे पास देने जैसा था ही क्या? मैंने अुससे कहा, 'दोस्तके नाते यों ही दे देना।' अुसने गंभीर मुद्रासे कहा, 'हम दोस्त तो हैं लेकिन टाअिप नहीं दिये जा सकते। छापाखानेमें काम करते समय हमें सौगन्द लेनी पड़ती है कि अिसमेंसे अेक भी टाअिप बाहर नहीं जायेगा।' मुझे अुसके साथ दलील करनेकी तो अिच्छा नहीं हुअी, लेकिन मनमें आया कि मैं अिसे पैसे देता तो अिसे देनेमें कोअी आपत्ति नहीं होती; तब अिसकी वह सौगन्द कहाँ जाती?

मैंने अुससे बदला लेनेकी ठानी। वह थोड़ा अिधर-अुधर हुआ कि मैंने धीरेसे अुसके सामनेके दो टाअिप अुठाये और वहाँसे सटका।

मैंने देखा था कि टाअिप कन्नड़ हैं और वे मेरे किसी कामके नहीं हैं; लेकिन ग़ुस्सेसे भरा आदमी गहराअीसे थोड़े ही सोचता है? फिर मैं तो चिढ़ा हुआ बालक था। रास्तेमें मैं विचार करने लगा कि वह लुच्चा अब अिन टाअिपोंके बिना हैरान-परेशान हो जायेगा। मैंने लिये तो दो ही टाअिप थे, लेकिन अुतनेसे ही मुझे संतोष था कि बदमाशको अच्छा मज़ा चखाया।

मैं कुछ ही आगे बढ़ा हूँगा कि अुसने दौड़ते हुअे आकर मुझे पकड़ लिया। हाथमें टाअिप तो थे ही। अुसने डाँटकर कहा, 'चल अब हमारे मालिकके पास!' मैं रो पड़ा। मैंने कहा, 'तेरे टाअिप वापस ले ले, लेकिन मुझे छोड़ दे। क्या दोस्तके लिअे अितना भी न करेगा?' अुसने मुझे जवाब तक न दिया और मेरी कलअी पकड़कर मुझे खींचता हुआ अपने मालिककी दूकान पर ले गया। मैंने कुछ समय पहले अुसी दूकानसे घरकी आवश्यक वस्तुअें खरीदी थीं। अुस वक़्त मैं शरीफ़ था, लेकिन अिस बार अुसी दूकान पर चोरकी हैसियतसे जाना मेरे नसीबमें बदा था।

अधिकारियोंके बालकोंका जीवन दोहरा होता है। जब वे अपने पिताके साथ जाते हैं, तो सब जगह अुनका आदरके साथ स्वागत होता है; बैठनेको कुर्सी मिलती है, 'कैसे हो' कहकर बड़े-बड़े भी अुन्हें प्यारसे पूछते हैं। लेकिन जब वे पाठशालामें जाते हैं या अपने सहपाठियोंके साथ अकेले घूमते हैं, तब साधारण मनुष्य बन जाते हैं। मुझे खुदको पिताजीके साथ घूमते समय मिलनेवाले आदरमें जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। अुसमें कृत्रिमता होती और अिसलिअे बड़े बन्धनमें रहना पड़ता। घूमने जायें और चपरासी साथ हो तो वह मुझे कतअी नहीं भाता। लेकिन हाँ, यदि चपरासी दरअसल या अिरादतन् बालक बनकर मेरी बातें ध्यान देकर सुननेको तैयार हो जाता, तब तो मैं अपने साथीकी तरह अुसका स्वागत करता।

अुस दूकानदारके यहाँ में प्रतिष्ठित व्यक्तिकी तरह कअी बार गया था। मनके मुताबिक छाता जब तक न मिला तब तक मैंने अुसको कअी छाते लौटा दिये थे। और आज दो टाअिपोंका चोर बन कर मुझे अुसीके सामने जाना था। मैं रोता हुआ दूकानमें गया — गया क्या, वह कंपोज़िटर मुझे खींचता हुआ ले गया! दूकानमें मालिक नहीं था। अुसका चौदह-पन्द्रह वर्षका लड़का वहाँ खड़ा था। कम्पोज़िटरने अुसके हाथमें वे दो टाअिप देकर अपनी रिपोर्ट पेश की। मुझे अिनकार करनेकी बात सूझ ही न सकती थी; क्योंकि मुझे चोरी करनेकी आदत नहीं थी। यह मेरी सबसे पहली चोरी थी। मैंने रोते-रोते कहा, 'फिर कभी अैसा नहीं करूँगा।' दूकानदारके लड़केको यह सब सुननेकी बिलकुल परवाह न थी। वह अितना तो जानता था कि यह अेक अफ़सरका लड़का है। और सवाल सिर्फ़ दो टाअिपोंका है! अुसने लापरवाहीसे कहा, 'तुम ये टाअिप ले सकते हो। अिसमें कौनसी बड़ी बात हो गयी?' मैंने टाअिप लेनेसे अिनकार कर दिया। अुसने फिर कहा, 'मैं सच कह रहा हूँ, तुम ये टाअिप ले सकते हो।' मैंने कहा, 'असलमें मुझे अिन टाअिपोंकी ज़रूरत ही न थी।'

यह सब सुननेके लि े अुसके पास समय नहीं था। अतः अुसने वे टाअिप रास्ते पर फेंक दिये और अपने काममें लग गया। जाते-जाते अुसने अुस कंपोज़िटरकी ओर नाराज़ीसे देखा।

छूटनेका आनन्द मनाता मैं घर गया। जो कुछ भी हुआ था मैंने वह किसीसे कहा तो नहीं, लेकिन कोअी भी जब मुझे अुस दूकानसे चीज़ लानेको भेजता, तो मैं कुछ न कुछ बहाना करके टाल देता। जब अुस कम्पोज़िटरने कुछ दिनोंमें पाठशाला छोड़ दी, तो मेरे दिलका बोझ हलका हो गया।

१६

डरपोक हिम्मत

कारवारमें हम अेक बार अुखा सेठकी वखारमें रहते थे। अुस मकानका नाम तो था वखार (गोदाम); क्योंकि अुखा सेठ वहाँका मशहूर कच्छी व्यापारी था। लेकिन था दरअसल वह अेक खासा शानदार बँगला न कि माल भरकर रखनेका गोदाम। बँगलेकी खिड़कियों और दरवाज़ोंमें सब जगह रंग-बिरंगे काँच जड़े हुअे थे। दूसरी मंज़िलका हिस्सा हमारे कब्जेमें नहीं था, लेकिन चूँकि वह खाली पड़ा था अिसलिअे हम बालक तो दो पहरके वक्त खेलने-कूदने या झगड़नेके लिअे अुसका अुपयोग करते ही थे।

अेक बार हम अेक बहुत खूबसूरत सफ़ेद बिल्ली चुरा लाये। अुसके लिअे रंगीन शीशमहल बनाना था। केशूने और मैंने मिलकर अूपरकी मंज़िल पर जाकर पीछेकी खिड़कीके पाँच हरे-पीले काँच निकाल लिये। फिर अपने बढ़अी मारियान लुअीस फर्नांडीसके पास जाकर, जिसे हम मेस्त कहते थे, अेक देवदारकी पेटीमें खिड़की-दरवाज़े कटवा कर अुसका अेक छोटा-सा महल बनवाया और अुसमें वे काँच जड़ दिये। अिस प्रकार हमारा मार्जार-प्रासाद तैयार हुआ। 'जब हम पूरा किराया देते हैं, तो क्यों काँचोंका अुपयोग न करें? हम गोदाम किराये पर न लेते, तो यहाँ चूहे भी न रहते। तीन-चार काँच काममें लिये, अुसमें क्या?' अिस प्रकार अपने आपसे दलील करके हमने अपने पछताते हुअे मनको शान्त किया। खैर।

जब बिल्लीका घर तैयार हुआ तो हमने अुसमें फटे-पुराने कपड़ोंसे बनायी हुअी अेक मुलायम गद्दी रख दी। पहले कुछ दिन तक मजबूरीसे और बादमें अपनी खुशीसे बिल्ली अुसमें रहने

लगी। अलग अलग खिड़कियोंसे अुसकी तरफ़ देखने पर वह बिल्ली अलग अलग रंगकी दिखाअी देती। कअी दिनों तक हम अुस बिल्लीके पीछे ही पागल बने रहे।

जब अिस तरह खेल-कूदमें कअी रोज़ चले गये और कुछ पढ़ाअी नहीं हुअी, तो मन ही मन पछताने लगे और हमने डटकर पढ़नेका निश्चय किया। जब बच्चे पढ़नेका अिरादा करते हैं तो सबसे पहले अुनको किसी अेकान्त स्थानकी ज़रूरत महसूस होने लगती है। जिस तरह कौअेको अपने घोंसलेके लिअे नज़दीकके तिनके पसंद नहीं आते, दूर दूरसे लाये हुअे तिनके ही पसंद आते हैं, अुसी तरह लड़कोंको अध्ययनके लिअे किसी असाधारण स्थानकी आवश्यकता प्रतीत होती है। हमारे बँगलेके आसपास काफ़ी खुली जगह थी, जिसमें बहुतसे आमके पेड़ थे। सभी पायरी जातिके थे। बँगलेके चारों तरफ़ अींट-चूनेकी बाड़ थी। बँगलेके सामने, जैसे सब जगह होता है, अींट-चूनेके दो मोटे-मोटे खम्भे थे; और अिन अूंचे खम्भोंको जोड़नेवाली अेक छः अिंच चौरस लंबी लकड़ी लगायी हुअी थी। अिन दो खंभोंके बीचका फाटक कबका टूट-फूट चुका था और सिर्फ़ छः अिंच चौड़ा पुल ही रह गया था। अेक दिन मैं दीवाल परसे खम्भे पर चढ़ गया। वहाँ बैठकर मुझे पुस्तक पढ़नी थी। मुझे अिस प्रकार बैठा देखकर केशू सामनेकी दीवाल परसे दूसरे खंभे पर चढ़ गया। प्रवेशद्वार पर हम दोनों जय-विजयकी तरह आमने-सामने बैठे थे। मुझे अिसमें खूब मज़ा आया और मैंने प्रह्लाद-आख्यानकी अेक आर्याका पाठ शुरू किया :—

"पूर्वी जयविजयातें सनकादिकींच्या विषाद-शापानें।
झाले जन्मत्रय परि मुक्तिस नेलें रतीश-बापानें।।*

---

* पहले ज़मानेमें सनकादिक ऋषियोंके शापसे जय-विजयको तीन बार राक्षसोंका जन्म लेना पड़ा और प्रद्युम्न-पिता नारायणने अुन्हें राक्षस योनिसे मुक्त किया।

लेकिन अितनेमें मैं ही अेक शापमें फँस गया। केशू मुझसे कहने लगा, 'देख अिस लकड़ीके पुल परसे चलकर मेरी ओर आ।' केशूकी आज्ञाका अुल्लंघन कैसे किया जा सकता था? अुसे हमेशा आज्ञा देनेकी आदत थी और हम सबको अुसकी आज्ञाका पालन करनेकी!

लेकिन वहाँ मैंने देखा तो अुन खंभोंके बीच अितना फ़ासला था कि अेक बड़ी गाड़ी आ-जा सकती थी और अुस पुलकी अूँचाअी भी ज़मीनसे कम न थी। फिर अुस लकड़ीके पुलकी चौड़ाअी पूरे छः अिंच भी मुश्किलसे होगी। अुसे पार करनेमें अुस परसे पैर फिसल जानेका पूरा अंदेशा था। और कहीं चक्कर आ गया तब तो बग़ैर फिसले भी मैं गिर सकता था। अिसलिअे मैंने केशूसे कहा, 'यह तो मुश्किल है। मुझसे नहीं बनेगा।' अुसने ढाढ़स बँधाते हुअे कहा, 'डर मत, तेरे लिअे यह क़तअी मुश्किल नहीं।' बचपनमें यदि मुझे कसरतकी आदत होती तब तो मुझे यह काम मुश्किल न मालूम होता। लेकिन अुस वक़्त किसी भी तरह मेरा दिल न बढ़ा। केशूने सख़्तीसे हुक्म दिया, 'तुझे आना ही पड़ेगा। अब तू छोटा नहीं है। ख़ासा दस सालका हो गया है। अितनी भी हिम्मत नहीं है? मैं कहता हूँ न कि आ।' मैंने भी दृढ़तापूर्वक जवाब दिया, 'यह तो हरगिज़ हो ही नहीं सकता।' केशूको गुस्सा होते देर न लगती थी। वह बोला, 'याद रख, तू आया तो ठीक, वरना आज मैं तेरी अैसी मरम्मत करूँगा कि तेरे गालोंसे ख़ून ही निकल आयेगा।' मैंने मनमें सोचा, मार खाना तो रोज़की बात है। अिसमें तो अपने राम पंडित हैं। लेकिन अितनी अूँचाअीसे गिरकर सिर फुड़वाना बहुत महँगा पड़ जायगा।

अतः मैंने पहली ही बार भाअीकी आज्ञाका सादर निरादर किया। केशूसे मैंने नम्रतापूर्वक कहा, 'भाअी, यह तो मुझसे हो

ही नहीं सकता। तू चाहे जो कर लेकिन मेरा पैर नहीं अुठ सकता।'

भाअी भी मेरी अिस कायरताभरी दृढ़ताको देखकर दंग रह गया। आखिर अुसने कहा, 'चल हट, डरपोक कहींका! तू तो अैसा ही रहेगा। अब मैं ही तुझे चलकर बताता हूँ।' बस, मारके डरसे जो काम नहीं हुआ, वह अिस तानेसे हो गया। केशू चलकर बतलावेगा और पहले-पहल अिस पुलको पार करेगा, तब तो मेरी आबरू ही क्या रही? मैं अेकदम अुठा और पुल परसे सामनेकी ओर चला गया। न मैंने नीचेकी ओर देखा, न अिधर-अुधर। सामने केशू भी अुठ खड़ा हुआ था। अुसने मुझे बाहोंमें भींच लिया। अुसकी आँखोंमें खुशीके आँसू थे। अुसने मेरी पीठ थपथपाते हुअे कहा, 'कह न रहा था मैं तुझे, कि यह तेरे लिअे असंभव नहीं है? तेरी शक्तिको तेरी अपेक्षा मैं ही ज्यादा जानता हूँ।' फिर तो कअी बार मैं अिस ओरसे अुस ओर और अुस ओरसे अिस ओर आता-जाता रहा।

अुस दिन शामको केशूने मुझे हनुमानजीकी कहानी सुनायी। सीताजीकी खोज करनेके लिअे लंका तक कौन जाये अिस संबंधमें समुद्रके अिस पार बन्दरोंमें सलाह-मशविरा हो रहा था। किसीकी हिम्मत नहीं होती थी, सारी वानरसेना चिंतामें डूब गयी। समुद्रको फाँद कर पार करनेकी शक्ति सिर्फ़ हनुमानजीमें ही थी। लेकिन देवताओंने यह पहलेसे तय कर रखा था कि जब तक कोअी हनुमानजीको न बताये कि अुनमें अितनी शक्ति है, तब तक अुनमें वह शक्ति प्रकट ही नहीं होगी। अुनमें आत्मविश्वास पैदा नहीं होगा।

१७

गणपतिका प्रसाद

बिलकुल बचपनकी बात है।

भादोंका महीना आया। 'गणपति बाप्पा मोरया' घरमें पधारे। मेज़ पर अेक सुन्दर क़ीमती बनात बिछायी गयी थी। अुस पर लाखके रंगका पाट। पाट पर अेक रेशमी कपड़ा, अुस पर कुमकुम मिले हुअे अक्षतोंका ढेर, और अुस पर गजानन महाराज विराजमान थे। मेज़के सामने ज़मीन पर ताँबेकी बड़ी थालीमें हलदी और चूनेकी मिलावटसे बना हुआ लाल पानी भर कर रखा था। अुस लाल पानीमें पड़नेवाला गणपतिका अुलटा प्रतिबिम्ब देखनेसे ज़्यादा पुण्य मिलता है, यह अुस वक़्तकी मान्यता थी। आजकी भाषामें कहूँ तो पानीमें पड़ा हुआ प्रतिबिम्ब मूल बिम्बसे ज़्यादा काव्यमय होता है।

गणपतिकी पूजा हुअी। गणपतिके दोनों ओर बैठी हुअी गौरियोंकी भी पूजा हुअी। ये गौरियाँ तो गणपतिकी माताअें। अेक गौरी छोटेसे मटके पर मिट्टीका ढक्कन या खप्पर औंधा रखकर बनाअी जाती है। अुस गौरीके पेटमें चावल, हल्दीकी गाँठ, सुपारी, अेकाध रुपया और पंचरत्न रखे जाते हैं। गलेमें मंगल-सूत्र होता है। ढक्कन पर नाक, कान, आँखें और सिर परके बाल अंकित किये रहते हैं; अिस गौरीकी पूजा सारे श्रावण मास चलती है। दूसरी गौरी वनश्रीकी शोभा होती है। अिक्कीस तरहके पत्ते अिकट्ठे करके अुनकी अेक बड़ी पूली बाँधी जाती है और अुसके चारों ओर दो हिंडोलोंके बीच बैठी हुअी गौरीके चित्रवाला कागज़

लिपटा रहता है। अिस चित्रको लपेटनेमें भी मंगल-सूत्रका ही प्रयोग किया जाता है।

अिस गणपति और अुसकी दो माताओंकी विधियुक्त पूजा हुअी। हमने तालियाँ बजाते हुअे आरती पूरी की और गणपतिके प्रसादके मोदक खाकर खेलने गये।

घरमें कोअी मामूली मेहमान आता तो भी हम बालकोंको बड़ा आनन्द होता था, फिर त्यौहारके दिन गणेशजी जैसे देवता पधारे हों तब तो पूछना ही क्या? हमारी स्वागत-समितिने दो-तीन दिन कसकर मेहनत की थी और गणपतिके आसपास सुन्दर सजावट की थी। चतुर्थीकी शामको चन्द्रदर्शन नहीं करना चाहिये, अिसलिअे हम अपना खेल जल्दीसे खत्म करके घर वापस आये।

अुस दिन दोपहरको पड़ोसके अेक भाअीने मुझे मेरी अँगुली जितनी मोटी अगरबत्ती दी थी। हमारे घरमें तो सब अगरबत्तियाँ पतली ही होती थीं। मुझे लगा कि यह मोटी अगरबती क़ीमती होनी चाहिये और अुसकी सुगन्ध भी ज़्यादा अच्छी होनी चाहिये। अगरबत्ती लेकर घरमें चला गया, तो वहाँ गजानन महाराज बैठे दिखाअी दिये। मनमें भक्तिका अुबाल आया। 'अितनी सुन्दर अगरबत्ती तो गणपतिको ही चढ़ायी जा सकती है।' फिर मनमें विचार आया कि शामको पटाखे छोड़ते समय मोटी अगरबत्ती कितने कामकी होगी? रातके पटाखे और सामने बैठे हुअे गणेशजीके बीच मनमें लंबे समय तक स्वयंवर चला। आखिर दुनियवी बुद्धिने समझौतेका रास्ता सुझाया। आधा हिस्सा गणपतिको दिया जाय और आधा पटाखोंके लिअे रखा जाय। अितनी लंबी अगरबत्ती तोड़नेका पहले जी नहीं हुआ। आखिर दो टुकड़े करनेके लिअे अुसे बीचमें मोड़ दिया। लेकिन अन्दरकी बाँसकी सलाअी क्या यों ही टूटनेवाली

थी? दूसरा कोअी साधन न हो, तो अीश्वरने दाँत और नाखून तो दिये ही हैं। अुनका अुपयोग किया और अगरबत्तीका आधा हिस्सा सुलगाकर बनात पर अूपरसे रख दिया। अिसमें मैंने अितनी सावधानी रखी कि वह टेबलको छू न जाय तथा अुसका सुलगता हुआ सिरा खुला रहे। फिर मनको कुछ खटका-सा लगा कि दाँतोंके अुपयोगसे तो अगरबत्ती जूठी हो गयी। लेकिन अुसे अुसी जगह दबाकर मैं दूसरी मंज़िल पर पटाखे छोड़नेको चला गया।

अुस वक़्त हम कारवारमें रामजीसेठ तेली नामके अेक कच्छी व्यापारीके घरमें किरायेसे रहते थे। रामजीसेठके पास जाकर मैंने कहा, 'सेठजी कहानी कहिये।' अुन्होंने भी वह मज़ेदार कहानी कह डाली जिसमें अेक राजाने जंगलमें बढ़िया दूध पिलानेवाले गड़रिये पर खुश होकर अेक पत्ते पर ३६० गाँव जागीरीमें लिख दिये थे, लेकिन अुसकी बकरीने वह पत्ता ही खा डाला। बेचारा गड़रिया रोने लगा:—

कहूँ कुछ कहूँ कुछ कहा न जावे,
कोने सवारे पेटे मेरे मावे,
बकरी त्रणसो साठ गाम खाकर गयी और भूखीकी भूखी।

बचपनके ये शब्द अभी भी जैसेके तैसे याद हैं। यह भाषा गुजराती है या कच्छी या मारवाड़ी, अिसकी छानबीन मैंने अभी तक नहीं की।

कहानी सुनकर जब मैं घरमें आया, तो टेबल पर बनात नहीं थी। वह तो पिताजीके हाथमें थी। और अुसमें जल जानेके कारण खासा कनेरके पत्तेके बराबर अेक लम्बा सूराख पड़ गया था। त्यौहारके दिन बनात जैसी अुमदा चीज़ ख़राब हो गयी और प्रस्थापित गणेशज़ीको अुठा कर अुनके नीचेसे हटानी पड़ी, यह

अपशकुन तो था ही। अिसलिअे पिताजीको गुस्सा चढ़ गया था। अुन्होंने मुझसे पूछा, 'यह किसने किया?' मैं अपनी अगरबत्तीका प्रताप तुरन्त ही पहचान गया। अिसलिअे डरते-डरते कहा, 'जी, मैंने ही।' तुरन्त ही मेरी कनपटी पर अेक पटाखा फूटा और दूसरा पीठ पर। मैं वहाँसे रोता-रोता भाग खड़ा हुआ।

बादमें माँके साथ बात करनेकी फुरसत मिली तब मैंने सिसकियाँ भरते हुअे कहा, 'बनात जल जायगी, अिसका मुझे खयाल ही कैसे आता? मैंने तो भक्तिसे ही अगरबत्तीका टुकड़ा सुलगा कर रखा था। लेकिन गणपति महाराज प्रसन्न न हुअे।'

मांसे मेरी बात सुनकर पिताजीको भी दुःख हुआ और वे बोले, 'त्यौहारके दिन मैंने दत्तूको नाहक पीटा।' अुनका यह वाक्य सुनकर मैं अपना दुःख भूल गया और मुझे अिसीसे संतोष हुआ।

अगरबत्तीका दूसरा टुकड़ा जब मैंने सुलगाकर देखा, तो अुसमें कतअी सुगन्ध न थी। फिर तो अुस अगरबत्ती पर मुझे बेहद गुस्सा आया। दरअसल वह अगरबत्ती सिर्फ़ पटाखे छोड़नेके कामकी ही थी; भगवानके आगे रखे जानेकी योग्यता यानी खुशबू अुसमें बिलकुल नहीं थी।

१८

गोकर्णकी यात्रा

लंकापति रावण सारे हिन्दुस्तानको पार करके हिमालयमें जाकर तपश्चर्या करने बैठा। अुसे अुसकी माँने भेजा था। शिवपूजक महान् सम्राट् रावणकी माता क्या मामूली पत्थरके लिंगकी पूजा करे? अुसने अपने लड़केसे कहा, 'बेटा, कैलास जाकर शिवजीके पाससे अुन्हींका आत्मलिंग ले आ। तभी मेरे यहाँ पूजा हो सकती है।'

मातृभक्त रावण चल पड़ा। हिमालयके अुस पार मानसरोवर है; वहाँसे रोज़ाना अेक सहस्र कमल तोड़कर वह कैलाशनाथकी पूजा करने लगा। यह तपश्चर्या अेक हज़ार वर्ष तक चली।

अेक दिन न जाने कैसे अेक हज़ारमें नौ कमल कम आये। पूजा करते करते बीचमें तो अुठा नहीं जा सकता था, और सहस्रकी संख्यामें अेक भी कमल कम रहे तो काम नहीं चल सकता था। अब क्या किया जाय? आशुतोष महादेव शीघ्रकोपी भी हैं। सेवामें जरा भी त्रुटि रही कि सर्वनाश ही समझो। रावणकी बुद्धि या हिम्मत तो कच्ची थी ही नहीं। अुसने अपना अेक-अेक शिर-कमल अुतारकर चढ़ाना शुरू कर दिया। अैसी भक्तिसे क्या नहीं मिल सकता? भोलानाथ प्रसन्न हुअे और बोले, 'वर माँग, वर माँग। तू जितना माँगे अुतना कम है।' कृतार्थ हुअे रावणने कहा, 'माँ पूजामें बैठी है, आपका आत्मलिंग चाहिये।' शब्द निकलनेकी ही देर थी। शंभुने अपना हृदय चीरकर आत्मलिंग निकाला और वह रावणको दे दिया।

त्रिभुवनमें हाहाकार मच गया। देवताओंके देवता महादेव आत्म-लिंग दे बैठे। और वह भी किसे? सुरासुरोंके लिअे आफ़तका

परकाला बने हुअे रावणको! अब तीनों लोकोंका क्या होगा? ब्रह्मा दौड़े विष्णुके पास। लक्ष्मी सरस्वतीसे पूछने गयी। अिन्द्र मूर्छित हो गया। यमराज डरके मारे काँपने लगे। आखिर सबने विघ्ननाशक गणपतिकी आराधना की और कहा, 'चाहे जो करो, लेकिन वह लिंग लंकामें न पहुँचने पाये अिसकी कोअी तरकीब निकालो।'

महादेवने रावणसे कह रखा था, 'ले जा यह लिंग। लेकिन याद रख, जहाँ भी तू अिसे ज़मीन पर रखेगा, वहीं यह स्थिर हो जायेगा।' महादेवका लिंग तो पारेसे भी भारी। रावण अुसे हाथमें लेकर पश्चिम समुद्रके किनारे किनारे तेज़ीसे चला जा रहा था। साँझ होनेको आयी थी। अितनेमें रावणको पेशाबकी हाजत हुअी। शिवलिंगको हाथमें लेकर पेशाबके लिअे बैठा नहीं जा सकता था; और ज़मीन पर तो रखा ही कैसे जाता? अिस अुलझनमें रावण फँसा ही था कि अितनेमें देवताओंके संकेतके मुताबिक गणेशजी चरवाहेका रूप लेकर गायें चराते हुअे प्रकट हुअे। रावणने अुसे पास बुलाकर कहा, 'अरे लड़के, यह लिंग तो ज़रा सँभाल। देख ज़मीन पर मत रखना।' गणेशजीने कहा, 'यह है तो बहुत भारी, लेकिन में कोशिश करूँगा। यदि थक गया तो तुमको तीन बार आवाज़ दूँगा। अुतनी देरमें तुम आये तो ठीक, वरना हम कुछ नहीं जानते।'

हाजत तो पेशाबकी ही थी। अुसमें कितनी देर लगती? रावण बैठ गया। लेकिन न जाने कैसे आज अुसके पेटमें मानो सात समुद्र घुस बैठे थे। जनेअू कान पर चढ़ाया, फिर तो बोला भी नहीं जा सकता था! सिद्धि विनायकने अिकरारके मुताबिक तीन बार रावणके नामसे आवाज़ लगाअी। और अर्र्र्र् की चीख मारकर लिंग ज़मीन पर रख दिया। रखते ही वह पाताल तक पहुँच गया। रावण क्रोधसे लाल-पीला होता हुआ आया और अुसने गणपतिके

माथे पर कसकर अेक घूंसा मारा। गजाननका सिर खूनसे लथपथ हो गया।

फिर रावण दौड़ा लिंग अुखाड़नेको। लेकिन वह तो अब असंभव था। पाताल तक पहुँचा हुआ लिंग कैसे हाथमें आ सकता था? अुसकी खींचातानीसे सारी पृथ्वी काँपने लगी, लेकिन लिंग नहीं निकलता था। आखिर रावणने लिंगको पकड़कर मरोड़ डाला, जिससे अुसके हाथमें लिंगके चार टुकड़े आ गये। निराशाके आवेशमें बेचारेने चारों टुकड़े चारों दिशाओंमें फेंक दिये और लंकाको लौट गया। दर असल दुनियामें केवल तपस्यासे काम नहीं चलता, धूर्त्त लोगोंकी चालबाजियोंको पहचाननेकी बुद्धि भी आदमीमें होनी चाहिये।

मरोड़े हुअे लिंगका जो मुख्य हिस्सा वहाँ पर रह गया, अुसीको गोकर्ण-महाबलेश्वर कहते हैं, क्योंकि अिस लिंगका अूपरी सिरा गायके कानोंकी तरह पतला और चिपटा है। तमाम पृथ्वी पर अिससे ज्यादा पवित्र तीर्थस्थान नहीं है।

गोकर्ण-महाबलेश्वर कारवार और अंकोला बन्दरगाहोंके बीच तदड़ी बन्दगाहसे करीब छः मील अुत्तरकी ओर बिलकुल समुद्रके किनारे पर है। दक्षिण भारतमें अिसका माहात्म्य काशीसे भी ज्यादा माना जाता है। लिंग अधिकतर ज़मीनके अन्दर ही है। अुसकी जलाधारीके बीचोंबीच अेक बड़ा छेद है। अुसमें जब अंदर अँगूठा डालते हैं, तब भीतर लिंगका स्पर्श होता है। दर्शनका तो सवाल ही नहीं। वहाँके पुजारी कहते हैं कि लिंगकी शिला अितनी मुलायम है कि भक्तोंके स्पर्शसे वह घिस जाती है, अिसलिअे प्राचीन लोगोंने अुसके चारों ओर जलाधारी लगाकर केवल अंगुष्ठस्पर्शकी सुविधा रखी है। बहुत समय बाद जब शुभ शकुन होते हैं, तब जलाधारी निकालकर तथा आसपासकी जुड़ाअी हटाकर मूल लिंगको दो-तीन हाथकी गहराअी तक खोल दिया जाता है। अिस खुले लिंगके दर्शनके

लिअे लाखों लोग जमा हो जाते हैं। अमुक समय तक लिंगके खुले रहनेके बाद मोतियोंको पीसकर बनाये हुअे चूनेसे आसपासकी जुड़ाअी फिर कर दी जाती है। यदि मैं भूलता नहीं हूं, तो अिस क्रियाको 'अष्टबंध' या अैसा ही कुछ नाम दिया गया है।

* * * *

हम कारवारमें थे, तब अेक बार कपिलाषष्ठी जैसा ही दुर्लभ अष्टबंधका यह योग आया। पिताजी, माँ और मैं अिस यात्रामें गये। गोकर्ण कोअी बंदरगाह नहीं है। जहाज़ तदड़ीके बन्दरगाह तक ही जाते हैं। तदड़ी बन्दरगाह पर मुझे अुठा लेनेके लिअे अेक 'कुली' किया गया। अुसके काले काले कन्धे पर बैठकर मैं गोकर्ण गया। वहाँ हम कोटितीर्थमें नहाये। गोकर्ण-महाबलेश्वरके दर्शन किये। श्मशान-भूमि और अुसकी रखवाली करनेवाले हरिश्चन्द्रकी मूर्ति देखी, जिसके कंधे पर चाबुक बनाया गया था। वहाँ पर अेक तीर्थ अैसे पानीवाला देखा, जिसमें कहते हैं कि यदि हड्डियाँ डाली जायँ, तो वे गल जाती हैं। अहल्याबाअीके अन्नसत्रमें अुस साध्वीकी मूर्ति देखी। सिरमें चोट खाये हुअे और दो हाथवाले गजाननके दर्शन किये। ब्रह्माकी अेक मूर्ति देखी और सबसे महत्त्वकी बात यह कि रावणकी अुस प्रख्यात पेशाबका कुण्ड देखा! आज भी वह भरा हुआ है और वहाँ अितनी बदबू आती है कि नाक फटती है। और भी बहुत कुछ देखा होगा, लेकिन आज याद नहीं है।

हाँ, अिस प्रदेशकी अेक विशेषता बतलाना तो भूल ही गया। घर गरीबका हो या अमीरका ज़मीन तो गारेकी ही होती है। लेकिन वह काले संगमरमरके पत्थरके समान सख्त और चमचमाती रहती है। वह अितनी चिकनी और चमकीली होती है कि सचमुच ही अुसमें मुँह दिखाअी देता है! गरमीके दिनोंमें दोपहरके वक़्त मनुष्य बग़ैर कुछ बिछाये मिट्टीके पलस्तर पर आरामसे सो सकता है।

समय-समय पर अिस ज़मीनको गोबर और काजल मिलाकर लीपा जाता है। लेकिन वह लीपनेका काम सिर्फ़ हाथसे नहीं होता। सुपारीके पेड़ पर अेक प्रकारकी छाल तैयार होती है। अुससे ज़मीनको घिस-घिस कर चमचमाती बनाया जाता है। अिस छालको वहाँकी कोंकणी भाषामें 'पोवली' कहा जाता है।

गोकर्णसे वापस आते समय तदड़ी तक पैदल जानेके बजाय समुद्री रास्तेसे वाफर यानी स्टीमलाँचमें जानेका विचार था। मौसमी तूफ़ान शुरू होनेको बहुत ही थोड़े दिन थे। आठ दिन बाद जहाज़ भी बन्द होनेवाले थे। अिसलिअे लौटनेवाले मुसाफ़िरोंकी बेशुमार भीड़ थी। तदड़ी बन्दरगाहसे चढ़नेवाले मुसाफ़िरोंको जहाज़में जगह मिलेगी या नहीं, अिसमें शंका थी। अिसलिअे हमने स्टीमलाँचमें बैठकर जहाज़ तक जल्दी पहुँचना ठीक समझा।

गोकर्णका बन्दरगाह बँधा हुआ नहीं है। किनारेसे मेरी छाती बराबर पानीमें तो चलकर जाना पड़ता था। वहाँसे किश्तीमें बैठकर स्टीमलाँच तक जाते। जवान लोग किश्ती तक चलकर जाते, लेकिन स्त्रियाँ और बच्चे तो कुलियोंके कन्धे पर चढ़कर अथवा दो कुलियोंके हाथोंकी पालकी बनाकर अुस पर बैठकर जाते।

शुरूमें ही अपशकुन हुआ। अेक ग़रीब बुढ़िया शरीरसे खूब मोटी थी; लेकिन अुसके पास दो कुली किराये पर लेने जितने पैसे नहीं थे, अिसलिअे अुसने अेक लोभी कुलीको कुछ ज़्यादा मज़दूरी देनेका लालच देकर अपनेको कन्धे पर अुठा ले जानेके लिअे राज़ी कर लिया। वह था दुबला। वह किनारे पर बैठ गया। विधवा बुढ़िया अुसके कन्धे पर सवार हुअी। लेकिन कुली जहाँ अुठने लगा कि अुसके पैरोंने जवाब दिया और वह मुँहके बल गिर गया। अुसके साथ बुढ़िया भी धमसे गिर गयी। अिसी बीच अेक नटखट लहरने आकर दोनोंको अच्छी तरह नहलाकर कृतार्थ कर दिया।

वह बोट लगभग आख़िरी होनेसे गोकर्णमें चढ़नेवाले यात्री भी बहुत थे। वे सबके सब स्टीमलाँचमें कैसे समाते? अिसलिअे सौ आदमी बैठ सकें अैसा अेक पड़ाव यानी बड़ी नाव स्टीमलाँचके पीछे बाँध दी गयी। अुसके पीछे कस्टम्स (चुंगी) विभागके अधिकारियोंकी अेक सफ़ेद नाव बाँधी गयी थी, जिसमें अुस महकमेके अेक अधिकारी और अन्य सिपाही-नौकर बैठे थे। मैंने देखा कि खानगी नावोंकी पतवारें जहाँ कड़छीकी तरह गोल होती हैं, वहाँ कस्टमवालोंकी पतवारें क्रिकेटके बल्लेकी तरह लम्बी और चपटी होती हैं।

हमारा काफ़िला ठीक समय पर निकला। अेक-दो मील गये होंगे कि अितनेमें आकाश बादलोंसे घिर गया, हवा ज़ोरसे बहने लगी और लहरें ज़ोर-ज़ोरसे अुछलने लगीं; मानो खूँख़ार भेड़ियोंको बड़ी भारी दावत मिल रही हो। नावें डोलने लगीं और स्टीमलाँच परका खिंचाव भी बढ़ने लगा।

अरे, यह क्या? छींटे! बरसातके छींटे! बड़े-बड़े बेर जैसे छींटे! अब क्या होगा? लहरें ज़ोर-ज़ोरसे अुछलने लगीं। स्टीमलाँच भी बेक़ाबू घोड़ेकी तरह जोशमें आकर अुछल-कूद करने लगी। पीछेकी नावकी मोटी रस्सियाँ कर्र्र् कर्र्र् आवाज़ करने लगीं। अितनेमें स्टीमलाँच और नावके बीच अेक अितनी बड़ी लहर आयी कि नाव दिखाअी ही नहीं देती थी।

मैं स्टीमलाँचके बॉअिलरके पास लकड़ीके तख़्तोंके चबूतरे पर बैठा था। हमारे टंडेलको जल्दीसे जल्दी स्टीमर तक पहुँचना था। वह पागलकी तरह स्टीमलाँच पूरी रफ्तारसे चला रहा था। वह चबूतरा जिस पर मैं बैठा था गरम हुआ। मैं जलने लगा। समझमें न आता था कि क्या किया जाय। जरा भी अिधर-अुधर हो जाता तो 'समुद्रास्तृप्यन्तु' होनेका डर था! और बैठना तो लगभग

असंभव हो गया था! अिस परेशानीसे मुझे बड़े भयंकर ढंगसे छुटकारा मिला। समुद्रकी अेक प्रचंड लहरने स्टीमलाँच पर चढ़कर मुझे नखशिखान्त नहला दिया! अब बैठक कैसे गरम रह सकती थी?

अुस भयावनी लहरको देखकर पिताजी घबड़ा गये। माँको कुलदेवताका स्मरण हो आया, 'मंगेशा! महारुद्रा! मायबापा! तूंच आतां आम्हाला तार!' (तू ही हमको बचा!) मूसलधार वर्षा होने लगी। हम स्टीमलाँचवाले कुछ सुरक्षित थे। लेकिन पीछेकी नाववालोंका क्या? शुरू शुरूमें तो स्टीमलाँचको पानी काटना था, अिसलिअे अुसमें थोड़ा बहुत पानी आ ही जाता था। लेकिन नाव तो हर हिलोर पर सवार हो सकती थी; अिसलिअे वह भले चाहे जितनी डोलती हो, परंतु अुसके अन्दर पानी नहीं आता था। लेकिन अब जब कि हवा और बरसातके बीच होड़ लगी और दोनोंका अट्टहास बढ़ने लगा तब अेक ही हिलोरमें आधीके करीब नाव भर जाने लगी। लहरें सामनेसे आतीं, तब तक तो ठीक था; नाव अुन पर सवार होकर निकल जाती। नाव कभी लहरोंके शिखर पर चढ़ जाती, तो कभी दो लहरोंके बीचकी घाटीमें अुतर जाती। कभी-कभी तो वह जहाँ अेक हिलोर पर से अुतरती, वहीं नीचेसे नअी हिलोर अुठकर अुसे अधरमें ही रोक लेती। अैसी कोअी आकस्मिक बात हो जाती तो अन्दर खड़े हुअे लोग धड़ाधड़ अेक-दूसरे पर गिर पड़ते।

लेकिन अब लहरें बाजुओंसे टकराने लगीं। नावके अन्दर बैठी हुअी स्त्रियों और बच्चोंको तो सिर्फ़ रोनेका ही अिलाज मालूम था! अुसमें जितने जवाँमर्द थे सब डोल, गागर, या डिब्बा जो भी हाथमें आया, अुसे भर-भरकर पानी बाहर अुलीचने लगे। फायर अिंजनके बंबे (दमकल) भी अुससे ज्यादा तेजीसे काम नहीं कर सकते। नाव खाली होती न होती अितनेमें कोअी क्रूर तरंग

विकट हास्यके साथ ध...ड़ा... म से अुससे टकराती और अन्दर चढ़ बैठती। अुस वक़्तकी चीखें और दहाड़ें कानोंको फाड़े डालती थीं; कलेजा चीरे डालती थीं। कअी यात्री अवधूत दत्तात्रेयको गुहराने लगे, तो कअी पंढरपुरके विठोबाको पुकारने लगे। कोअी अंबा भवानीकी मन्नत मानने लगे, तो कोअी विघ्नहर्ता गणेशको बुलाने लगे। शुरू-शुरूमें स्टीमलाँचका कप्तान और मल्लाह हम सबको धीरज देते और कहते, 'अरे तुम डरते क्यों हो? सारी जिम्मेदारी तो हमारी है। हमने अैसे कितने ही तूफ़ान देखे हैं। अिसमें डरनेको क्या बात है?" लेकिन देखते देखते मामला अितना बढ़ गया कि कप्तानका भी मुँह अुतर गया। वह कहने लगा, 'भाअियो, अब रोनेसे क्या फ़ायदा? मनुष्यको अेक बार मरना तो है ही। फिर वह मौत बिस्तरमें आये या घोड़े पर, शिकारमें आये या समुद्रमें। आप देख ही रहे हैं कि हमसे बनती कोशिश हम सब कर रहे हैं। लेकिन अिन्सानके हाथमें है ही क्या? मालिक जो चाहे वही होता है।' मैं अुसके मुँहकी ओर टकटकी बाँधे देख रहा था। यात्राके प्रारंभमें जो आदमी गाजरकी तरह लाल-सुर्ख़ था, वह अब अरवीके पत्तोंकी तरह हरा-नीला हो गया था।

मैं अुस वक़्त बिलकुल बालक था, लेकिन गंभीर प्रसंग आने पर बालक भी बड़ोंकी तरह अुसे समझ सकता है। मैं पल-पलमें स्थान-भ्रष्ट हो रहा था। बड़ी मुश्किलसे अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर मैं अपने स्थानको सँभाले हुअे था। हमारा सारा सामान अेक ओर पड़ा था; लेकिन अुसकी तरफ देखता ही कौन? फिर भी पूजाकी सभी मूर्तियाँ और अेक नारियल बेंतकी अेक 'सांबळी' (डब्बे) में रखे थे। अुन्हें मैं अपनी गोदमें लेकर बैठना नहीं भूला था।

मेरे मनमें कैसे-कैसे विचार आ रहे थे! वह ज़माना मेरी मुग्ध भक्तिका था। हर रोज़ सवेरे दो-दो घण्टे तो मेरा भजन चलता रहता। मेरा जनेअू नहीं हुआ था, अिसलिअे संध्या-पूजा तो कैसे की जाती?

फिर भी पिताजी जब पूजामें बैठते, तब वहाँ बैठकर अुनकी मदद करनेमें मुझे खूब आनन्द आता। अुस दिनका वह प्रलयकारी तूफ़ान देखकर मनमें विचार आया कि आज यदि डूबना ही किस्मतमें बदा हो, तो देवताओंकी यह पेटी छातीसे लगाकर ही डूबूंगा। दूसरे ही क्षण मनमें विचार आया कि, माँके देखते यदि लाँचमें से पानीमें लुढ़क जाअूँगा तो माँकी क्या दशा होगी? यह विचार ही अितना असह्य हो गया कि साँस रुकने लगी। सीनेमें अिस तरह दर्द होने लगा, मानो वह पत्थरसे टकरा गया हो। मैंने अीश्वरसे प्रार्थना की कि 'हे भगवान्, हमको यदि डुबाना ही हो, तो अितना करो कि माँ और मैं अेक-दूसरेको भुजाओंमें बाँध कर डूबें।'

हरअेक बालकके मन अुसके पिता तो मानो धैर्यके मेरु होते हैं। आकाश भले ही टूट पड़े, लेकिन अुसके पिताका धैर्य नहीं टूट सकता, अितना अुसे विश्वास होता है। अिसलिअे जब अैसा प्रसंग आता है और बालक अपने पिताको भी दिङ्‌मूढ़ बने हुअे, हक्के-बक्के, घबड़ाये हुअे देखता है, तब वह व्याकुल हो अुठता है। अुस दिन मैं तूफ़ानसे अितना नहीं डरा था, बरसातसे अितना नहीं डरा था, 'मनुष्यकी बू आ रही है, मैं मनुष्यको खा जाअूँगी' अैसा कहकर मुँह फाड़कर आनेवाली तरंगोंसे भी अितना नहीं डरा था, जितना कि पिताजीका परेशान चेहरा देखकर तथा अुनकी रुँधी हुअी आवाज़को सुनकर सहम गया था।

हरअेक व्यक्ति कप्तानसे पूछता, 'हम कितनी दूर आ गये हैं? अभी कितना बाकी है?' चारों ओर जहाँ भी देखते बरसात, आँधी और अुत्तुंग तरंगोंका ताण्डव नज़र आता था! अितनी बरसात हुअी, लेकिन आकाश जरा भी नहीं खुला। मैंने कप्तानसे गिड़-गिड़ाकर कहा, 'लाँच कुछ किनारे किनारे ले जाओ न, जिससे यदि हमारी स्टीमलाँच डूब ही गयी तो चंद लोग तो किनारे तक तैर कर जा सकेंगे!' कप्तान अुत्साह-हीन तथा विषादयुक्त

हँसी हँसते हुअे बोला, 'कैसा बेवकूफ़ है यह छोकरा! आज हम किनारेसे जितने दूर हैं, अुतने ही सलामत हैं, जरा भी पास गये तो चट्टानोंसे टकराकर चकनाचूर हो जायेंगे। आज तो जान-बूझकर हम किनारेसे दूर रह रहे हैं। किसी तरह स्टीमर तक पहुँच जायँ तो काफ़ी है। आज दूसरा अुपाय नहीं है।'

मैंने अिससे पहले कभी बड़ी अुम्रके लोगोंको अेक-दूसरेके गले लगकर रोते नहीं देखा था। वह दृश्य अुस दिन हमारी लाँचसे बँधी हुअी नावमें देखा। वहाँ तो स्त्री-पुरुष अेक-दूसरेको सीनेसे लगाकर दहाड़ मारकर रो रहे थे। दो-तीन बालकोंकी अेक माँ अेक साथ अपने सब बच्चोंको गोदमें ले लेनेकी कोशिश कर रही थी। केवल पाँच-पच्चीस युवक जी-तोड़ मेहनत करके प्रचंड समुद्रके साथ अ-समान युद्ध कर रहे थे। तूफ़ान अितना बढ़ गया और लाँच और नाव अितनी ज़्यादा डोलने लगीं कि लोग डरके मारे रोना तक भूल गये। सब जगह मौतकी काली छाया छा गयी। सचेत थे केवल नावके बहादुर नौजवान और काली-नीली वर्दी पहने हुअे स्टीम-लाँचके मल्लाह। हमारा कप्तान हुक्म देते हुअे कभी कभी व्यग्र हो अुठता, लेकिन मल्लाह बराबर अेकाग्र होकर, बिना परेशान हुअे, अचूक अपना-अपना काम किये जाते थे। कर्मयोग क्या अिससे भिन्न या अधिक होगा?

आखिरकार तदड़ी बन्दरगाह आया! हम स्टीमरको देखते अुससे पहले ही स्टीमरने हमारी लाँचको देख लिया और अपना भोंपू बजाया: 'भों.....!' मानो सबकी करुण-वाणी सुनकर भगवानने ही 'मा भैः' की आकाशवाणी की हो! हमारी स्टीम-लाँचने भी अपनी तीखी आवाज़से भोंपूको जवाब दिया। सबके हृदयमें आशाके अंकुर फूट पड़े, चारों ओर जय-जयकार हुआ।

अितनेमें मानो अन्तिम प्रयत्न करके देखनेके हेतुसे तथा हम सबके भाग्यके सामने हारनेसे पहले आखिरी लड़ाअी लड़ लेनेके

लिअे अेक बड़ी भारी लहर हमारी लाँच पर टूट पड़ी। मेरे पिताजी जहाँ बैठे थे वहीं पर चित गिर गये। मैंने अेक करुण चीख मारी। अभी तक मैं रोया न था। मानो अुसका सारा बदला अुस अेक ही चीखमें लेना था। दूसरे ही क्षण पिताजी अुठ बैठे और मुझे छातीसे चिपटा कर कहने लगे, 'दत्तू, डरो मत, मुझे कुछ भी नहीं हुआ।'

हम स्टीमरके पास पहुँच गये। लेकिन बिलकुल पास जानेकी हिम्मत कौन करता? कस्टमवाली किश्तीको तो अुन लोगोंने कबका अलग कर लिया था, क्योंकि वह लाँच और बड़ी नावके झोंके सह नहीं सकती थी। अुसकी रक्षा तो छूटनेमें ही थी। हमारी स्टीमलाँचने दूरसे स्टीमरकी प्रदक्षिणा कर ली, लेकिन किसी भी तरह पास जानेका मौक़ा नहीं मिलता था। तरंगोंके धक्केसे यदि लाँच स्टीमरके साथ टकरा जाती, तो बिलकुल आख़िरी क्षणमें हम सब चूर-चूर हो जाते। अन्तमें अूपरसे रस्सा फेंका गया और हमारे मल्लाह लाँचके छत पर खड़े होकर लम्बे लम्बे बाँसोंसे स्टीमरकी दीवालोंसे होनेवाली लाँचकी टक्करको रोकने लगे। तरंगें लाँचको जहाज़की तरफ़ फेंकनेकी कोशिश करतीं, तो मल्लाह अपने लम्बे-लम्बे बाँसोंकी नोकोंकी ढाल बनाकर सारी मार अपने हाथों और पैरों पर झेल लेते। अितने पर भी आख़िरमें स्टीमरकी सीढ़ीसे स्टीमलाँचकी छत टकरा ही गयी और कड़ड़ड़ड़ करके अेक लम्बा पटिया टूट कर समुद्रमें जा गिरा।

मैं पास ही था, अिसलिअे स्टीमरमें चढ़नेकी पहली बारी मेरी ही आयी। चढ़नेकी कैसी? गेंदकी तरह फेंके जाने की। खुद कप्तान और दूसरा अेक मल्लाह लाँचके किनारे पर खड़े रहकर अेक अेक आदमीको पकड़कर स्टीमरकी सीढ़ीके सबसे निचले पाये पर खड़े हुअे मल्लाहोंके हाथमें फेंक देते थे! अिसमें खास सावधानी यह रखी जाती थी कि जब लाँच हिलोरोंके गड्ढेमें जाती तो मुसाफ़िरको पकड़कर लाँचके अूपर

आने तक वे राह देखते; और दूसरे ही क्षण जब वह तरंगके शिखर पर चढ़ आती और सीढ़ी बिलकुल पास आ जाती, तो तुरन्त ही मुसाफ़िरको अुस तरफ़ फेंक देते और जहाज़ परके मल्लाह अुसे पकड़ लेते। दोनों ओरके खलासी यदि आदमीका हाथ पकड़ रखें तब तो दूसरे ही क्षण जब लाँच तरंगोंके गड्ढेमें अुतर जाती, मनुष्यकी फटकर जरासंधकी तरह दो फाँकें हो जातीं!

मैं अूपर चढ़ा और माँ आती है या नहीं यह देखने लगा। जब मैंने अेक बिलकुल अपरिचित अुजड्ड मुसलमानको माँके हाथोंको पकड़े हुअे देखा तो मेरा मन बेचैन हो अुठा। लेकिन वह प्राण बचानेका समय था। वहाँ कोमल भावनाओंका क्या काम? थोड़ी ही देरमें पिताजी भी वहाँ आ पहुँचे। देवताओंकी पेटी तो मैंने कंधे पर ही रखी थी। अूपर अच्छी जगह देखकर पिताजीने हमें बैठा दिया और सामान वापस लेने गये। मैं श्रद्धालु तो अवश्य था, लेकिन अुस वक्त मुझे पिताजी पर दरअसल बेहद ग़ुस्सा आया। चूल्हेमें जाये सारा सामान! जान जोखिममें डालनेके लिअे फिर क्यों जाते होंगे? लेकिन वे तो तीन बार हो आये। आख़िरी बार आकर कहने लगे, 'गोकर्ण-महाबलेश्वरके प्रसादका नारियल पानीमें गिर गया!' वह सुनकर माँ और मैं अेकसाथ बोल अुठे। माँने कहा, 'आह!' और मैंने कहा, 'बस अितना ही न?'

लाँचवाले यात्री चढ़ गये। फिर नाववालोंकी बारी आयी; वे भी चढ़े। अुसके बाद लाँच और नाव निशाचर भूतोंकी तरह चीखें मारती हुअी तटड़ीके किनारेकी ओर गअीं और वहाँ पर तपश्चर्या करते बैठे हुअे यात्रियोंको थोड़ा थोड़ा करके लाने लगीं। तूफ़ान अब कुछ ठंढा तो पड़ा था, लेकिन अंधेरी रात और अुछलती हुअी तरंगोंके बीच अुन लोगोंका जो हाल हुआ होगा, अुसका वर्णन कौन कर सकता है?

स्टीमर यात्रियोंसे ठसाठस भर गया। जो भी बोलता वह अपने समुद्रमें डूबे हुअे सामानकी ही बातें करता। आख़िर यात्री सब आ गये।

अीश्वरकी कृपा थी कि अेक भी आदमीकी जान न गयी । स्टीमर छूटा और लोग अपनी-अपनी पुरानी यात्राओंके अैसे ही संकटपूर्ण संस्मरण अेक-दूसरेको सुनाकर आजका दुःख कम करने लगे। रातको बड़ी देर तक किसीको नींद नहीं आयी। मैं कब सोया, कारवारका बन्दरगाह कब आया, और हम घर कब पहुँचे, अिनमें से आज कुछ भी याद नहीं है। लेकिन अुस दिनका वह तूफ़ान तो मानो कल ही हुआ हो, अिस तरह स्मृतिपट पर ताजा और स्पष्ट है। सचमुच :

'दुःखं सत्यं, सुखं मिथ्या
दुःखं जन्तोः परं धनम् ।'

१६
हम हाथी खरीदें

अेक बार हम साँगलीसे मीरज लौट रहे थे। साँगलीके राजमहलके आसपास हमने कअी हाथी बँधे हुअे देखे। हाथी कभी चुपचाप खड़े नहीं रहते। शरीरका बोझ दाहिनी ओरसे बायीं ओर और बायीं ओरसे दाहिनी ओर फिरानेमें हर समय डोला ही करते हैं। अिस तरह झूमना हाथीकी शोभा है। लोग अैसा समझते हैं कि यदि हाथी अिस तरह न झूले, तो अुसका मालिक छः महीनेके अंदर मर जाता है। न झूलनेवाले अशुभ हाथीको कोअी खरीदता भी नहीं। हाथीके लम्बे-लम्बे दाँत काटकर बेच डालते हैं और बचे हुअे हिस्सेमें सोनेके कड़े फँसाये जाते हैं — फिर भी वे काफी लम्बे तो रहते ही हैं। हाथीकी सभी हड्डियाँ हाथी-दाँतके तौर पर अिस्तेमाल की जाती हैं, लेकिन दरअसल अिन दाँतोंके टुकड़े ही अुत्तम हाथी-दाँत होते हैं और अुनकी क़ीमत भी ज़्यादा आती है। हाथीके पीछेका भाग यदि ढलता हुआ हो, तो वह हाथी बहुत रूपवान

माना जाता है। अगर अुसकी पीठ बिलकुल सपाट हो तो वह हाथी मामूली माना जाता है।

अैसा माना जाता है कि घोड़ेकी तरह हाथी भी रातको न सोता है और न बैठता ही है। हाथी सो जाये तो उसके कान अथवा सूंड़में चींटी घुस जाती है और अुसे काटती है, और जहाँ चींटीने काटा कि हाथी अुसी वक़्त मर जाता है, अैसी भी अेक धारणा लोगोंमें प्रचलित है। यह धारणा अिस नीति-बोध तक तो ठीक है कि अितने बड़े हाथीकी मौत अेक नाचीज़ चींटीके हाथमें है, लेकिन मैंने निश्चित रूपसे जान लिया है कि हाथी बैठता भी है और थोड़ा सोता भी है। कहा जाता है कि जब हाथी सोता है, तब अपनी सूंड़में कुछ घुस न जाये अिसलिअे सूंड़ मुँहके अन्दर रखकर सो जाता है। लेकिन फिर वह साँस किस तरह लेता होगा?

मीरजमें प्रवेश करते समय हमने देखा कि अेक छोटा-सा हाथी बिक्रीके लिअे खड़ा है। मैंने पिताजीसे पूछा, 'अिस हाथीकी क़ीमत क्या होगी?' हमें खुश करनेके लिअे पिताजीने गाड़ी रुकवायी और गाड़ी पर बैठे हुअे चपरासीसे कहा, 'हाथी कितनेमें बिक रहा है, यह ज़रा पूछ तो आ।' चपरासीने आकर कहा, 'अुसकी क़ीमत पाँच सौ तक जानेकी संभावना है।' बस! मैंने और केशूने हठ पकड़ा, 'हम हाथी खरीदें।' पिताजीने कहा, 'हमसे क्या वह हाथी खरीदा जा सकता है?' मैंने कहा, 'पाँच सौ रुपयेका ही तो सवाल है। आपकी दो महीनेकी तनख्वाह दे दें तो काफी होगा।' पिताजीने पूछा, 'लेकिन हाथी लेकर करेंगे क्या?' भाअूने कहा, 'अुस पर बैठेंगे और घूमने जायेंगे।' पिताजीने बातको रफ़ा-दफ़ा करनेके लिअे कहा, 'अैसी बेतुकी बातें नहीं की जातीं। हाथी तो राजा ही खरीद सकते हैं। हम जैसे हाथी रखने लगें तो दुनिया हँसेगी।' लेकिन अितनेसे न मुझे सन्तोष हुआ और न केशूको ही। हमने अेक ही ज़िद पकड़ रखी—'हम हाथी खरीदें।'

अितनेमें हमारी गाड़ी घर आ पहुँची। पिताजीने सोचा होगा कि यह मौक़ा बालकोंको सबक़ सिखानेके लिअे अच्छा है। अुन्होंने कहा, 'चलो, मैं हाथी खरीदनेको तैयार हूँ। लेकिन हम हाथी खरीदें, अुससे पहले तुम पूछताछ करके अितना हिसाब लगा लो कि वह रोज़ाना क्या खाता है, कितना खाता है, अुसके महावतको हर माह क्या तनख्वाह दी जाती है, अुसके लिअे हाथीखाना बनानेमें कितना खर्च आता है, और फिर मेरे पास आओ।'

हम बाहर निकले और अनेक जगह घूम कर जानकारी प्राप्त कर ली, तो दंग रह गये! हाथीको रोज़ाना गेहूँका मलीदा खिलाना पड़ता है। अितनी गाड़ियाँ घासकी, बड़के पत्ते, और गन्ना मिले तो अितना गन्ना, कअी पखालें भरकर पानी तथा गुड़, घी वग़ैरा हाथीको देना पड़ता है। अुसकी गजशाला अितनी अूँची होनी चाहिये, अुसीके साथ अुसके महावतका घर, अुसकी खूराक रखनेकी कोठरियाँ, रोज़ाना हाथीखाना धोकर साफ़ करनेवाला खास नौकर, हाथीको नहलानेके समय अुसके मददगार अितने लोग। अिस तरह हाथीका बजट बढ़ता ही चला। फिर हाथी जब मदमस्त होता है, तब अुसके चारों पैर मोटी-मोटी साँकलोंसे बाँधने पड़ते हैं। अेक ही साँकल हो तो वह अुसे तोड़कर गाँवमें घूमकर अुत्पात मचाता है; आदि विशेष बातें भी हमको मालूम हुअीं।। हिसाब करके देखा तो पता चला कि यदि हम हाथीको खिलायेंगे तो हमें अपने लिअे खानेको कुछ न बचेगा और अुसके लिअे घर बनाना हो तो हमें अपना घर बेच देना होगा। फिर अितना करके भी यदि हाथी रखा, तो अुसका अुपयोग क्या? किसी दिन अुस पर बैठकर घूम आयेंगे अितना ही तो है। और घूमनेके लिअे भी हाथीके लायक़ बड़ी झूल और अम्बारी तो होनी ही चाहिये। हम अपनी मूर्खता समझ गये और हमने बुद्धिमानी-युक्त निश्चय किया कि अब पिताजीके सामने हाथीका नाम भी नहीं लेना चाहिये।

लेकिन दूसरे दिन खुद पिताजीने ही बात छेड़ी। हमें अपना सारा हिसाब पेश करना पड़ा। हमें लज्जित देखकर अुन्होंने वह बात वहीं छोड़ दी। फिर जानकारी देते हुअे अुन्होंने कहा, 'तुम जानते हो, ज़िन्दा हाथीकी अपेक्षा मरे हुअे हाथीकी क़ीमत ज़्यादा होती है। जिन्दा हाथी जितना खाता है, अुतनी मात्रामें हमारे यहाँ काम नहीं रहता। असलिअे अुसी अनुपातसे अुसकी कीमत घट जाती है। मरे हुअे हाथीकी हड्डियोंकी क़ीमत ज़िन्दा हाथीसे भी ज़्यादा होती है। सिर्फ़ हाथी बड़ी अुम्रका होना चाहिये।' यह आखिरी वाक्य अुन्होंने किस मतलबसे कहा होगा, भगवान जानें!

फिर किसीने स्यामके राजाके सफ़ेद हाथीकी बात कही। स्यामके राजाके पास अेक पवित्र सफ़ेद हाथी होता है। अेक तो वह राजाका हाथी ठहरा और दूसरे पवित्र होता है असलिअे अुससे सेवा तो करायी ही नहीं जा सकती। अेक बार वह राजा अपने किसी सरदारसे मन ही मन नाराज़ हो गया, तो अुसने दरबारमें अुसकी खूब तारीफ़ की और कहा, 'जाओ, मैं खुश होकर तुम्हें अपना सफ़ेद हाथी भेंट करता हूँ।' राजाका हाथी होनेके कारण अुसे अच्छा खिलाना-पिलाना चाहिये और अुसकी अखण्ड सेवा भी होनी चाहिये। यह सब करनेमें अुस सरदारका दिवाला ही निकल गया! आज भी जब कोअी बिना फायदेका ख़र्चीला काम हाथमें ले लेता है, तब लोग कहते हैं कि अुसने सफ़ेद हाथी दरवाज़े पर बाँधा है। काम कौड़ीका न करे और तनख्वाह खूब ले, अैसे नौकर, मंत्री या वज़ीरको भी सफ़ेद हाथी कहते हैं।

अुपरोक्त घटनाके दो-तीन साल बाद मुझे कारवारमें मालूम हुआ कि वहाँ कोयलु नामक अेक अीसाअी व्यापारी है। अुसने जंगलसे बड़े-बड़े लक्कड़ अुठाकर लानेके लिअे हाथी रखे हैं। अुनसे वह अुनकी खूराककी क़ीमतसे भी ज़्यादा काम लेता है और खूब नफ़ा कमाता

है। अुन हाथियोंको जब मैंने अेक दिन देखा, तो मुझे अत्यन्त दया आयी। वे राजाके हाथियों जैसे मोटे-ताजे नहीं थे। अुनकी कनपटियाँ अितनी अन्दर धँसी हुअी थीं मानो बड़े-बड़े गहरे ताक ही हों!

२०

वाचनका प्रारंभ

छुटपनमें हमारे पढ़ने योग्य पुस्तकें हमें बहुत नहीं मिलती थीं। शाहपुरकी 'नेटिव जनरल लायब्रेरी' में जब मैं पहले पहल गया और देखा कि महीनेमें कमसे कम दो आने देने पर सिर्फ़ अखबार ही पढ़नेको नहीं मिलते, बल्कि पुस्तक-संग्रहमेंसे पुस्तकें भी पढ़नेके लिअे मिलती हैं तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। जिसे अिस तरहकी व्यवस्था सूझी होगी, अुसकी कल्पनाके प्रति मेरे मनमें बड़ा सम्मान पैदा हुआ। पुस्तकें खरीदनी न पड़ें, फिर भी पढ़नेको मिल जायँ, यह क्या कम सुविधा है? जिसे यह युक्ति सूझी होगी, वह मानवजातिका कल्याणकर्ता है अिसमें शक नहीं, अैसा मुझे अुस दिन अस्पष्ट रूपसे महसूस हुआ। घरमें तो शिवाजीका जीवनचरित्र, शिवाजीके गुरु दादाजी कोंडदेवकी जीवनी, रमेशचन्द्रके 'जीवन प्रभात' का मराठी अनुवाद और हरिश्चन्द्र नाटक, अितनी ही पुस्तकें पढ़ी थीं। अुसमेंसे बहुत कुछ तो समझमें भी न आया था। पुराण सुनने जाते, तो वहाँ ख़ूब मज़ा आता। लायब्रेरीसे जो पुस्तक सबसे पहले पढ़ी, अुसका नाम था 'मोचनगढ़'। अिस तरह पढ़नेका शौक़ शुरू हुआ ही था कि हम मीरज गये। अुस वक़्त मैं शायद मराठी चौथीमें पढ़ता था। मीरजमें मीरजमळा रियासतके हिसाबकी जाँच करनेका काम पिताजीको सौंपा गया था। अुस रियासतके दफ्तरमे न जाने क्यों, मराठी पुस्तकोंकी अेक अलमारी थी। केशूको अुस

पुस्तकसंग्रहका किसी तरह पता चल गया। वह वहाँसे पढ़नेको पुस्तक ले आया। मुझे भी पुस्तक लानेकी अिच्छा हुअी। मैंने पिताजीसे कहा, 'मुझे पढ़नेके लिअे पुस्तकें चाहिये।' जिसे क्लर्कके सुपुर्द वह संग्रह था, अुससे अुन्होंने कहा कि अिसे पढ़ने लायक पुस्तकें दे दो।

पिताजी हमारी शिक्षा या संस्कारोंकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। खुद अुन्हें पुस्तकें या अखबार पढ़नेका शौक़ न था। गपशप करनेके लिअे अुनके पास ज़्यादा लोग भी नहीं आते थे। यदि कोअी आ निकलता और बातें करता तो वे शिष्टाचारकी खातिर सुनते ज़रूर, लेकिन अुसमें ज़्यादा दिलचस्पी नहीं लेते थे। कचहरीका या घरका काम, बीमारोंकी सेवा, देवपूजा, स्तोत्रपाठ आदिमें ही अुनका सारा समय चला जाता। शामको नियमित रूपसे घूमने जाते। अपनी पसंदकी सब्ज़ी खरीदनेके लिअे खुद बाज़ार जाते। रातके साड़े आठ बजते ही सो जाना और सबेरे जल्दीसे चार बजे अुठकर अीश्वर-चिन्तन करना यह तो अुनका हमेशाका अखंडित कार्यक्रम था। अुन्हें दूसरा कुछ सूझता ही नहीं था; बीमार पड़ना भी कभी नहीं सूझा! तिहत्तर सालकी अुम्र तक अुनका अेक भी दाँत नहीं टूटा था और लगभग आखिर तक वे बाअिसिकल पर बैठते रहे।

हम क्या शिक्षा पाते हैं, कौनसी पुस्तकें पढ़ते हैं, किससे हमारी दोस्ती है, अथवा हमारे दिमागमें क्या चलता है, यह जाननेकी वे जरा भी फिक्र नहीं करते। फिर भी अुन्हें क्या अच्छा लगता है और क्या नहीं, अिसका हमें कुछ-कुछ खयाल था। अुनके सादे, सरल, स्वच्छ और अेकनिष्ठ जीवनका प्रभाव हम पर आप ही आप पड़ता था। लेकिन साहित्यके संबंधमें अुनकी लापरवाही हमारे लिअे बहुत ही बाधक सिद्ध हुअी।

क्लर्कने मुझसे पूछा, 'तुम्हें कैसी पुस्तक चाहिये?' 'मैं क्या जानूं?' मैंने कहा, 'कोअी मज़ेदार पुस्तक आप ही पसन्द करके दे दें।' अुसने पाँच-दस पुस्तकें हाथमें लेकर अुनमेंसे अेक मुझे दी और कहने लगा, 'यह ले जाओ। अिसमें बहुत ही मज़ा आयेगा।' अुसने वे सब पुस्तकें पढ़ी थीं, अिसमें तो शक नहीं। अुसने मुझे जो पुस्तक दी थी, अुसका नाम था 'कामकंदला'। वह नाटक था या अुपन्यास, यह तो मुझे ठीक याद नहीं है। बिना समझे मैं अुसे पढ़ने लगा। अुसमें मुझे विशेष आनन्द नहीं आया। आनन्द आने जैसी मेरी अुम्र भी न थी। फिर भी मैं अितना तो समझ गया कि यह पुस्तक गंदी है, अश्लील है।

अुस पुस्तककी अपेक्षा मुझ पर अेक दूसरे ही विचारका प्रभाव विशेष पड़ा। मैंने मनमें कहा, 'तब क्या केशू भी अैसी गंदी पुस्तकें पढ़ता है और अुनमें आनन्द लेता है? वह क्लर्क अुम्रमें बड़ा है। लेकिन हम-जैसे छोटे लड़कोंके लिअे वह अैसी पुस्तकोंकी सिफारिश क्यों करता होगा? चोरी करनी हो तो मनुष्यको अकेले ही करनी चाहिये। दो मिलकर जब चोरी करेंगे तो अितनी जानकारी तो अुनको हो ही जायेगी कि हम दोनों चोर हैं? किसीके साथ चोरीमें सहयोग देनेसे अुसके सामने तो बेशर्म बनना ही पड़ेगा न? केशू और वह क्लर्क अेक दूसरेके प्रति क्या खयाल रखते होंगे? और बिना किसी संकोचके अुस क्लर्कने मुझे अैसी पुस्तक दी, तो मेरे बारेमें वह क्या खयाल करता होगा? फिर केशू तो मेरा बड़ा भाअी; जो मुझे हमेशा समझदार बननेका अुपदेश देता है, जिसके नेतृत्वमें ही मैं हमेशा रहता हूँ वह कैसी पुस्तकें पढ़ता है, यह मुझे मालूम हो गया है, यह तो अुसको बताना ही होगा। अैसी खराब पुस्तकें पहले कभी मेरे हाथमें नहीं पड़ीं, यह बात वह क्लर्क शायद न जानता हो, लेकिन केशू तो जानता ही है। फिर अुसने मुझे अैसी पुस्तक लेनेसे या पढ़नेसे रोका क्यों नहीं?'

हम कैसी पुस्तकें पढ़ते हैं, यह पिताजीको मालूम नहीं अितना तो मैं जानता ही था; और किसीके सिखाये बिना ही मेरे ध्यानमें आ गया कि अैसी बातें पिताजीसे गुप्त ही रखनी चाहिये।

अुपरोक्त विचार-परम्पराको अुस वक़्त तो अैसी भाषामें अथवा अितनी स्पष्टतासे मैं प्रकट नहीं कर सकता। लेकिन अितना मैं विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि अिसमेंका अेक-अेक विचार अुस वक़्तका ही है। जब कोअी यह कहकर अपना बचाव करता है कि 'अमुक काम करना बुरा है, यह मैं अुस वक़्त नहीं जानता था,' तो अुसकी बात आसानीसे मेरी समझमें नहीं आती। अच्छा क्या और बुरा क्या अिसका स्थूल ख़याल तो मनुष्यको न जाने किस तरह बहुत ही जल्दी आ जाता है।

सौभाग्यसे अुस वक़्त मुझमें अैसी पुस्तकोंकी रुचि पैदा नहीं हुअी थी। अजायबघर देखने जाना, कविताअें रटना, खेल खेलना, गोंदूके साथ गप्पें लड़ाना और फ़ुरसतके समयमें बड़े होने पर बड़े बड़े मंदिर या मकान कैसे बनायेंगे अिसका विचार करना, यही मेरा मुख्य व्यवसाय था। बिल्लियाँ और कबूतर मेरे अुस समयके जीवनके मुख्य साथी थे। अेक ब्राह्मण विधवा बुढ़िया हमारे यहाँ भिक्षा माँगनेको आती। अुसके पास लोक-गीतोंका भण्डार था। मेरी माँको लोक-गीतोंका बहुत शौक़ था। अुसे वह शौक़ मेरी अक्का (बड़ी बहन) ने ही लगाया था। अक्काके पास लोक-गीतोंका बहुत बड़ा लिखित संग्रह था और वे सब गीत अुसे ज़बानी याद भी थे। सीताका विलाप, द्रौपदीकी पुकार, दमयन्तीका संकट, रुक्मणीका विवाह, हनुमानकी लंका-लीला, श्रीकृष्णके द्वारा की गयी गोपियोंकी फ़ज़ीहत, आदि अुन गीतोंके मुख्य विषय थे। कभी-कभी श्मशानवासी बाबा महादेव और अुनकी अनन्य भक्ति करनेवाली शैलजा पार्वतीके बारेमें लोकगीत शुरू हो जाता। मेरी माँ और मेरी भाभियाँ सभी अनपढ़ ही थीं, अिसलिअे श्रौत पद्धतिसे ही वे कविताका स्वाद ले सकती

थीं और गुरुमुखसे ही गीत याद कर सकती थीं। वह बुढ़िया लगभग सारी दुपहरी हमारे यहाँ बिताती। असुसे असे आमदनी भी काफी होती, और माँ व भाभियोंको काव्यका आनंद मिलता। चूँकि मैंने स्कूल जानेकी ज़िम्मेवारी स्वीकार नहीं की थी, अतः अुस काव्य-रसमें हिस्सा लेनेसे मैं न चूकता। माँके साथ मैं भी कअी लोकगीत अनायास ही सीख जाता था। जब मैं कुछ बड़ा हो गया तो मेरे सिरमें यह भूत समा गया कि औरतोंके गीत याद रखना मर्दोंको शोभा नहीं देता, अिसलिअे मैं प्रयत्नपूर्वक अुन लोकगीतोंको भूल गया।

अुस वक्तके अैसे शुद्ध रसके मुक़ाबलेमें मैं 'कामकंदला' में मशगूल नहीं हो सका, अिसमें क्या आश्चर्य? अुस पुस्तकको पूरा करनेके पहले ही हमारा मीरजका मुकाम पूरा हो गया और हम जत गये। अैसी पुस्तक मैंने केवल यही पढ़ी। अुसका असर अुस वक़्त तो कुछ न हुआ, लेकिन जैसे गर्मीमें बोया हुआ बीज जैसाका वैसा पड़ा रहता है और बरसात होने पर फूट निकलता है तथा बढ़ता है, वैसे ही अुम्र बढ़ने पर अुस पुस्तकके वाचनने अपना असर बताया और मनमें गन्दे विचार आने लगे। लेकिन घरका रहनसहन और संस्कार शुद्ध, पिताजीकी धर्म-निष्ठा ज़बरदस्त, और बड़े भाअीका नैतिक पहरा निरन्तर जाग्रत रहता था, अिसीलिअे अुन गन्दे विचारोंके अंकुर जहाँके तहाँ दब गये और कल्पनाकी विकृतिके अलावा अुसका ज़्यादा बुरा असर नहीं हुआ। वातावरण शुद्ध हो तो ख़राब वाचनके बावजूद मनुष्य कुछ-कुछ बच सकता है। ख़राब वाचन ख़राब तो होता ही है; अुससे बालकोंको बचाना चाहिये। लेकिन निर्दोष और प्रेमपूर्ण कौटुम्बिक वातावरण ही सबसे ज़्यादा महत्त्व रखता है। जहाँ शुद्ध वात्सल्यका आस्वाद मिलता है, वहाँ जीवन सहज ही सुरक्षित रहता है।

२१

यल्लाम्माका मेला

यल्लाम्माके मेलेका कर्नाटकमें बड़ा महत्त्व है। कन्नड़ भाषामें यल्ला यानी सब, और अम्मा यानी माँ। अिस तरह यल्लाम्मा देवी विश्वजननी, सबकी माता है। अुसीका दूसरा नाम है रेणुका।

यह रेणुका यल्लाम्मा कौन होगी? पशु-पक्षी, मानव-दानव वृक्ष-पत्ते, कृमि-कीट-पतंग सबको जन्म देनेवाली, सबका पालन-पोषण करनेवाली यह रेणुका कौन होगी? 'वन्दे मातरम्' कह कर हम जिसका जय-जयकार करते हैं, वह धरती माता, असंख्य अणुरेणुओंसे बनी हुअी मृण्मयी कृषिमाता ही यल्लाम्मा है। अुस यल्लाम्माका अुत्सव किसानोंके लिअे बड़ेसे बड़ा अुत्सव क्यों न होगा? वेदकालसे ऋषि-मुनि कहते आये हैं कि वर्षा करनेवाला आकाश या द्यौ पिता है और आकाशके पर्जन्य (वर्षा)को धारण करके शस्यशालिनी बननेवाली पृथ्वी माता है।

यल्लाम्माका मेला हर वर्ष लगता है। अुसके निमित्त दूर दूरके किसान अिकट्ठे होते हैं; कलावान गुणीजन अुस जगह अपना कौशल प्रकट कर सकते हैं। व्यापारी तरह-तरहका माल बेचनेको लाते हैं। क्रय-विक्रयरूपी महान् विनिमयका वह दिन होता है।

लेकिन यल्लाम्माके मेलेका मुख्य आकर्षण तो बैलोंकी प्रदर्शनी है। आपको बढ़ियासे बढ़िया बैल देखने हों, समान आकारके, समान रंगके, समान सींगोंवाले और समान ताक़तवाले खिलारी बैलोंकी चाहे जितनी जोड़ियाँ खरीदनी हों, तो आप यल्लाम्माके मेलेमें जाअिये।

बड़े-बड़े और अेक तरफ़ झुके हुअे डिल्लोंवाले बैलोंको गजगतिसे चलते देखकर सचमुच आँखें तृप्त हो जाती हैं।

कुछ बैलोंके सफ़ेद शरीर पर रंगमें डुबाये हुअे हाथोंकी छाप लगी होती है। अुनके सींगोंको हिरमिजी लाल तेलिया रंग लगाया हुआ होता है। सींगोंकी नोंकमें छेद करके अुनमें पीले, भूरे या जामुनी रंगके रेशमी झूमके लटकाये जाते हैं। गलेमें घुंघुरू तो होने ही चाहिये। कुछ अूँची जातिके बैलोंके अगले बायें पैरमें चाँदीका तोड़ा पहनाया जाता है। अुस दिनकी खुशीका क्या पूछना! हरअेक बैलके मालिककी छाती अभिमानसे कितनी फूली हुअी होती है! अुसके सामने अुसके बैलकी बात करनी हो, तो ज़रा संभलकर ही कीजियेगा! आपकी अैसी वैसी बात अुससे बर्दाश्त न होगी। सच्चा किसान अपने बैलसे काम तो पूरा लेता है, लेकिन वह अुसका आराध्य देवता ही होता है। बैल अुसका प्राण है। बैलकी सेवा वह किसी लाभके लालचसे नहीं करता। अपने बेटेसे भी अुसे अपने बैल पर ज्यादा प्रेम होता है।

अैसे मेले कर्नाटकमें अनेक जगह लगते हैं। जब हम जतमें थे, तब यल्लाम्माका मेला देखने गये थे। भीड़में घूमना-फिरना आसान नहीं था। राजकी ओरसे हमें दो चपरासी मिले थे। वे हमारे सामने चलते हुअे लोगोंको डराकर हमारे लिअे रास्ता बनाते। जगह-जगह ग्रामीण खादीकी दूकानें लगी हुअी थीं, और दूकानदार दो हाथका लम्बा गज़ अपनी छाती पर दबाकर कपड़ा माप देते। जब खादीका कपड़ा फटता तो अैसी मज़ेदार आवाज़ निकलती कि अुसे सुननेके लिअे खड़े रहनेका मन होता।

बाज़ारमें घूमते-घूमते हम अेक अैसी जगह पहुँचे, जहाँ खूब भीड़ थी। वहाँ झूला घूम रहा था। छुटपनमें हमें पैसे तो हाथमें दिये ही नहीं जाते थे, अिससे यदि झूलनेका मन हुआ भी तो वह लोभ हमें अपने मनमें ही रखना पड़ा। देहाती बालकों और कुछ शौक़ीन व जोशीले बूढ़ोंको भी झूलेमें झुलते देखकर मेरे मनमें आया कि हमसे ये ग़रीब लोग कितने सुखी हैं। जब चाहें तभी झूलेमें

बैठ सकते हैं। अितनेमें हमारे चपरासीने झूलेवालेसे कहा, 'अै झूलेवाले, ये साहबके लड़के हैं। अिन्हें झूलेमें बैठा।' मैंने धीरेसे चपरासीसे कहा, 'लेकिन हमारे पास तो अेक भी पैसा नहीं है।' अुसने मेरा हाथ दबाकर अुससे भी धीमी आवाज़में कहा, "अुसकी फिकर नहीं। आप बैठें तो सही।"

बिना विशेष विचार किये हमारा अुत्कंठित मन हमें झूलेकी ओर ले गया। झूलेवाले झूला घुमाते हुअे कुछ गाते जाते थे। अेक आदमी ज़ोरसे फेरोंकी गिनती करता था। बैठनेमें तो खूब ही मज़ा आया। हम बैठे थे अिसलिअे झूलेवालेने पाँच-दस चक्कर ज़्यादा लगाये। अुसने मनमें कहा होगा, "बड़े बापके बेटे हैं, पाँच-दस चक्कर ज़्यादा लगा दिये तो खुश हो जायेंगे। 'तुष्यतु दुर्जनः।'

हम नीचे अुतरे और चलने लगे। मेरे मनमें तरह-तरहके ख़याल आने लगे। शरीर अुतरा लेकिन मन झूले पर चक्कर खाता रहा। हम मुफ्तमें बैठे यानी भिखारी जैसे हुअे, यह खयाल मनमें आता कि दूसरे ही क्षण अभिमान कहता, 'भिखारी कैसे? अुसने हम पर दया करके तो बैठाया ही नहीं। हम अफ़सरके लड़के ठहरे। हमसे डरकर अुसने हमें बैठाया। जब वह हमेशाकी अपेक्षा ज़्यादा चक्कर लगा रहा था, तब शेष तीन पालनोंमें बैठे हुअे लड़के और प्रेक्षक हमारी ओर ही देख रहे थे न? बड़प्पनके बिना भला अैसा हो सकता है?' यों मनको तसल्ली तो होती थी, लेकिन फिर विचार आता, 'झूलेसे अुतरनेके बाद जब हम चलने लगे, तब जो शर्म महसूस हुअी वह किस लिअे? जब दूसरे सब अेक-अेक पैसा दे रहे थे तब हमने भी यदि जेबसे चवन्नी निकालकर दी होती, और अुसने झुककर सलाम किया होता, तब तो यह बड़प्पन शोभा देता। लेकिन हम तो ठहरे बालक! हमारे पास पैसे कहाँसे आयें? हाँ, यह ठीक है। फिर तो हमें झूलेमें बैठना ही न चाहिये था। लेकिन मैं कहाँ अपने आप बैठने गया था? मुझे तो सखारामने

बैठाया। लेकिन फिर भी क्या मुझे अिन्कार न करना चाहिये था? अैसे-अैसे अनेक विचार मनमें आये और गये! झूलेमें बैठकर हमने अपनी फजीहत ही कर ली, अुससे हमारी शोभा तो बढ़ी ही नहीं, अिस खयालको हटानेका मैं कितना ही प्रयत्न करता था लेकिन वह मनसे हटता नहीं था।

* * *

दूसरे दिन मेलेमें बकरेकी बलि दी जानेवाली थी। राजा-साहब (वह भी लगभग मेरी ही अुम्रके थे) खुद आनेवाले थे। अेक तंबू तानकर अुसमें आबासाहब (जतके राजासाहब) और अुनके सब अफ़सर बैठे थे। आबासाहबने रेशमका हरा अँगरखा पहना था। सिर पर मराठाशाही पगड़ी तिरछी पहनी थी। अुनके दीवान दाजीबा मुळे अुनके पास बैठे थे। आबासाहब गंभीरतासे बैठे थे। अितना-सा लड़का अितनी गंभीरता धारण कर सकता है, यह देखकर मेरे मनमें अुनके प्रति आदर पैदा हुआ। लेकिन मैंने यह भी देखा कि अुनके साथ रहनेवाला मुसाहिब जब दूरसे अुनकी ओर कनखियोंसे देखता और कुछ सूक्ष्म मसखरी करता, तब आबासाहबको भी अपनी हँसी दबाना मुश्किल हो जाता था। वे कुछ चिढ़कर अुसकी ओर न देखनेका निश्चय करके मुँह फेर लेते थे; फिर भी हठीली आँखें तिरछी नज़रसे अुसी दिशामें देखतीं और अुनकी आँखें चार होते ही अुनका हँसी दबानेका संयम और भी ढीला पड़ जाता था। अच्छा हुआ कि अुन दोनोंको पता न चला कि तीसरा मैं अुन दोनोंकी हरकतें दिलचस्पीके साथ देख रहा था।

बाल-भूख बड़ी तेज़ होती है। नौ बजनेका समय हुआ कि दीवान साहबने ज़रा-सा अिशारा करके आबासाहबको तम्बूके पीछे नाश्ता करनेको भेजा। अन्दर जानेके बाद आबासाहबने कहा होगा कि 'अुन ऑडिटरके लड़कोंको भी बुलाओ।' हम भीतर गये। अुनके साथ खानेको

बैठे। मनमें बेचैनी-सी पैदा हुअी। 'राजा हुआ तो क्या? आखिर है तो वह राजपूत ही; और हम ठहरे ब्राह्मण। अिन लोगोंके साथ बैठकर कैसे खाया जा सकता है?' मैं गोंदूकी ओर देखने लगा और गोंदू मेरी ओर। हमारे साथ वहाँ कोअी बात भी नहीं कर रहा था, यह और भी परेशानीकी बात थी। अितनेमें दीवानसाहब अन्दर आये। शायद पिताजीने अुनसे कुछ कहा हो। अुन्होंने कहा, 'तुम मनमें कोअी संकोच मत रखो। ये तो बूंदीके लड्डू हैं; अिन्हें खानेमें कोअी हर्ज नहीं। तुम्हारे लिअे बाहर लोटेमें पानी रखा है वह पी लेना।' हमने नाश्ता किया तो सही, लेकिन ज़रा भी मज़ा न आया। हमें भीतर बुलानेमें कोअी प्रेम-भावना नहीं, निरा शिष्टाचार था। किसी प्रकारके परिचयके बिना बातचीत भी कैसे होती? जानवरकी तरह चुपचाप खा लिया, ब्राह्मणी पानी पी लिया, और किसी तरह वहाँसे अुठकर तंबूमें आ बैठे।

अितनेमें बलि चढ़ानेका समय हुआ। अेक बड़ा घेरा बनाकर लोग देखनेके लिअे खड़े हो गये। भीड़के कारण घेरा तंग होने लगा। प्रबंध रखनेवाले पुलिसके आदमी डंडों और कोड़ोंसे लोगोंको हटाने लगे। लेकिन अुसी वक़्त दीवानसाहबने अुठकर तेज़ आवाज़से पुलिसवालोंको डाँटकर कहा, 'खबरदार, यदि लोगोंको मारा तो! लोगोंको समझा-बुझाकर पीछे हटाओ।' मुझे दीवानका यह हुक्म बहुत अच्छा लगा। अधिकारियोंमें भी लोगोंके प्रति कुछ सद्भावना रहती है, यह आश्चर्यजनक खोज अुस वक़्त हुअी। मैं दाजीबाकी ओर आदरकी दृष्टिसे देखने लगा।

अितनेमें बाजे बजने लगे। अेक छोटासा बकरा बलिदानके लिअे लाया गया। अुसके माथे पर बहुत-सा कुंकुम लगाया गया था और गलेमें फूलोंकी मालाअें डाली गयी थीं। अेक गहरी खाअीमें जलते हुअे अंगारे थे। खाअीके आसपास केलेके पेड़ खड़े किये गये थे। अेक आदमीने खाअीकी अेक तरफ खड़े होकर बकरेके पिछले दो पैर पकड़े;

दूसरेने खाअीकी परली बाजूसे दूसरे दो पैर पकड़े। बेचारा बकरा खाअीके अूपर लटकने लगा। अितनेमें वहाँ पुरोहित आया। अुसके हाथमें तलवार थी। मेरा दिल कसमसाने लगा। गला रुँध गया। मैंने तुरन्त ही मुँह फेर लिया।

आसपासके लोगोंने 'अुदो अुदो' का नारा लगाया। बकरेके टुकड़े खाअीमें फेंक दिये गये होंगे, और पुरोहित तथा अुसके पीछे दूसरे अनेक लोग जलती हुअी खाअीमें से गुजरे होंगे। देखते देखते सब ओर अव्यवस्था फैल गयी। हम सब अपनी-अपनी सवारियोंमें बैठकर भीड़में से मुश्किलसे रास्ता निकाल कर अपने-अपने घर पहुँचे।

* * *

क्या यल्लाम्माको अैसा बलिदान भाता होगा? यल्लाम्मा जानती है कि वृक्ष सिर्फ़ कीचड़ खाते हैं, पशु वृक्षोंके पत्ते खाते हैं, पक्षी कीटाणुओंको खा जाते हैं, मनुष्य अनाज, साग-सब्ज़ी और पशु-पक्षियोंको खाता है, सूक्ष्म रोग-कीटाणु मनुष्यको खाते हैं; हवा, मिट्टी और सूर्यप्रकाश सूक्ष्म कीटाणुओंका नाश करते हैं। अिस तरह हिंसा-चक्र तो चलता ही रहता है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्।' लेकिन अिन सबकी माता यल्लाम्मा तो अशना (भूख) और पिपासा (प्यास) दोनोंसे परे है। अिसीलिअे वह यल्लाम्मा है। अुसे भला बलि कैसे चढ़ायी जाये? अुसके सतत आत्मबलिदानसे तो हम सब जीते हैं। अुसे बलि देनेका विधान हो ही नहीं सकता। अुसके बलिदानसे हमें आत्मबलिदानकी दीक्षा लेनी चाहिये।

जब तक जानवरोंकी तरफ़ खाद्यवस्तु अथवा जायदादके रूपमें ही देखा जाता था, तब तक अुनकी बलि क्षम्य थी। लेकिन जब हमने यह जान लिया कि जानवर भी हमारे भाअी-बन्द हैं, यल्लाम्माके बालक हैं, तब तो अुन्हें बलि चढ़ाना धर्मके नाम पर शुद्ध अधर्म करनेके समान है।

२२

विठोबाकी मूर्ति

जत दक्षिण महाराष्ट्रकी अेक रियासतकी राजधानीका शहर था। वहाँसे हम पंढरपुर जा रहे थे। जाड़ेके दिन थे। बहुत कड़ाकेकी सर्दी थी। बैलगाड़ीमें बैठना हमें बिलकुल पसंद नहीं था। यद्यपि वह सरकारी गाड़ी थी बहुत सुन्दर और सुविधाजनक; लेकिन हम जैसे बच्चोंको लगातार बैठे रहना कैसे अच्छा लगता? अतः हम गाड़ीके साथ रोज़ाना सवेरे-शाम पैदल ही चलते। जाड़ेके दिनोंमें धूलमें चलनेसे शामको पैर फट जाते। तलुवे ही नहीं, बल्कि अूपर टखने तक सारी चमड़ी फट जाती; और पिंडली परकी चमड़ी भी रेगमालकी तरह खुरदरी हो जाती और तलुवोंकी दरारोंमें से ख़ून निकलने लगता। सोनेके समय पिताजी गरम पानी और साबुनसे हमारे पैर धो डालते और माँ दूधकी मलाअी लेकर गालों और ओठों पर मलती। साबुनसे पैर धुलाना तो असह्य होता, लेकिन मलाअी मलवानेकी क्रिया अच्छी लगती थी। माँ मलाअी मलनेको आती, तब मैं सो जानेका बहाना करता और जहाँ माँ की अँगुली ओठोंके पास आती कि तुरन्त ही मैं अँगुली मुँहमें पकड़कर सारी मलाअी चाट जाता था। यह युक्ति अेक-दो बार ही सफल हुअी। लेकिन हमेशा माँ ही मलाअी मलती हो सो बात नहीं थी। किसी दिन बड़ी भाभी आती, तो किसी दिन मँझली भाभी। फिर यह भी नहीं था कि अिस तरह मैं जो मलाअी खा जाता था, वह माँको बिलकुल ही अच्छा नहीं लगता था। माँ नाराज़ अवश्य होती थी, लेकिन अुसकी नाराज़ी अूपर ही अूपरकी होती।

अेक दिन शामको हमने अेक गाँवमें मुकाम किया। वहाँ धर्मशाला नहीं थी, अिसलिअे विठोबाके मंदिरमें डेरा डाला। पंढरपुरके आसपास

बहुत दूर तक हर गाँवमें विठोबाका मंदिर तो होता ही है। विठोबा और रखुमाओी (रुक्मिणी) दोनों कमर पर हाथ रखे, दोनों पैर बराबर मिलाये हुअे हर मंदिरमें खड़े मिलते ही हैं। शाम हुओ कि गाँवके लोग — स्त्री-पुरुष सब — अेकके बाद अेक देव-दर्शनके लिअे आते हैं और विठोबाको 'क्षेम' देकर — यानी आलिंगन करके — और चरणों पर मस्तक रखकर लौट जाते हैं। यह अुस प्रदेशका रिवाज ही है। हम तो यह सब आश्चर्यसे देखते।

पीनेका पानी दूरके अेक झरनेसे लाना था। भाभी, गोंदू और मैं तीनों पानी लाने गये। अँधेरेमें रास्ता दीखता न था, जाड़ेसे दाँत कटकटाते थे। मैंने झरनेमें लोटा डुबोया। ओफ़! मानो काले बिच्छूने डंक मारा हो अिस तरह हाथकी हालत हुओ। पानी अितना ठंडा था कि मैंने लोटा छोड़कर हाथ पीछे खींच लिया और कहा, 'अैसे पानीमें अब फिरसे हाथ डालनेकी मेरी हिम्मत नहीं है।' लेकिन लोटा क्या अैसे ही छोड़कर आया जा सकता था? गोंदूने हिम्मतके साथ पानीमें से लोटा बाहर निकाला, अितना ही नहीं, अुसने बाकीके सारे बरतन भी भर दिये।

हम लौटे। गोंदूकी अिस बहादुरीको देखकर मेरे मनमें अुसके प्रति आदर पैदा हुआ। अुसका अेक सूत्र था — 'आज दुःख अुठायेंगे, तो कल सुख मिलेगा। आज मिरची खायेंगे, तो कल शक्कर खानेको मिलेगी।' और अिस सूत्रका वह अक्षरशः पालन भी करता था। बड़े होने पर खूब मीठा-मीठा खानेको मिलेगा, अिसके लिअे वह कओी बार खुशी-नाखुशीसे मिर्च खाता; अितना ही नहीं, बड़े भाओीका अधिकार चलाकर मुझे भी खिलाता! मैं गोंदूके समान श्रद्धावान नहीं था। अिसलिअे अुसके सिद्धान्तका अक्षरार्थ नहीं मान सकता था। लेकिन जो छः भाअियोंमें सबसे छोटा था, अुसे पाँच गुनी ताबेदारी अुठानी पड़ती थी। अिस तरह गोंदूके अिस सिद्धान्तके कारण अुसमें तितिक्षाका

भाव काफी मात्रामें आ गया था। मैं भी तितिक्षा बतलाता तो सही, लेकिन वह बहादुरीके खयालसे या जोशमें आकर ही करता था।

पानी लेकर हम घर आये। रात हो गयी थी, अिसलिअे गाँवके लोगोंका आना-जाना बंद हो गया था। अब गोंदूका भक्तिभाव जाग्रत हुआ! अुसके मनमें भी आया कि गाँवके लोगोंकी तरह हम भी विठोबाको क्षेम दें। धीरेसे वह मंदिरके भीतरी भागमें गया और भक्तिके अुबालके साथ अुसने विठोबाको दोनों बाहुओंमें बाँध लिया। लेकिन अरे! कैसी भगवानकी लीला! विठोबाकी मूर्ति अपना स्थान छोड़कर गोंदूके हाथोंमें आ गयी! अुसका बोझ गोंदूकी छातीके लिअे असह्य हो गया! गोंदूने देखा कि मूर्तिके पैर टखनोंके कुछ अूपरसे टूट गये हैं। अब क्या किया जाय? यह तो ग़ज़ब हुआ! विठोबाकी भक्ति बहुत ही महँगी पड़ी! अुसने चिल्लाकर मुझसे कहा, 'दत्तू, दत्तू, अिकड़े ये; हें बघ काय झालं?' (दत्तू, दत्तू, यहाँ आ; यह देख क्या हो गया?)

मैं दौड़ता हुआ गया। थोड़ी-सी कोशिशसे मैंने विठोबाको गोंदूके बाहु-पाशसे छुड़ाया। बादमें हम दोनोंने मिलकर विठोबाको फिरसे पैरों पर खड़े करनेका प्रयत्न किया। लेकिन अट्ठाअीस युगों तक अिसी तरह खड़े रहनेसे विठोबा महाराज बिलकुल अूब गये थे। वे फिरसे खड़े होनेको तैयार न थे। हम हार गये। अतः मैंने गोंदूके मना करने पर भी पिताजीको बुलाया और सारी स्थिति बतलायी। अुन्होंने पहले तो मूर्तिको किसी तरह ठीक किया और फिर हम दोनोंको फटकारा। मेरा ख़ुदका दोष तो था ही नहीं, लेकिन मैंने सोचा कि यदि मैं अपना बचाव करूँगा, तो गोंदूको और भी ज़्यादा सुनना पड़ेगा। अिसके बजाय यदि चुपचाप अुसके साथ सुनता रहूँ, तो बेचारेका दुःख अितना तो कम होगा न? सुख-दुःख समान रूपमें बाँट लेना, यह हम तीनों भाअियों (केशू, गोंदू और मैं)का क़ौल-क़रार था। लेकिन विठोबाके आलिंगनसे

मिलनेवाले पुण्यका आधा हिस्सा मुझे मिलेगा या नहीं, अिसका मैंने विचार तक नहीं किया।

दूसरे दिन सबेरे अेक लड़की विठोबाको क्षेम देने आयी। विठोबाने अुस पर भी अपने अूब जानेकी बात प्रकट की। मैं तो अपने बिस्तरमें पड़े-पड़े यह देख रहा था कि अब क्या होता है? लेकिन वह लड़की ज़रा भी न डरी। मुझे बिस्तरमें से ताकते हुअे देखकर कहने लगी, 'अिस मूर्तिके पैर पहले भी अेक बार टूट गये थे। गाँवके लोगोंने जैसे-तैसे बैठा दिये थे। आज फिर ढीले हुअे जान पड़ते हैं।'

रायटरके संवाददाताकी गतिसे मैंने यह खबर पहले गोंदूको और फिर पिताजीको दी, तो हम तीनोंके जी ठण्डे हुअे। शरीर तो कड़कड़ाते जाड़ेमें काँप ही रहे थे।

२३

अुपास्य देवताका चुनाव

लोकमान्य तिलकने हिन्दू धर्मकी परिभाषा अिस प्रकार की है :—

प्रामाण्यबुद्धिर्वेदेषु, साधनानामनेकता ।
अुपास्यानामनियमः, अेतद्धर्मस्य लक्षणम् ।।

अिस श्लोकमें हिन्दू धर्मकी अुदारता और विशेषता आ जाती है। अीश्वरको पहचानने और प्राप्त करनेके साधन अनेक हैं, क्योंकि मनुष्यका स्वभाव विविध है। फिर अेकेश्वरवादी हिन्दू धर्ममें अुपास्य देवता भी अनन्त हैं, क्योंकि अीश्वरकी विभूतिका अन्त नहीं है। साधन और अुपास्यके संबंधमें कुल-धर्म भी बाधक नहीं होता। कअी बार यह देखनेमें आता है कि मनुष्यका कुलदेवता अलग

रहता है और अुपास्य देवता अलग। अपना अुपास्य मनुष्यको अपनी अभिरुचिके अनुसार पसन्द करना होता है।

मेरा अुपनयन हुआ अुसके पहले ही, यानी बहुत ही छोटी अुम्रमें मुझे अपना अुपास्य चुन लेनेकी बात सूझी थी। धर्मका गहरा रहस्य जाने बिना पौराणिक कथाओंके आधार पर ही मुझे चुनाव करना था। हमारे कुलदेवता थे मंगेश-महारुद्र और महालक्ष्मी। महालक्ष्मी वैष्णवी शक्ति भी हो सकती है और शैवी शक्ति भी। मंगेश शब्दकी अुत्पत्ति अभी भी निश्चित नहीं हुअी है। कोअी कोअी मानते हैं कि आदि माया पार्वतीने जंगलमें अेक शेरसे डरकर 'त्राहि मां गिरीश' अैसी चीख मारी। डरके मारे वाणी अस्पष्ट होनेसे 'त्राहि मां गीश' अुच्चारण हुआ। महादेवको यही नाम पसंद आ गया, और 'मांगीश' से 'मंगेश' बन गया। खुद मेरा तो अिस पौराणिक कथा पर विश्वास नहीं बैठता। मैं मानता हूँ कि 'मंगलेश' से ही 'मंगेश' बना होगा। चाहे जो हो, शिव और शक्ति हमारे कुलदेव हैं अिसमें शक नहीं।

लेकिन पंढरपुर हो आनेके बाद विठोबा पर मेरी भक्ति सबसे पहले जम गयी थी। गोंदू पर भी यही असर पड़ा था। अिसलिअे हम दोनोंने पिताजीसे 'हरिविजय' की माँग की। 'हरिविजय' भागवतका मराठी सार है। हमने सारी 'हरिविजय' पढ़ डाली। अुसमें से कुछ तो समझमें आया और कुछ नहीं भी आया। कृष्ण-गोपियोंका शृंगार अुसमें क़दम-क़दम पर आता है। लेकिन हम बालक अुसे क्या समझते? जब श्रीकृष्णके पराक्रम और अुत्पातोंका वर्णन आता, तब हमें बड़ा आनंद आता। बाल्यकाल तो हमेशा अद्‌भुत-रस और हास्य-रसका ही भूखा रहता है।

हमारा 'हरिविजय' का पारायण चल रहा था कि अितनेमें पूनासे केशू आया। केशू बाबाके पास रहकर पढ़ता था, अिसलिअे अुसे अुच्च नैतिकताका वातावरण मिला था। धर्माभिमानकी भावना

भी पूनाके वातावरणमें अुसमें काफ़ी पैदा हो गयी थी। हमें 'हरिविजय' पढ़ते देखकर अुसे बड़ा आश्चर्य हुआ। अुसने हमें समझाया कि, 'श्रीकृष्ण खराब देवता है, स्त्रैण है, गोपियोंके साथ की हुअी अुसकी लीलाअें गन्दी हैं। अुस व्यभिचारीकी पूजा नहीं करनी चाहिये। सच्चा देवता तो बस अेक महादेव है। वही है हमारा कुलदेवता। अुसीकी भक्ति हमें करनी चाहिये। हम कहाँ हाथमें तराजू लेकर सोना तौलनेवाले वैष्णव सराफ़ हैं, जो विष्णुकी भक्ति करें।*

गोंदूको यह आलोचना पसंद नहीं आयी। अुसकी राय केशूसे अलग रही। 'हरिविजय' पर अुसकी भक्ति क़ायम रही। मैं तो केशूका लाड़ला। अुसकी बात तुरन्त मेरे गले अुतर जाती थी। मैंने 'हरिविजय' को फेंक दिया और कृष्णनिन्दामें दिलचस्पी लेने लगा। केशूकी अिच्छाके अनुसार आधा परिणाम तो हो गया, लेकिन महादेवको मैं अपना अुपास्य देवता नहीं बना सका। मैंने सोचा, महादेव कुलदेवता तो है, लेकिन अुपास्य कोअी दूसरा ही होना चाहिये। मैंने पिताजीसे पूछा, 'कुलदेवता कितने हैं?' मुझे गंभीरतासे अुपास्यका चुनाव करना था, अिसलिअे कितने देवताओंमें से चुनाव हो सकता है, यह जान लेना जरूरी था। पिताजीने कहा, 'अैसे तो देव अेक ही है। और वह सब जगह मौजूद है — जल, स्थल,

---

* बेलगाँवकी ओर हमारी जातिमें कुछ वैष्णव हैं और वे सब सराफ़का धंधा करते हैं। वे भागवत धर्मका पालन करते हैं। हम ठहरे अुन लोगोंसे अपनेको अूँचा माननेवाले, स्मार्त धर्मका पालन करनेवाले! जहाँ तक संभव हो हम अपनी लड़कियाँ सराफ़ोंके यहाँ नहीं देते। हाँ, अुनकी लड़कियाँ लेते अवश्य हैं; लेकिन प्रयत्नपूर्वक अुनका वैष्णवपन धो-पोंछकर अुन्हें स्मार्त बना लेते हैं। लेकिन अिसे तो अेक ज़माना बीत गया है और अब यह भेद पहले जैसा नहीं रहा।

काष्ठ, पाषाण सबमें है; तुझमें भी है और मुझमें भी है। लेकिन देवता तेंतीस करोड़ माने जाते हैं।' मैंने पिताजीसे पूछा, 'क्या आपको ये तेंतीस कोटि देवता मालूम हैं?' सवाल अटपटा था। पिताजीने कहा, 'देवता चाहे जितने हों, तो भी वे सिर्फ़ पाँच देवताओंके ही अवतार हैं। पंचायतनमें सब समा जाते हैं।' मैंने पूछा, 'पंचायतन यानी क्या?' पिताजी बोले, 'शि ना ग र दे।' मैं कुछ भी न समझ पाया। हँस कर पिताजीने कहा, 'देख, शि यानी शिव, ना यानी नारायण, ग यानी गणपति, र यानी रवि और दे यानी देवी। अिन पाँचोंकी पूजा करनेसे सब देवताओंकी पूजा हो जाती है। अपनी रुचिके अनुसार अिन पाँचोंमें से किसी अेकको बीचमें रखकर अुसके चारों ओर चारोंको बिठाया जाता है और अुनकी पूजा की जाती है। अिसीको पंचायतन पूजा कहते हैं।

मुझे वह चीज़ मिल गयी जो मैं चाहता था। अब मुझे अिन पाँचमें से ही चुनना था। शिव तो हमारा कुलदेवता। वही पहले आता है। लेकिन वह बहुत ही क्रोधी है। ज़रा-सी ग़लती हो जावे, तो सत्यानाश कर देता है। अुसके सामने सदा ही डरते रहना पड़ता है। वह अपने कामका नहीं। नारायण यानी कृष्ण, वह तो ठहरा कुकर्मी। अुसकी अुपासना कौन करे? गणपति वर्षमें अेक बार घरमें आता है और यह सही है कि तब हमें मोदक खानेको मिलते हैं। लेकिन वह तो विद्याका देवता है; अुसकी पूजा पाठशालामें ही करनी चाहिये। वह अुपास्य देवताकी जगह शोभा नहीं पा सकता। फिर वह है तो शिवजीका लड़का ही; यानी कोअी बड़ा देवता तो है नहीं। अतः अुसको छोड़ ही देना अच्छा। रवि है तो तेजस्वी, लेकिन अुसकी कहीं भी मूर्ति नहीं मिलती। अुसका मन्दिर भी कहीं देखनेमें नहीं आता। वह कोअी बड़ा देवता नहीं माना जा सकता। अब रही देवी। वह ठहरी औरत। अुसकी पूजा क्या मर्द कर सकता है?

पाँचमें से अेक भी पसन्द न आया। लेकिन पाँचोंकी निन्दा मनमें आयी, यह बात दिलको चुभने लगी। अब तो पाँचों देवताओंका कोप होगा, और न जाने कौनसी आफत आयेगी। मन ही मन में पाँचों देवताओंसे क्षमा माँगने लगा। महादेवसे सबसे ज़्यादा। फिर भी किसीको पसन्द ो किया ही नहीं।

अिसी अरसेमें मैं पिताजीको अुनकी पूजामें मदद करता था। हमारे देवघरमें अनेक देवता थे। सबको निकालकर नहलाना, पोंछना, फिर अुनकी जगह पर अुन्हें रख देना, चंदन-अक्षत-फूल वग़ैरा चढ़ाना, यह सब बड़े परिश्रमका काम था। मुझे अिसमें मज़ा आता और पिताजीको कुछ राहत मिलती। अुनका समय भी बच जाता। पूजाके मंत्र तो मैं नहीं जानता था, लेकिन तंत्र सब समझता था। अेक दिन मूर्तियोंको अुनके स्थानों पर बैठाते समय विचार आया कि, 'अिस बालकृष्णको देवीके पास नहीं बैठाना चाहिये। बालकृष्ण दीखता तो छोटा है; लेकिन जैसे राधाके घर यह अेकाअेक बड़ा हो गया, वैसे ही यदि यहाँ हो जाये तो देवी बेचारी नाहक हैरान होगी। चरित्रहीन देवता पर विश्वास न रखना ही अच्छा है।' अतः मैं बालकृष्णको अेक सिरे पर रखने लगा और देवीको बिलकुल दूसरे सिरे पर। अितनेसे भी संतोष न होता, तो सुरक्षितताको विशेष मजबूत करनेके लिअे मैं देवीके पास गणपतिको रख देता। मैं मान लेता कि अिस जबरदस्त हाथीके सामने तो बालकृष्णकी आनेकी हिम्मत ही न होगी।

अिस तरह मेरे विचार चल रहे थे और साथ ही मेरा पौराणिक अध्ययन भी ज़ोरोंसे चल रहा था। पढ़ते-पढ़ते अुसमें मुझे दत्तात्रेय मिला। मेरे ही नामवाला, अिसलिअे अुसके प्रति मेरे मनमें पक्षपात होना स्वाभाविक था। बचपनसे ही न जाने क्यों, मेरे मनमें स्त्री-द्वेष समा गया था। मेरे ठेठ बचपनके संस्मरणोंमें भी स्त्री-जातिके प्रति मेरे मनमें रहनेवाली नापसंदगी मैं

बराबर देख सकता हूँ। दत्तात्रेयमें मैंने यह फायदा देखा कि अुसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता समा जाते हैं। शैव और वैष्णवका झगड़ा दत्तात्रेयके सामने मिट जाता है। ब्रह्माके प्रति मेरे मनमें आदर-भावना तो थी नहीं, लेकिन अुसके प्रति तिरस्कार भी नहीं था। अुसे किसी तरह निभाया जा सकता था। लेकिन हरिहर अिकट्ठे हों, अिससे अच्छा और क्या हो सकता था? फिर दत्तात्रेय ब्रह्मचारी भी था। अतः अपने लिअे तो यही देवता अुपयोगी हो सकता था।

पंढरपुरसे हम दत्तात्रेयकी अेक मूर्ति लाये थे। गोंदू अेक छोटासा चीथड़ा लेकर दत्तात्रेयको धोती पहनाता था। मुझे वह बिलकुल पसन्द नहीं आता। मैं कहता कि 'पीतलकी मूर्तिमें पीतलकी धोती खोदी हुअी है ही। अब यह चीथड़ा चढ़ाकर भला तू कौनसी शोभा बढ़ानेवाला है?' गोंदू कहता, 'लेकिन क्या तूने पंढरपुरमें नहीं देखा कि विठोबाको रेशमी किनारकी धोती पहनाते हैं, अँगरखा पहनाते हैं, सिर पर साफा बाँधते हैं, और जाड़ेके दिनोंमें अेक रजाअी भी ओढ़ाते हैं?'

हमारा मतभेद क़ायम ही रहा। मुझे तो दत्तात्रेयके जितने भी स्तोत्र मिले मैंने भक्ति-पूर्वक सुने। दत्तात्रेयको अुदुम्बरके वृक्षके नीचे बैठना अच्छा लगता है, अतः मैं भी जहाँ गूलरका वृक्ष होता, वहाँ अुसकी छायामें जाकर बैठता। दत्तात्रेयको सेमकी सब्ज़ी अच्छी लगती है, अिसलिअे मैंने भी अपने लिअे सेमको स्वादिष्ट बनाया।

अब मुझे 'गुरुचरित्र' पढ़नेकी अिच्छा हुअी। महाराष्ट्रमें नृसिंह सरस्वती नामक अेक अवतारी पुरुष हो गये हैं। अुन्हें दत्तात्रेयका अवतार समझकर 'गुरुचरित्र' में अुनकी लीलाका वर्णन किया गया है। अुस सारी लीलामें मुख्य वस्तु यही है कि वे अनेक प्रकारके दुःखी लोगोंका दुःख दूर करते थे। अैसा आर्तत्राण देवता ही सबसे श्रेष्ठ है, यह मैंने अपने मनमें तय किया। स्वयं दत्तात्रेय तपस्वी, कष्ट-सहिष्णु तथा

शुद्ध ब्रह्मचारी थे। लेकिन दूसरोंका दुःख देखकर अुनका हृदय बहुत ही जल्दी पिघल जाता। यह पढ़कर मेरे मनमें आता कि यदि ये गुण मुझमें भी आ जायें तो कितना अच्छा हो। मेरी बुद्धिके अनुसार मैं दीन-दुःखियोंकी खोज करने लगा और जहाँ संभव होता, वहाँ लोगोंकी मदद करने लगा। अपने खुदके स्वार्थका कुछ भी खयाल न करके दूसरोंकी सेवा करना, यह मेरे जीवनका अुस वक़्तका आदर्श था।

हमारे घरमें 'रामविजय', 'हरिविजय', 'पाण्डवप्रताप' और 'शिवलीलामृत' अितनी पुस्तकें तो थीं ही। हमारा 'गुरुचरित्र' मामाके यहाँ गया था। अुसे वहाँसे वापस लाने या नया खरीदनेकी दरख्वास्त मैंने पिताजीके सामने पेश की। दैवयोगसे अुस वक़्त माँ भी वहीं थीं। माँने गंभीरतासे और साफ़-साफ़ मेरी दरख्वास्तका विरोध किया। अुसने कहा, "हमारे घरमें 'गुरुचरित्र' अनुकूल नहीं आता। अक्काने 'गुरुचरित्र' पढ़ना शुरू किया और अुसी वर्ष वह हमें छोड़कर चली गयी।"

माँने अैसे और कअी अुदाहरण दिये। बस, मेरी दरख्वास्त ख़ारिज हो गयी। मुझे अुस वक़्त तो बुरा लगा, लेकिन फिर मैंने निश्चय कर लिया कि माँको दुःख देनेकी अपेक्षा 'गुरुचरित्र' को पढ़नेकी बात छोड़ देना ही अच्छा है। और वह विचार स्थायी रहा। अभी भी मैंने 'गुरुचरित्र' दूसरी बार नहीं पढ़ा है। मैं बड़ा हुआ और संस्कृत पढ़ने लगा, तब मैंने दत्तात्रेयके संस्कृत स्तोत्र देखे; और अुनमें जारण, मारण, अुच्चाटन और 'हुं फट् स्वाहा' वग़ैरा चीज़ें देखीं, तो अुनकी अुपासनाके प्रति मेरा मोह भी छूट गया। मैंने देख लिया कि दत्तात्रेयकी अुपासनामें आकाशके ग्रह गुरु, विद्या देकर नया जन्म देनेवाले गुरु और ब्रह्मा, विष्णु अेवं महेशसे बने हुअे दत्तात्रेय, अिन सबकी खिचड़ी हो गयी है। और अुसमें वाम-मार्गका तंत्र घुस जानेसे सब गड़बड़झाला हो गया है। अुसमें से गुरुभक्ति ही सिर्फ़ सच्ची है। गुरुभक्तिसे धर्मज्ञान हो सकता

है, गुरुभक्तिसे ही चरित्रका निर्माण होता है, गुरुभक्तिसे ही मोक्ष मिलता है, यह मैंने समझ लिया। बादमें मैंने देख लिया कि दत्तात्रेय तो परमात्माकी त्रिगुणात्मक विभूतिका प्रतीक है। त्रिगुणातीत अ-त्रिका यह लड़का असूयारहित अनसूयावृत्तिके पेटसे जन्मा था। सेवाके लिअे अुसने अपने आपको अर्पित कर दिया था, अिसलिअे अुसे दत्त कहते हैं।

यह सब तो हुआ, लेकिन मेरी अुपासना तो निश्चित हुअी ही नहीं। मैं कभी दत्तात्रेयका नाम लेता, कभी 'जय हरिविट्ठल' गाता, तो कभी 'निवृत्ति ज्ञानदेव सोपान मुक्ताबाअी अेकनाथ नामदेव तुकाराम' की शरण जाता। लेकिन अकसर 'सांब सदाशिव, सांब सदाशिव, शिव हर शंकर सांब सदाशिव,' की ही धुन गाता था। अन्तमें यह सब छोड़कर मैंने प्रणव-जपको ग्रहण किया और ॐकारकी गंभीर ध्वनि मुंहसे निकालने लगा।

२४

पंढरी

पंढरीचे वाटे, बाभळीचे कांटे।*
सखा माझा भेटे . . . पांडुरंग॥

कअी वर्षोंकी आकांक्षाके बाद हम पंढरपुर जा पाये। बैलगाड़ी या पैदल मुसाफ़िरी करनेमें जो आनन्द, अनुभव और स्वतंत्रता मिलती है, वह रेलगाड़ीमें कतअी नहीं होती। पंढरपुरकी भूमि यानी सबसे पवित्र भूमि। वहांका अेक-अेक कंकर और पत्थर सन्तोंके चरणोंसे पुनीत बना है। वहांकी अेक-अेक वस्तु सुन्दर है, पवित्र है, हितकारक

* पंढरपुरके रास्ते पर जहां बबूलके कांटे हैं, वहां मेरा मित्र पांडुरंग मुझे मिलता है।

है, यह माननेके लिअे मन पहलेसे ही तैयार था। मन्दिरके रास्ते पर बैठे हुअे अंधे, लूले, कोढ़ी, और अपंग लोग भी मेरी नजरमें अैसे लगते थे, मानो किसी दूसरी ही दुनियाके रहनेवाले हों।

चन्द्रभागा नदी पर हम नहाने गये, वहाँ सबसे पहला मन्दिर देखा पुंडलीकका। वहाँ अेक बुढ़िया अूँचे स्वरसे गा रही थी:

‘कां रे पुंड्या मातलासी,
अुभें केलें विठ्ठलासी।’

पुंडलीक माता-पिताकी सेवामें अितना तल्लीन था कि अुसकी भक्तिसे खुश होकर श्रीकृष्ण खुद जब अुसे वरदान देनेके लिअे आये, तब भी अुसे माता-पिताकी सेवा छोड़कर परमात्माके स्वागतके लिअे अुठना ठीक न लगा। अुसने पास पड़ी हुअी अेक ‘वीट’ (अींट) भगवानकी ओर फेंक दी और कहा — ‘लो, आसन। ज़रा खड़े रहो। मेरी सेवा पूरी हो जाने दो।’

सेवासे फारिग होनेके बाद पुंडलीकने पूछा, ‘कैसे आये?’

‘तेरी भक्तिसे सन्तुष्ट हुआ हूँ। वरदान देनेको आया हूँ।’

‘माता-पिताकी सेवामें मुझे पूरा आनन्द है। वरदान यदि देना ही चाहते हो तो अितना माँग लेता हूँ कि अभी यहाँ खड़े हो वैसे ही अट्ठाअीस युगों तक भक्तोंको दर्शन देनेके लिअे खड़े रहो।’

अुस दिनसे विष्णुका नाम ‘विठ्ठल’ (अींट पर खड़ा रहनेवाला) पड़ा। अुस समय शायद रुक्मिणी भगवानके साथ नहीं थी, अिसलिअे पंढरपुरमें विठ्ठलके साथ रुक्मिणीकी मूर्ति नहीं है। रुक्मिणीका मन्दिर अलग है। पंढरपुरमें रुक्मिणीको ‘रखुमाअी’ कहते हैं, और राधाको ‘राअी’ कहते हैं। राअी-रखुमाअी विठ्ठलभक्तोंकी माताअें हैं। चन्द्रभागाके किनारे जहाँ भी देखिये वहाँ भजन चलता रहता है। यहाँ वर्णाश्रम या कर्मकांडका महत्त्व नहीं है। यह तो भक्तिका पीहर, सर्व सन्तोंका धाम है।

हम चंद्रभागामें नहाकर विट्ठलके दर्शनको गये। पण्डे महाराज साथमें थे, अिसलिअे हर स्थानका माहात्म्य तुरन्त ही मालूम हो जाता। अैसा याद है कि रास्तेमें अेक ताकपीठ (छाछ-सत्तू) विठोबा आते हैं। अुन विठोबाके सामने अेक बड़ा लकड़ीका बरतन था, जिसमें लोग छाछ और सत्तू डालते थे।

विट्ठलके मंदिरमें कितनी भीड़! कोअी गाता, कोअी नाचता, कोअी ज़ोर-ज़ोरसे विट्ठलको पुकारता। मंदिरके अेक अेक भक्तकी निष्ठाको देखकर मुझे आनन्द होता था। लेकिन कुल मिलाकर देखा जाय तो अुस सारे दृश्यकी मुझ पर बहुत अच्छी छाप नहीं पड़ी। सब मिलकर अितना शोर मचा रहे थे कि अुससे तो सब्ज़ीमंडी अच्छी। मैं छोटा था फिर भी भक्तिके अुभारका दिखावा करनेवाले लोगोंका दंभ समझ सकता था।

सरकारी अधिकारियोंकी रसाअी हर जगह होती है। यहाँ भी हमारी प्रतिष्ठाके प्रभावके कारण हम खानगी रास्तेसे मंदिरमें गये और आसानीसे दर्शन करके आ गये। पहला दर्शन तो अुतावलीमें ही करना होता है। मंदिरके हर खंभेके साथ कोअी न कोअी कथा जुड़ी हुअी है। 'यह गरुड़ स्तंभ; यहाँ तुकाराम महाराज खड़े रहते थे; यहाँ गोरा कुम्हार बैठता था, अिस चबूतरे पर नामदेव अपना सिर फोड़ लेनेवाले थे।' आदि जानकारी हमें प्राप्त हुअी। मंदिरके बाहर अेक सीढ़ी पीतलकी है। वह नामदेवकी सीढ़ीके नामसे प्रख्यात है, क्योंकि अुसके नीचे नामदेव समाधिस्थ हुअे थे अैसा माना जाता है।

रखुमाअीके दर्शन करके हम गोपालपुर देखने गये। रास्तेमें जहाँ श्रीकृष्णने दही मथा था, वह स्थान आया। वहाँका पण्डा पुकारकर कहने लगा, 'जल्दी आओ, जल्दी आओ। कुछ ही धानी अब बाकी है।' अेक पीतलकी थालीमें धानीके दस-पन्द्रह दाने पड़े थे। पण्डेने कहा, 'श्रीकृष्ण और अुनके ग्वालबाल यहाँ नाश्ता करके गये,

तबकी यह धानी है। तुम लोग बिलकुल वक़्त पर आये। अितनी ही बची है।' हमने दो पैसे देकर धानीके दो-चार दाने लिये और आगे बढ़े। गोपालपुरमें अेक शिला है। अुस शिला पर गायको खड़ा करके श्रीकृष्णने अुसका दूध दुहकर पीया था। अुस गायके चार खुर, श्रीकृष्णके पैर और कटोरा अिन सबके चिह्न शिला पर गहरे खुदे हुअे हैं। यहाँकी नदीमें से चाहे जो पत्थर निकालिये, अुस पर बालगोपालके पाँव ज़रूर स्पष्ट दिखाअी देंगे!

नदीके बीचोंबीच अेक छोटा-सा मंदिर था। हम किश्तीमें बैठकर अुसे देखने गये। आधा रास्ता तै करनेके बाद मैंने किश्तीवाले मल्लाहसे कहा, 'यहाँ डुबकी लगाकर अेक पत्थर तो निकाल दो!' अुसके अनुसार अुसने गोता लगाकर पत्थर निकाला। तो कैसा आश्चर्य! अुस पत्थर पर भी छोटे बच्चेके कदमोंके निशान साफ़ दिखाअी दिये।

यहाँसे हम जनाबाअीका स्थान देखने गये। जनाबाअी यानी नामदेवके घरकी दासी। बेचारीका सगा-संबंधी कोअी न था; अिससे विठोबा खुद अुसके साथ अनाज पीसते थे, हर आठवें दिन अुसे नहलाते और कंघी करते थे। अेक दिन तो विठोबा वहीं सो गये थे। जनाबाअीके वक़्तकी अेक रज़ाअी आज भी वहां मौजूद है। अुस पर तेल चढ़ा-चढ़ा कर लोगोंने अुसे चमड़े जैसी कर डाली है।

लौटते समय हम अुस धानीवाले पण्डेके पास फिर गये। अिस बार अुसकी थालीमें दो मुट्ठी धानी थी। मैंने अुससे पूछा, 'अब अितनी कहाँसे आ गयी?' लेकिन वह मुझे जवाब क्यों देने लगा?

चन्द्रभागाके किनारे अेक छोटा कुंड है। वहाँ तुकारामने अपने अभंगकी कापियाँ पत्थर बाँधकर पानीमें डुबायी थीं और स्वयं अुपवास करते बैठे थे। विठोबाने अुनका समाधान करनेके लिअे पत्थरके साथ अुन कापियोंको पानीके अूपर तैराया था। अिसकी

सच्चाअीको आप आज भी आज़मा सकते हैं। दो पैसे दीजिये तो अेक मनुष्य पत्थरकी बनायी हुअी अेक छोटीसी नौका 'पुंडलीक वर दे हरि विट्ठल' कहकर पानीमें छोड़ देता है और वह नौका पानीमें तैरती है। अुस नौकाको तैरते हुअे मैंने खुद अपनी आँखोंसे देखा है। मैंने अुस मनुष्यसे कहा, 'अिसी नौकाको नदीके पानीमें छोड़ देखें। वहाँ डूब जाये तो मान लेंगे कि अिस जगहमें कोअी विशेषता है।' अुसने मेरी बात नहीं मानी, क्योंकि मैं छोटा था।

शामको जल्दीसे भोजन करके हम विठोबाकी पूजा देखने गये। विठोबाकी मूर्तिका रसभरा वर्णन सन्तोंके वचनोंमें अितना सुना था कि साक्षात् मूर्ति कुरूप या बेढंगी जान पड़ती है, यह स्वीकार करनेके लिअे मन तैयार न हुआ। जाड़ेके दिन थे, अतः विठोबा गरम पानीसे नहाये। घड़े भर-भरकर दूधसे नहलाया गया। फिर दहीसे। मुँहमें मक्खनका अेक गोला भी चिपका दिया था। अेक लोटा शहद भी मूर्ति पर डाला गया। फिर घीकी बारी आयी। आखिरमें अेक प्याला भर कस्तूरीका पानी सिर पर डाला गया। कस्तूरी गरम चीज़ है। कस्तूरीसे नहानेके बाद पंचामृतकी ठंढक तकलीफ नहीं देती। कस्तूरीकी गरमी अुतारनेके लिअे चंदनके पानीका लोटा सिर पर डाला गया। आखिरमें शुद्धोदक आया। शरीर पोंछकर विठोबा रेशमी किनारकी धोती पहननेको तैयार हुअे। विठोबाकी धोतीकी नीवी तो बहुत ही फेशनेबल होनी चाहिये। हम जैसे भक्तोंकी आँखें चकित हो जाती थीं। फिर आया ज़रीका जामा। अुस पर महाराष्ट्रीय पद्धतिका रेशमी अँगरखा। फिर पगड़ी बाँधनेकी क्रिया शुरू हुअी। विठोबा तैयार पगड़ी नहीं पहनते, सिर पर ही बँधाते हैं। अुसीमें आधा घण्टा गया। अब विठोबा बड़े बाँके दिखाअी देने लगे। जाड़ेके दिनोंमें ओवरकोटके बिना कैसे चलता? लेकिन ओवरकोट तो आधुनिक वस्तु! अिसलिअे रूअीभरी रेशमकी अेक गुदड़ी सबसे अूपर ओढ़ायी गयी। अब तो विठोबाके शरीरका घेरा अुनकी अूंचाअीसे भी बढ़ गया।

विठोबाके माथे पर कस्तूरीका टीका लगाया गया। फिर भोग चढ़ाया गया। अुस वक़्त दरवाज़े बन्द थे। विठोबाको भोजन करते समय यदि भूखे लोग देख लें तो अुन्हें नजर लग सकती है और अजीर्ण भी हो सकता है! मेहरबानी पंडोंकी कि विठोबाको ताम्बूल हमारे सामने ही दिया गया।

अब विठोबाको शयनगृहमें जानेकी जल्दी हुअी। शयनगृह दाहिनी ओर सुन्दर रीतिसे सजाया गया था। लेकिन वहाँ विठोबा कैसे जाते? अिसलिअे विठोबाके पैरसे लेकर शयनगृहके मंच तक अेक लंबा कपड़ा ताना गया। अुस पर लाल रंगसे विठोबाके पदचिह्न छपे हुअे थे। हमारे पंडेने कहा, 'अब तो कलियुग बढ़ गया है; वरना पहले तो शयनगृहमें जब पानका बीड़ा रखते, तो सबेरे तक वह अलोप हो जाता और पिकदानीमें पानकी लाल सीठी पड़ी हुअी दिखाअी देती थी। भक्त लोग अुसे लेकर खाते थे।'

दूसरे दिन सवेरे चार बजे हम काकड़ आरती देखनेको गये। अुस वक़्त भी लोगोंकी भारी भीड़ थी। कार्तिकी पूर्णिमासे लेकर माघ पूर्णिमा तक पौ फटनेसे पहले नदीमें नहानेका पुण्य विशेष है। और काकड़ आरतीके समय दर्शन कर लेना तो पुण्यकी चरम सीमा हो गयी। अिन दोनोंमें से अेक भी लाभको हमने अपने हाथसे जाने नहीं दिया। हमें रोज़ाना अभिषेकके पंचामृतमें से अेक-अेक लोटा तीर्थ मिलता। हमारा सवेरेका नाश्ता अुसकी मददसे ही होता।

पंढरपुरमें अेक ही वस्तु विशेष आकर्षक लगी थी। वहाँ सामान्यतः अूँच-नीच भाव नहीं रहता है। सभी सन्त और सभी समान। यह ज्ञानदेव, नामदेव, जनाबाअी, गोरा कुम्हार वग़ैरा सन्तोंकी शिक्षाका फल है।

पंढरपुरके बारेमें मैंने यहाँ जो लिखा है, वह तो बचपनमें देखी हुअी बातोंका संस्मरण मात्र है। यह लगभग पचास साल पहलेकी

बात है। अुसके बाद फिर पंढरपुर जानेका मौक़ा नहीं आया। कुछ रोज़ पहले में गोकर्ण गया था। तब मैंने देखा कि बचपनके संस्कारों और आजके संस्कारोंमें बहुत कुछ फ़र्क़ हो गया है, लेकिन देखे हुअे स्थान तो जैसेके वैसे ही थे।

विठोबाकी मूर्तिका जो वर्णन मैंने यहाँ किया है, अुससे कोअी सज्जन यह न समझ बैठें कि अुस पूजाकी दिल्लगी अुड़ानेका हेतु मेरे मनमें है। अुस समय मेरे हृदयमें अत्यंत अुत्कट भक्ति थी। घरके देवताओंकी पूजा करनेमें मैं बिलकुल तल्लीन हो जाता था। मंदिरकी मूर्तिकी पूजा करनेका मौक़ा मिलता तो भी मैं अपनेको बड़भागी मानता। लेकिन अुस समय भी विठोबाकी पूजाका वह सारा दृश्य मुझे मखौल-सा लगा था। और आज जब अुस वक़्त देखी हुअी बातोंका चित्र मेरी आँखोंके सामने फिर जाता है, तो जी कसमसाता है। पूजामें ख़र्चा और तड़क-भड़क बहुत थी, लेकिन पुजारियोंमें सौंदर्यका कुछ ख़याल भी हो अैसी शंका तक वे नहीं आने देते थे। अीसाअियोंके प्रार्थना-भवनोंमें गंभीरताका जो दिखावा होता है, वह भी हमारे मंदिरोंमें नहीं होता। लेकिन यहाँ मुझे न तो अपने विचारोंका प्रचार करना है और न समाजको कुछ अुपदेश ही देना है। यहाँ तो सिर्फ़ बचपनके संस्मरण लिखने हैं।

२५

बड़े भाअीकी शक्ति

रामदुर्गसे हम लौट रहे थे। तोरगलका सात दीवारोंवाला क़िला पार करके हम आगे बढ़े। रास्तेमें अेक नदी आती थी। कौनसी नदी थी, वह आज याद नहीं। अुस नदीके किनारे दोपहरको हमने मुकाम किया। मैं बड़े मज़ेदार तीन पत्थर लाया और अुन्हें धोकर चूल्हा बनाया। आसपाससे सूखी हुअी लकड़ियाँ अिकट्ठी करके चूल्हा सुलगाया। हमारे बड़े भाअी बाबा नहाकर नदीसे पानी लाये। माँ रसोअी बनाने लगी। खाना तैयार होते होते अेक बज गया। पिताजी बहुत ही थके हुअे थे। लेकिन पूजा किये बिना भोजन कैसे किया जा सकता था? गोंदू कहींसे तुलसी और दो-चार फूल लाया। पिताजीको पूजामें कुछ देर लगी। हम छोटे-छोटे लड़के भूखसे तिलमिलाते हुअे भूख और नींदके बीच झूल रहे थे। पिताजीकी पूजा जल्दी पूरी नहीं हो रही है और भोजन तैयार होते हुअे भी बच्चोंको खानेको नहीं मिल रहा है, यह देखकर मेरी माँ कुछ नाराज़-सी थी। पिताजीने सोचा था कि मुकाम पर पहुँचते ही साथके संबलमेंसे बच्चोंको कुछ खानेको दे दिया जाये। लेकिन 'अिस वक़्त यदि अुन्होंने संबलमें से खा लिया, तो जीमेंगे क्या? और सारे दिन पानी-पानी करेंगे।' यों कहकर माँने हमें कुछ खानेके लिअे देनेसे साफ़ अिनकार कर दिया। अुसी समयसे मामला कुछ बिगड़ गया था। पिताजीको नाराज़ होनेकी आदत कतअी न थी। लेकिन जब नाराज़ होते तो सुध भूल जाते थे। फिर भी वे हम बालकों पर ही ग़ुस्सा होते थे। कचहरीमें क्लर्क पर शायद ही कभी बिगड़ते। चपरासियोंको भी कठोर शब्द कहनेकी अुन्हें आदत न थी। पर न जाने क्यों आज पिताजी ख़ूब नाराज़ थे। जब

माँने कहा कि 'आपकी पूजा जल्दी पूरी होगी भी या नहीं?' तो पिताजीने तुरन्त ही गरम होकर कुछ कठोर शब्द कहे; और वह भी हम सबके सामने! माँको बहुत ही अपमानजनक लगा। मुझे अच्छी तरह याद है। माँका मुँह लालसुर्ख़ तो क्या, बिलकुल नीला हो गया था। हमारे सामने रोया भी कैसे जा सकता था? अुसने बहुत ही प्रयत्न किया, फिर भी दो मोती तो टपक ही पड़े। मैं कुछ समझता न था, अिसलिअे वहींका वहीं भौंचक्का-सा खड़ा रहा। बाबा वहाँसे कब खिसक गये, यह हममें से किसीको भी मालूम न पड़ा। वे शायद ही कभी पिताजीसे बोलते थे। बचपनसे ही, डरसे कहिये या दूर रहनेकी आदतसे कहिये, वे पिताजीके सामने खड़े ही नहीं रहते थे। यदि कोअी काम करवाना होता, तो मेरी मारफ़त पिताजीसे कहलाते। मैं सबसे छोटा था। मुझे डर-शरम काहेकी? पिताजी यदि जल्दी न मानते, तो मैं अुनके साथ दलील भी कर लेता था।

भोजनका समय हुआ। थालियाँ – नहीं पत्तलें — परोसी गयीं। गोंदू तो शुरू करनेके लिअे आतुर हो रहा था। लेकिन बाबा कहाँ हैं? वे तो वहाँसे खिसक ही गये थे। मैंने 'बाबा', 'बाबा' कहकर कअी आवाज़ें लगायीं। लेकिन बाबा थे ही कहाँ? पिताजीने कहा, 'जाओ, आसपास कहीं बैठा होगा, जाकर बुला लाओ।' मैं आसपास ख़ूब घूमा। आख़िर बाबाको अेक वृक्षके नीचे बैठे हुअे पाया। बैठे हुअे नहीं, सिर नीचा करके वे चक्कर लगा रहे थे। मैंने देख लिया कि बाबा बहुत ग़ुस्सेमें हैं। मैंने कहा, 'चलो जीमने; सब राह देख रहे हैं।' अुन्होंने कहा, 'न तो मुझे आना है और न जीमना ही है।' मैंने दलील की, 'लेकिन तुम्हारी पत्तल जो तैयार है। गोंदूने शुरू भी कर दिया होगा। सब तुम्हारी ही राह देख रहे हैं।' कड़े शब्दोंमें बाबाने कहा, 'ग़ोंदूको कहना कि पेट भर कर खाना! तू जा, मैं नहीं आना चाहता।' मैंने लौटकर सारी बातें कह सुनायीं। पिताजीने कहा, 'क्या ज़िद है अिस लड़केकी! अुससे कहना कि

मैं राह देख रहा हूँ। जल्दी आ जाये।' मैं फिर दौड़ता हुआ गया। अिस बार बाबा जितने शान्त दिखाअी देते थे, अुतने ही कड़े हो गये थे। बहुत ही सोच-विचार कर अुन्होंने अपना जवाब तैयार कर रखा था। मुझसे कहने लगे और कहते कहते अेक-अेक अक्षर पर बराबर ज़ोर देते गये, 'जाकर कह दे कि यदि अैसा ही सुनना हो तो न मुझे जीमना है और न घर ही आना है।'

घरमें जब-जब मतभेद होता, हम बालक हमेशा पिताजीका ही पक्ष लेते; क्योंकि वह पक्ष समर्थ था। माँका तो हमेशा सहन करनेका ही व्रत था। अतः पिताजीका पक्ष लेना ही आसान था। फिर अिस बातका पूरा विश्वास भी था कि माँ कभी नाराज़ नहीं होगी और सब कुछ जल्दी ही भूल जायेगी। लेकिन बाबाको आज अेकदम यों पक्षांतर करते देख मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। बाबाका प्रभाव ही अैसा था कि अुनके सामने ज्यादा बोला ही नहीं जा सकता था। मैं सीधा वापस आया और रिपोर्टरकी तरह तटस्थताके साथ बाबाका सन्देश जैसेका तैसा कह दिया। अुस वक़्त पिताजी पर क्या गुजरी होगी, अिसकी कल्पना मैं आज कर सकता हूँ। वे खुद कभी नाराज नहीं होते थे सो आज नाराज़ हुअे। कड़े शब्द मुँहसे निकल गये। अुससे माँको बहुत दुःख हुआ। मैं भूखा यहाँसे वहाँ और वहाँसे यहाँ दौड़ रहा था। गोंदू भोजन छोड़कर पिताजीके मुँहकी तरफ़ टकटकी लगाये देख रहा था। और बाबा, जो कभी सामने भी खड़ा नहीं होता था, अिस तरहसे सन्देश भेज रहा था। कुछ देर तक तो वे बोले ही नहीं। आख़िर जरा मुश्किलसे बोले, 'अुससे कहना कि जीमने आ जाओ।' मैं क्या जानता था कि अिस वाक्यमें सब कुछ आ जाता था? मैंने कहा, 'अिस तरह तो वे नहीं आयेंगे।' बस, पिताजी मुझ पर भी बिगड़े। लेकिन वे मुँहसे कुछ बोलते, अुससे पहले ही मैं वहाँसे खिसक गया। मैंने सोचा, मुझे अैसे सन्देश आज न जाने कितने लाने-ले जाने होंगे। लेकिन

में चला गया और बाबाको पिताजीके शब्द ज्यों के त्यों कह दिये। और कैसा आश्चर्य! जरा भी आनाकानी किये बग़ैर और कुछ सन्तोषसे बाबा भोजन करने आ गये।

अिस प्रसंगका रहस्य अुस वक़्त तो मेरी समझमें बिलकुल नहीं आया था और अिसीलिअे वह मुझे याद रहा। सचमुच ही अुस दिनसे माँकी मृत्यु तक कभी भी पिताजी माँ पर ग़ुस्सा नहीं हुअे। बाबामें अितनी शक्ति होगी, अिसका मुझे ख़याल तक न था। जैसे-जैसे अिस प्रसंगको याद करता हूँ, वैसे-वैसे प्रेमका मार्म ज़्यादा-ज़्यादा समझमें आता जाता है और आख़िर अिसी निश्चय पर पहुँचता हूँ कि प्रेमका सामर्थ्य अमोघ है। प्रेम सार्वभौम और सर्वशक्तिमान है।

२६

घटप्रभाके किनारे

जहाँ तक मुझे याद है, हम रामदुर्गसे वापस बेलगाँव जा रहे थे। गाड़ीकी मुसाफ़िरी पूरी हुअी। अब शेष यात्रा रेलगाड़ीकी थी। हम रातके आठ बजे गोकाक पहुँचे। रेलका 'टाअिम' दोपहरके बारह बजेका था, अिसलिअे हम अेक धर्मशालामें ठहरे और थके-थकाये सभी गहरी नींदमें सो गये।

रातका पिछला पहर था। लगभग तीन बजे होंगे। अितनेमें अेक कुत्ता धर्मशालामें घुसा और हमारा अेक तपेला, जो रूमालमें अिसलिअे बँधा हुआ था कि अुसमें कुछ खानेकी चीज़ थी, अुसने अुठाया और हमारे बड़े भाअी अुठते अुसके पहले तो धर्मशालासे छू हो गया। कुत्तेके पैरोंकी आवाज़ सुनकर तीन-चार व्यक्ति अुठे और कुत्तेके पीछे दौड़; लेकिन तपेला गया सो गया ही।

अिस गड़बड़ीके कारण मैं सवेरे कुछ देरीसे अुठा। अुठकर देखा तो आसपास बहुतसे लोग आते-जाते थे। शौच जानेके लिअे कहीं सुविधाजनक जगह नहीं थी। वहाँसे सीधा घटप्रभा नदीके किनारे तक गया। सोचा था कि नदीके किनारे पर शौच जानेकी अेकान्त जगह जरूर मिलेगी। लेकिन नदी पर जाकर देखता हूँ तो वहाँ सारे गाँवके लोग हाजिर। कोअी कपड़े धो रहा है, कोअी पानी भर रहा है, कोअी बरतन माँज रहा है। मैंने आसपास बहुत दूर तक जाकर देखा, लेकिन कहीं भी अेकान्त नहीं मिला। नदीके किनारे बड़ी दूर तक अूपरकी ओर गया। वहाँ भी निर्जन स्थान नहीं मिला। जहाँ देखता वहाँ बूढ़ा या बुढ़िया, और नहीं तो कोअी ढोर चरानेवाले लड़के तो होते ही। नदीके किनारेके लोगोंको ज्यादातर शर्म तो होती ही नहीं। वे चाहे जहाँ बैठ जाते हैं। अैसे भी लोगोंको मैंने देखा। लेकिन अुन्हें शर्म भले न हो, मुझे तो थी। अतः दूरसे अैसे लोगोंको देखकर मुझे रास्ता बदलना पड़ता।

अब धीरे-धीरे मेरा धैर्य टूटने लगा। समयसे यदि वापस नहीं जाअूंगा तो माँ नाराज होगी। और बिना टट्टी किये वापस जाना भी संभव नहीं था। मेरे मनमें आया कि अब किया क्या जाय? कहाँ जाअूं? बेशर्म होकर वहाँ लोगोंके सामने बैठना तो असंभव ही था, क्योंकि शरीरको वैसी आदत न थी।

आखिर मुझे अेक अुपाय सूझा। यह निर्णय करना कठिन है कि अुसे काव्यमय कहा जाय या नहीं! पास ही अेक वृक्ष था, आसानीसे चढ़ने जसा। अुसके पत्ते अितने घने थे कि अुस पर चढ़ जानेके बाद कोअी भी देख न सकता था। भाग्यसे वृक्षके आसपास कोअी न था। अतः मैंने अपना भरा हुआ लोटा लेकर वृक्षारोहण किया। खूब अूपर चढ़कर अनुकूल डाली खोज निकाली। मनको खुशी हुअी कि जैसा कभी न मिला था अैसा सुन्दर हवाअी अेकान्त आज मिला है। फिर भी डर तो था ही कि कहीं वृक्षके नीचे कोअी गाय न आ जाय और अुसके पीछे कोअी चरवाहा आकर न खड़ा हो जाय। लेकिन

अीश्वरको अितनी कड़ी परीक्षा नहीं लेनी थी। मैं आरामसे वापस आया। मेरे भाअी अिसी अुद्देश्यसे नदी पर गये थे, लेकिन निराश होकर अुन्हें वापस आना पड़ा था। अुन्होंने मुझे पूछा, 'शौच कहाँ गया था?' मैंने कहा, 'नदी पर।' भाअीने पूछा, 'वहाँ अेकान्त जगह थी?' मैंने कहा, 'हाँ।'

भाअीसाहब यह स्वीकार करना नहीं चाहते थे कि वे जैसे-के-वैसे लौट आये हैं, और मुझे यह कहनेमें शर्म लग रही थी कि मैंने बन्दरका काम किया है। अिसलिअे 'तेरी भी चुप और मेरी भी चुप' करके हमने अुस प्रश्नोत्तरीको आगे नहीं बढ़ने दिया। कअी महीने तक मैंने अपनी यह बात छिपा रखी। कालके प्रतापसे शर्मका परदा फट जानेके बाद ही मेरी अुस दिनकी बात कहनेकी हिम्मत हुअी।

मनुष्य बहुत बड़ा पाप या गुनाह करने पर भी जितना नहीं शरमाता, अुतना अैसी चीज़ोंके बारेमें बोलते हुअे शरमाता है। लज्जासे व्रीड़ाका कवच विशेष दुर्भेद्य होता है।

२७

निश्चयका बल

[महाशिवरात्रि]

'चाहे जो हो, मैं महाशिवरात्रिका अुपवास तो रखूँगा ही।'

मेरा जनेअू भी नहीं हुआ था। अितनी छोटी अुम्रमें मुझे महाशिवरात्रि जैसा कठिन अुपवास कौन करने देता? लेकिन मैंने हठ किया कि 'चाहे जो हो मैं महाशिवरात्रिका व्रत रखूँगा ही।'

महाराष्ट्रके ब्राह्मणोंमें स्मार्त और भागवत अैसे दो मुख्य भेद होते हैं। स्मार्त सब महादेवके ही अुपासक होते हैं सो बात नहीं, और न यही नियम है कि भागवत सब विष्णुके ही अुपासक हों। फिर भी कुछ अैसा भेद है अवश्य। हम महादेवके अुपासक थे। मंगलेश और महालक्ष्मी हमारे कुलदेवता। हमारे घरकी सभी धार्मिक विधियाँ स्मार्त संप्रदायके अनुसार चलतीं। सिर्फ़ अेकादशीका अुसमें अपवाद होता। जब दो अेकादशियाँ आतीं तो हम दूसरी यानी भागवत अेकादशी करते थे। फिर भी घरमें विष्णुकी अुपासना नहीं होती थी।

मेरे भाअी केशूके सहवाससे मेरा महादेवकी ओर विशेष झुकाव हो गया था। महादेव ही सबसे बड़ा देवता है। अुसके सामने सभी देवता तुच्छ हैं। समुद्र-मन्थनके समय हरअेक देवता लालची भिखारीकी तरह अेक-अेक रत्न अुठा ले गया। विष्णुने तो बराबर 'जिसकी लाठी अुसकी भैंस' वाला न्याय चरितार्थ किया और लक्ष्मी आदि कअी रत्न हड़प कर लिये। सिर्फ़ महादेव ही दुनियाके दु:खको दूर करनेके लिअे हलाहलको पीकर नीलकंठ बने। देवता हो तो अैसा ही हो, यह बात दिलमें पक्की जम गयी थी। मुझे भी अिसी न्यायसे जिन्दगीमें चलना चाहिये, यह भी मनमें आता था। अिसी अरसेमें नानाने कुछ हठ करके पिताजीसे 'शिवलीलामृत'

की पुस्तक ले ली थी। फिर तो पूछना ही क्या? हम हर रोज़ सवेरे अुठकर नहा-धोकर अुसके अेक-दो या ज्यादा अध्याय पढ़ते। श्रीधर कविकी भाषा। जब वह वर्णन करता है तब नज़रके सामने प्रत्यक्ष दृश्य खड़ा हो जाता है। और शब्द-समृद्धि तो अपार है। यह ठीक है कि बीच-बीचमें बहुत ही खुला शृंगार आ जाता है, लेकिन हमें अुसका स्पर्श तक नहीं होता था। अितना तो जानते थे कि यह भाग गन्दा है, लेकिन हमारी अैसी अुम्र नहीं थी कि मनमें विकार पैदा होते।

अिस शिवलीलामृतमें महादेवके अनेक अवतारों और भक्तोंके चरित्रोंका वर्णन किया गया है। महादेव जितने शीघ्रकोपी हैं, अुतने ही आशुतोष भी हैं। भोले शंभु जब खुश होते हैं, तो चाहे जो दे देते हैं। अैसे देवताकी जो भक्ति नहीं करता वह अभागा है, यह बात मनमें बिलकुल तय हो चुकी थी। हम सवेरे अुठकर घंटों नामस्मरण करते, सारे शिवलीलामृतका पाठ करते; दूर दूर जाकर चाहे जहाँसे बिल्वपत्र ले आते और महादेवकी पूजा करते।

अेक दिन हमने पढ़ा कि छोटे बालकोंकी भक्तिसे महादेव विशेष प्रसन्न होते हैं। मैंने ज़िद पकड़ी कि, 'हम महाशिवरात्रिका व्रत ज़रूर रखेंगे।' माँने कहा, 'तू बड़ा हो जा, तुझे अेक लड़का हो जाय, फिर भले ही महाशिवरात्रि करना। तू शिवरात्रि करे, तो हमें खुशी है। लेकिन यह व्रत तुझ जैसे बालकोंके लिअे नहीं है।' पर मैं क्यों मानने लगा? पिताजी तक बात पहुँची कि दत्तू न तो भोजन करता है, न और कुछ खाता है।

पिताजीने मुझे अनेक तरहसे समझानेका प्रयत्न किया। अुन्होंने कहा, 'महाशिवरात्रि महादेवका व्रत है। अिसे न तोड़ा जा सकता है, न छोड़ा ही जा सकता है। अेक बार लिया कि हमेशाके लिअे पीछे लग गया। अिसके पालनमें गफ़लत होने पर महादेव सत्यानाश ही कर डालते हैं। तुझे फलाहार ही करना हो, तो अेकादशी कर। वह आसान व्रत है। जितने दिन भी करो अुसका पुण्य मिलता है और

छोड़ दो तो भी कोअी नुकसान नहीं। विष्णु किसीका संहार नहीं करते।' मैंने कहा, 'मुझे शिवजीकी ही भक्ति करनी है। मैं फलाहारके लालचसे व्रत करनेको नहीं बैठा हूँ। मुझे महादेवको प्रसन्न करना है। मैं तो महाशिवरात्रि ही करूँगा।'

'लेकिन तू अपने बड़े भाअियोंको तो देख। अेक तो संध्या भी नहीं करता और प्याज़के पकौड़ोंके बिना अुसे भोजन भी अच्छा नहीं लगता। दूसरेने ीसाअी लोगोंकी तरह सिर पर लम्बे बाल रखे हैं और अब तो हर आठवें दिन हजामत करवानेके बदले सिर्फ़ दाढ़ी ही बनाता है। घरमें भ्रष्टाचार पैठ गया है। तू भी जब कॉलेजमें जायेगा तब अैसा ही होगा। मैंने अिन लोगोंको पूना भेज दिया, यह मेरी भूल ही हुअी। आज व्रत लेगा और कल तोड़ डालेगा तो किस कामका? समझदार बनकर भोजन करने बैठ जा, हमें नाहक दुःख न दे।'

मैंने तो अेक ही बात पकड़ रखी। मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, 'मैं अुन लोगों जैसा नहीं बनूँगा। आप विश्वास रखें कि मैं शिवरात्रिका व्रत कभी भी नहीं तोड़ूँगा।' अपनी निष्ठाको सिद्ध करनेके लिअे मैंने अेक अुदाहरण दिया, "अभी कुछ दिन पहले मैं रेशमी लँगोटी पहनकर जीमने बैठा था। अितनेमें अण्णा हजामत बनाकर आया और बिना नहाये अुसने मुझे छू दिया। मैं तुरन्त थाली परसे अुठ गया और अुस दिन सवेरेसे साँझ तक मैंने कुछ भी नहीं खाया। मैंने अुससे साफ़-साफ़ कह दिया है कि 'मैं कॉलेजमें पढ़ूँगा तब भी तुझ जैसा तो हरगिज़ न बनूँगा।'"

मुझे लगा कि यह क्या बात है। अेक तरफ भाअी कहते हैं कि दत्तू श्रद्धाजड़ है, बिलकुल कट्टरपंथी है और दूसरी ओर पिताजी शंका करते हैं कि दत्तू नास्तिक होनेवाला है, क्योंकि बड़े भाअी अैसे ही हैं। अब मुझे करना क्या चाहिये? मैंने ज़िद पकड़ ली। मैंने पिताजीको अकड़कर जवाब दिया, 'आज तो मैं भोजन करूँगा ही नहीं, फिर चाहे जो भी हो।'

पिताजी भी बहुत नाराज़ हुअे। वे भी महादेवके अवतार ही थे। चिढ़ते तो अच्छा प्रसाद देते। अुन्होंने बायें हाथसे मेरी भुजा पकड़ी और दाहिने हाथसे कसकर जाँघ पर चार तमाचे लगाये। हर तमाचेकी चार अँगुलीके हिसाबसे सोलह अँगुलियाँ जाँघ पर अुभर आयीं!

अुपवासके दिन पेट भरकर मार खाने पर अुपवास नहीं टूटता, यह धर्मशास्त्रकी सहूलियत कितनी अच्छी है! मैंने मार खायी, लेकिन आख़िर तक भोजन तो किया ही नहीं। जितनी श्रद्धा थी अुतना रोया और फिर चुप होकर देवघरमें नामस्मरण करने बैठा। जाँघ तो गरमागरम हो गयी थी। घरके कुछ लोग बैजनाथकी यात्राको गये थे। मुझे कोअी नहीं ले गया, अिसलिअे भिन्ना तो रहा ही था। अितनेमें चार बजे। अब मेरी दूसरी परीक्षा शुरू हुअी। माँके मनमें आया कि दत्तूको अुपवास करना हो तो भले करे, लेकिन अुपवासके दिन जो जो चीज़ें खायी जाती हैं वे सब चीजें खाये तो अच्छा हो; नहीं तो छोटी अुम्रमें पित्त बढ़ जायेगा और दूसरे दिन यह बीमार पड़ेगा। माँने आलू, मूँगफली, ख़जूर और सागूदानेके तरह तरहके पदार्थ तैयार किये और मुझे खानेको बुलाया। मेरा विचार निराहार रहनेका था। तीर्थकी पाँच-दस बूँदोंके सिवा तो पानी भी नहीं पीना था। जब अुपवास ही करना है, तो महादेव प्रसन्न हों अैसा ही करना चाहिये। मैंने कुछ भी खानेसे अिनकार किया।

मैं अितनी ज़िद करूँगा, यह तो किसीको ख़याल तक न था। फिर पिताजी तक फरियाद गयी। अुन्होंने कहा, 'तुझे शिवरात्रिका व्रत करनेकी अिजाज़त है; लेकिन ये फलाहारकी चीज़ें तो खा ले' अिस वक़्त तो दलील या आजिजी करने तककी मेरी नीयत नहीं थी। मैंने अपना मुँह ही सी लिया था। खाने या बोलनेके लिअे वह खुलता ही कैसे? मुँह खोले बगैर खाअी जा सकनेवाली तो अेक ही चीज़ थी; और वह पिताजीके हाथसे फिर पेट भरकर खायी। पिताजीने मानो निश्चय किया था कि अिसे तो खिलाकर ही छोडूंगा।

अिस वक़्त सवेरेसे भी ज़्यादा मार पड़ी। अितनेमें बड़े भाअी आये। अुन्होंने मुझे पकड़कर जबरदस्ती मुँहमें दूध डाला। मैंने वह सब थूक दिया और शायद पेटमें कुछ चला गया हो अिस शंकासे कै कर दिया। फिर तो मैं भी बिगड़ गया। जो भी सामने आता, अुसका डटकर मुक़ाबला करने लगा। अितनेमें महादेवको मुझ पर दया आयी और अुन्होंने मेरे मामाको हमारे यहाँ भेज दिया। मामाने सारी घटना देख ली, जान ली। अुन्होंने मेरा पक्ष लिया और पिताजीके सामने व्यावहारिक दृष्टि रखी: 'जाने दीजिये अिसे। अिस समय लगभग शामके पाँच तो बजनेवाले ही हैं। अब ज़्यादासे ज़्यादा तीन घण्टे अिसे और निकालने पड़ेंगे। फिर तो यह सो जायेगा।' अुसके बाद मेरी माँकी ओर मुड़ कर कहने लगे: 'गोंदू, अिसे सवेरे पाँच बजे जगाकर, नहला-धुला कर भोजन कराओ तो काम हो गया। किसीकी धार्मिक भावनामें बाधक न बनना ही अच्छा है। जब अितनी श्रद्धासे अुपवास कर रहा है, तो यह बीमार पड़ ही नहीं सकता, और यदि पड़ा भी तो सहन कर लेगा।'

आख़िरमें मेरी बात पूरी होकर रही। पिताजीने मुझसे कहा, 'चल देवघरमें! वहाँ कुलदेवताके सामने खड़े होकर कबूल कर कि मैं कॉलेजमें जाकर चाहे जितना नास्तिक हो जाअूँ, फिर भी महाशिवरात्रिका व्रत नहीं छोड़ूँगा।' मैंने राज़ी-ख़ुशीसे अिसके लिअे स्वीकृति दे दी। और तबसे आज तक बराबर महाशिवरात्रिका अुपवास करता आया हूँ। अेक ही बार तिथिका ध्यान न रहनेसे गफ़लत हुअी थी। अुसका प्रायश्चित्त मैंने दूसरे दिन किया। फिर भी अुस प्रमादका दुःख अभी तक बना हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि महादेव अिस त्रुटिके लिअे मुझे क्षमा करेंगे। पिताजीके गुज़र जानेके बाद ही यह गफ़लत हुअी थी, अिसलिअे अुनसे तो माफ़ी माँगी ही कैसे जा सकती थी!

२८

रामाकी चान्नी

रामा हमारे बड़े मामाका लड़का था। सातारासे जब हम शाहपुर आते तो रामासे मुलाकात होती।

रामाने पढ़ना कब छोड़ दिया यह तो मुझे मालूम नहीं। वह शायद ही कभी घरमें रहता। अुसका अपना अेक अखाड़ा था। ब्राह्मण लड़के अुसमें कसरत करने और कुश्ती सीखनेके लिअे जाते थे। स्वाभाविक ही अखाड़ेबाज लड़कोंमें से ही अुसके सब दोस्त थे। पिता-पुत्रकी मुश्किलसे बनती। घरमें न रहनेका यह भी अेक कारण हो सकता था। सबके भोजन कर चुकनेके बाद रामा घरमें आता और अकेला खाना खाकर पिछले दरवाज़ेसे चलता बनता।

अुसकी मित्र-मंडलीने अेक बार 'संभाजी'का नाटक खेला था। अिससे वह शाहपुरमें प्रसिद्ध हो गया था। लेकिन अुसके पिताको अुससे बहुत ही बुरा लगा था। वह जितना होशियार कुश्तीमें था, अुतना ही बातोंमें था। अिसलिअे अपने घरके सिवा जहाँ भी जाता, वहाँ अुसका स्वागत होता। रामाकी बातें मुझे बहुत अच्छी लगतीं। लेकिन बातें करते समय जब वह पालथी मारकर बैठता, तब अुसे सारे समय अपना घुटना हिलानेकी जो आदत थी, वह मुझे बिलकुल पसंद नहीं थी।

अेक दिन रामा न जाने कहाँसे गिलहरीका अेक बच्चा पकड़ लाया। फिर तो क्या! सारे दिन अुसे अुस गिलहरीका ही ध्यान रहता। जहाँ जाता वह बच्चा अुसके साथ ही रहता। अेक दिन शामको वह गिलहरीको लेकर हमारे घर आया। सभी अुससे पूछने लगे — 'रामा, तेरी चान्नी कहाँ है?' शाहपुरकी ओर गिलहरीको चान्नी कहते हैं।

रामा गर्वसे फूलकर सबको अपनी चान्नी बतलाने लगा। अितनेमें अुसके मनमें यह दिखा देनेकी अिच्छा हुअी कि यदि चान्नी हाथसे छूट जाये, तो वह खुद ही अुसे आसानीसे पकड़ सकता है। अतः हम सबको वह घरके पिछवाड़ेके आँगनमें ले गया। हम सात-आठ व्यक्ति होंगे। जैसे मदारी अपने खेलके लिअे पर्याप्त जगह कर लेनेकी खातिर तमाशबीन लोगोंकी भीड़को पीछे हटाता है और अपने आसपास खुला गोल मैदान तैयार कर लेता है, अुसी प्रकार रामाने हम सबको पीछे हटाया और धीरेसे अपना चान्नीका बच्चा ज़मीन पर रख दिया। दो दिनकी रामाकी हरकतोंसे बेचारा बच्चा घबड़ा-सा गया था, अतः खुला हो जाने पर भी अुसे विश्वास नहीं होता था कि वह खुला हो गया है। बेचारा अिधर-अुधर टुकुर-टुकुर देखने लगा। हम भी सब अपना ध्यान आँखोंमें अिकट्ठा करके यह देखने लगे कि बच्चा अब किस दिशामें दौड़ता है!

अितनेमें जैसी रेशमके नये कपड़ेकी आवाज़ होती है वैसी कुछ आवाज़ हमें सुनाअी दी और झ. . . प से अेक चील हमारे घेरेके बीचसे चान्नीको अुठा ले गयी!

यह सब अितना अचानक और क्षणभरमें हो गया कि क्या हो रहा है अुसकी कल्पना तक हमें न आयी। हम बच्चेको छुड़ानेके लिअे आगे बढ़े तब तक तो चील आकाशमें अूँची अुड़ चुकी थी। बच्चेकी अेक ही करुण चीत्कार सुनाअी दी। और वह अुबलते हुअे पानीकी तरह कानकी राह बहकर मेरे हृदय तक पहुँच गयी। चील अुड़ते अुड़ते अपनी चोंच और पंजेसे बच्चेको बार-बार ज़्यादा मज़-बूतीसे पकड़नेका प्रयत्न करती थी। हम 'अरेरे!' कहते अुसके पहले तो चील अेक नारियलके पेड़ पर जाकर बैठ गयी और हम सबके देखते-देखते अुसने अुस बच्चेकी बोटी-बोटी नोचकर अुसे पेटमें अुतार लिया।

रामाका चेहरा तो आश्चर्य और अुद्वेगसे बिलकुल फ़क़ पड़ गया था। चेहरेके अुस धुंधलेपनके कारण अुसके बड़े बड़े दाँत ज़्यादा सफेद दिखाअी देने लगे थे। अुसकी चकित आँखें और दाँत अभी भी मेरी दृष्टिके सामने अुस दिन जितने ही प्रत्यक्ष हैं। हम सब अवाक् होकर अेक दूसरेकी ओर देख रहे थे। आश्चर्यका असर अभी भी हम परसे अुतरा नहीं था। हरअेकको यही लग रहा था कि वह खुद सबसे ज़्यादा गुनहगार है। किसी पर नाराज़ हो सकनेकी गुंजाअिश होती तो रामा अुसके दाँत ही तोड़ देता। लेकिन अिस वक़्त तो हम सब असहाय थे। यह कैसे हो गया; यही विचार हरअेकके मनमें चल रहा था। अरे, अेक क्षण पहले तो वह बच्चा हमारा था। कितने आनन्दके साथ हम अुससे खेल रहे थे। यह कैसे हुआ? क्या अब अिसका कोअी अिलाज ही नहीं? नहीं, बिलकुल नहीं। औीश्वरके राज्यमें अैसा क्यों होता होगा? नहीं, अैसा होना ही न चाहिये था। यह तो असह्य होने पर भी बिना सहन किये चल ही नहीं सकता। आह, हम अितने सब थे; कोअी भी कुछ न कर सका! हमसे कुछ भी न बन पाया और बच्चेको सबके देखते-देखते मौतके मुँहमें जाना पड़ा। आखिरी क्षणमें बच्चेको कैसा लगा होगा? चीलने अुसका पेट फाड़ा अुस वक़्त अुसे कितनी वेदना हुअी होगी? मेरी दशा तो अैसी हो गयी, मानो मेरा ही पेट कोअी चीर रहा हो! किस कुमुहूर्त्तमें रामाको अुस बच्चेको पकड़नेकी दुर्बुद्धि सूझी होगी? क्या चीलके खानेके लिअे ही अिसने अुस बच्चेको यहाँ तक लाकर अुसे सौंप दिया? अपनी माँके पेटके नीचे बैठ कर जो बच्चा अपनेको गरमा लेता, वह आज चीलके पेटमें बैठ गया! गरीब प्राणियोंके बच्चोंको पकड़ना महापाप है। मैं तो किसी भी समय अैसी नीच क्रूरता नहीं करूँगा।

हरअेक व्यक्ति अपनी-अपनी जगह पर खंभेकी तरह खड़ा ही रहा। न कोअी बोलता था, न हिलता था। आखिर रामाने ही

गहरी साँस छोड़ी और दबी हुअी आवाज़से कहा, 'जो होना था सो हो गया, चलो अब!'

जिसके प्रति हृदयमें कुछ भी कोमल भावना हो, अैसे प्राणीकी मौत देखनेका मेरा यह पहला ही प्रसंग था। जो अभी 'था' वह अेक ही क्षणमें कैसे 'नहीं था' हो जाता है, यह सवाल अितनी चोटके साथ हृदयमें अंकित हो गया कि अुसका असर बहुत ही लम्बे समय तक बना रहा। अभी भी जब-जब वह प्रसंग याद आता है, वहीकी वही स्थिति जाग्रत हो जाती है।

वेदान्तकी तटस्थ दृष्टिसे मुझे यह भी विचार करना चाहिये कि चीलको जब वह कोमल बच्चा खानेको मिला, तब अुसे कितना आनन्द हुआ होगा! क्या मीठे फल खाते वक़्त मुझे मज़ा नहीं आता? लेकिन रामाकी चाबीके संबंधमें तो मेरा यह प्रथम घाव था; वह किसी भी तरह नहीं भरता और चीलके सुखका, अुसके क्षुधा-निवारणका ख़याल ज़रा भी प्रत्यक्ष नहीं होता।

२९

बाजोंका अिलाज

सहालगके दिन थे। दोपहरको और रातको, सवेरे और शाम, समय-असमयका विचार किये बिना बाजोंका शोर मचा रहता था। भाअू और मैं मकानके बाहरवाले कमरेमें सोते थे। बाजोंसे रातकी मीठी नींद अुचट जाती, अिसलिअे बाजेवालों पर हमें बहुत ग़ुस्सा आता। 'ये लोग दिनमें विवाह कर लें तो अिनका क्या बिगड़ता है? ये क्या निशाचर हैं जो रातमें विवाह करने जाते हैं?' यों कहकर हम अपना ग़ुस्सा प्रकट करते।

अितनेमें हमारे पड़ोसमें ही अेक विवाहका प्रसंग आया। रास्ते पर मंडप बनाया गया। बाजेवालोंको लाया गया। अुन

लोगोंको अपने सेठके घर बैठनेकी जगह नहीं मिली। अिसलिअे अुन चार-पाँच आदमियोंने हमारे बरामदेमें अड्डा जमाया। ज़रा-सी भी फुरसत मिलती तो वे अपनी कसरत शुरू करते: 'पों. . . पों . . . पी, पी, पी, पी, . . . तड़म, तड़म, तड़म!' भाअूका स्वभाव कुछ ग़ुस्सैल था। भेड़ियेकी तरह वह अपने कमरेके बाहर आकर कहने लगा, 'हरामखोरो, चले जाओ यहाँसे।' बाजेवालोंने अनजान बनकर जवाब दिया, 'गालियाँ क्यों देते हो भाअी? हम आपके घरवालोंसे अिजाज़त लेकर ही यहाँ बैठे हैं।' जब घरके बड़े-बूढ़ोंने आज्ञा दे दी, तो फिर हम बालकोंकी क्या चलती? बेचारा भाअू अपना-सा मुँह लेकर कमरेमें चला गया और अुसने खटसे दरवाज़ा बन्द कर दिया।

अितनेमें मेरे अुपजाअू दिमाग़में अेक अिलाज आया। अुस समय मैं संस्कृत तो नहीं सीख पाया था, लेकिन बाबाने कअी सुभाषित मुझे याद करवा दिये थे। मैंने कहा, 'बुद्धिर्यस्य बलम् तस्य।' बाजेवालोंका ग़ुस्सा मुझ पर निकालते हुअे भाअूने पूछा, 'तू क्या बात कर रहा है रे?' मैंने कहा, 'बाजोंका बजना मैं अभी बन्द कर देता हूँ।' और मैं घरके अंदर चला गया।

कच्चे आमोंके दिन थे। मैं घरमें से अेक सुन्दर बड़ा-सा हरा-हरा आम ले आया और बाजेवाले जहाँ पी – पी – पों– पोंकी कसरत कर रहे थे वहाँ अुनके सामने अनजान भावसे जा बैठा और अुनसे मीठी-मीठी बातें करने लगा। अुनका ध्यान ज़रा मेरी तरफ हुआ, तो मैंने कचड़-कचड़ आम खाना शुरू किया। खट्टे आमोंकी आवाज़ और अुनकी खट्टी बू नाक-कानमें घुस जानेके बाद यह तो हो ही कैसे सकता था कि जिह्वेन्द्रिय अपना स्वभाव न बतलाती? बाजा बजानेवालोंके मुँहमें पानी भर आया और शहनाअीकी जीभमें वह अुतर गया। ताड़पत्रकी लम्बी-लम्बी कमचियोंको अिकट्ठा बाँधकर शहनाअीके लिअे अुनकी चपटी जीभ बनायी जाती है। हम अुसे पी-पी कहते।

अिस पी-पीमें थूक घुसते ही बाजेकी आवाज़ बन्द हो गयी। मैं अपनी हँसी दबा न सका, अिसलिअे अुठकर घरमें भाग गया। बाजेवालोंके पास कुंजीके झुमकेकी तरह दूसरी दो-तीन जीभियाँ शहनाअीके साथ लटकती रहती हैं। अुस बाजेवालेने दूसरी जीभ बैठाना शुरू किया। वह भी थूकसे भीग गअी। तीसरी निकाली। अितनेमें हाथमें थोड़ा नमक लेकर मैं फिर अुनके सामने खाने बैठा। आम खाता जाता और ओठोंसे चुस्कियाँ लेता जाता। अिससे बाजे बन्द हो गये। अब नाराज़ होनेकी बारी बाजेवालोंकी थी। बड़ी-बड़ी आँखें निकालते हुअे वे वहाँसे चलते बने। मेरा दोष तो वे निकालते ही कैसे?

*　　　*　　　*

अिसी अरसेकी मेरी अेक दूसरी बहादुरी याद आती है। लेकिन अिस युक्तिका आचार्य मैं न था। और न मैंने अिसका प्रयोग ही किया था।

हमारे यहाँ कभी-कभी नन्दी बैल आते हैं। वैसे नन्दी बैल मैंने अन्यत्र नहीं देखे हैं। कअी प्रतिष्ठित भिखारी अपना ही अेक बढ़िया बैल रखते हैं, अुसको अच्छी तरह सजाते हैं, अुसके सींगोंमें छोटी-छोटी घंटियाँ और लम्बे लम्बे फुँदने बाँधते हैं, अुसकी पीठ पर रंग-बिरंगे कपड़े ओढ़ाते हैं, दो सींगोंके बीच माथे पर हल्दी और कुंकुम डालकर महादेवजी या अम्बाजीकी चाँदी या पीतलके पत्तरकी मूर्ति लटकती रखते हैं और दरवाज़े पर आकर घर-मालिकको आशीर्वाद देते हैं। बैल तालीम पाया हुआ रहता है, अिसलिअे जब अुसे कोअी सवाल पूछा जाता है, तो वह अपने मालिकके अिशारेके मुताबिक हाँ या ना का भाव बतानेके लिअे सिर हिलाता है। कभी मालिक ज़मीन पर सो जाता है और बैल अपने चारों पैर अुसके पेट पर जमा कर खड़ा रहता है। देखनेको अिकट्ठा हुअे तमाशबीन लोग दयासे द्रवीभूत होकर पैसे दे देते हैं। अिन भिखारियोंके पास अेक विशिष्ट

प्रकारकी ढोलक होती है। मुड़ी हुअी बेंतकी छड़ी जब ढोलकके चमड़े पर रगड़ी जाती है, तो अुसमें से 'ड्राँ, ड्राँ, ड्राँ, गुज, गुज, गुज'की आवाज़ निकलती है।

अेक बार हमारी गलीमें अेक नन्दी बैल आया और ढोलक बजने लगी। हमने अुससे लाख कहा कि तुम यहाँ मत आओ, मगर अुसने अेक न मानी और ढोलक बजाता ही रहा। यह देखकर पड़ोसके अेक लड़केसे मैंने कहा, 'अिस कर्कश आवाज़को हम बातकी बातमें बन्द कर सकते हैं।' मैंने अुसके कानमें अपना मंत्र कह दिया। नअी खोजके आनन्दसे अुसकी बाछें खिल गयीं। वह दौड़ता हुआ घरमें गया। अब खासा मज़ा देखनेको मिलेगा, अिस अपेक्षासे मैं दूर जाकर देखनेके लिअे तैयार हुआ। मेरे मित्रने घरसे अेक चीथड़ा लेकर खोपरेके तेलमें डुबाया और अुसको चुपचाप हाथमें छिपाये वह ढोलकवालेके नज़दीक गया, और मौक़ा देखकर चप्से वह चीथड़ा ढोलकके चमड़े पर फेंक मारा। ढोलककी अेक ओरकी आवाज़ बैठ गयी; छड़ीकी कँपकँपी बन्द हो गयी; भिखारी बिगड़ा और बेंतकी छड़ी लेकर अुस लड़केको मारने दौड़ा। लड़का पहलेसे ही सावधान था। अुसने घरमें घुस कर दरवाज़ा बन्द किया और खिड़की खोलकर कहने लगा, 'कैसी बनी! कैसी बनी! लेते जाओ!'

अिस अजीब युक्तिकी खोज मैंने नहीं की थी; मैंने तो वह पूनामें सुनी थी और अिस तरह अुसका प्रयोग किया।

३०

श्रावणी सोमवार

हम ठहरे महादेवके अुपासक। घरकी पूजामें अनेक मूर्तियाँ थीं। अुनके अलावा शिवजीका लिंग, विष्णुका शालिग्राम, गणपतिका लाल पाषाण, सूर्यकी सूर्यकान्त-मणि, और देवीका चमकता हुआ सुवर्णमुखी धातुका टुकड़ा — अैसी-अैसी बहुतेरी चीज़ें रहतीं। लेकिन पूजाके प्रमुख स्थान पर महादेवके बजाय अेक नारियल ही रखा रहता था। हम नारियलका रोज़ाना अभिषेक करते, अुस पर चन्दन, अक्षत और फूल चढ़ाते, भोग लगाते, आरती अुतारते और प्रार्थना करते। श्रावण महीनेमें पहले सोमवारको पुराना नारियल बदलकर नया नारियल रखा जाता। जैसे सरकारी कर्मचारियोंके तबादलेके समय आनेवाले और जानेवाले दोनों कर्मचारियोंका अेक साथ सत्कार किया जाता है, वैसे ही अुस सोमवारको दोनों नारियलोंका अेक साथ अभिषेक होता। अुसके बाद पूजाका नया नारियल मुख्य स्थान पर विराजमान होता और पुराना अेक तरफ़ बैठकर पूजा ग्रहण करता। दूसरे दिन पुराने नारियलको फोड़कर अुसके खोपरेका प्रसाद घरमें सबको बाँटा जाता। मैं कॉलेजमें पढ़ता था, तब भी मुझे डाकके ज़रिये वह प्रसाद मिलता था।

पूजाका नारियल अेक साल तक रखा जाता, अिसलिअे बहुत ही सावधानीसे परिपक्व नारियल देखकर पसंद किया जाता था। वर्षके अन्तमें अुसका खोपरा अच्छा निकलता, तो वह कुलदेवताकी कृपा मानी जाती। यदि खोपरा ख़राब निकलता अथवा सड़ जाता, तो वह कुलदेवताकी अकृपाका चिह्न समझा जाता।

अिस सारी विधिके कारण हमारे कुलधर्मके अनुसार श्रावणी सोमवार ही हमें नये वर्षके समान जान पड़ता। अुस दिन सारे दिनका अुपवास तो रहता ही। और लगभग सारे दिन रुद्राभिषेक, पूजा आदि चलता रहता। पिताजीको देवपूजा, वैश्वदेव, रुद्र, सौर, गणपति अथर्वशीर्ष वगैरा सब मुखाग्र था। घरमें पुरोहित यदि समयसे नहीं आता तो वे खुद ही पूजा कर लेते थे। फिर पुरोहितका काम सिर्फ़ दक्षिणा ले जाना ही रहता। कुलदेवताके प्रति पिताजीकी जो निष्ठा और नम्रता थी, वह बचपनमें तो मुझे सहज और स्वाभाविक जैसी लगती थी। आज जब विचार करता हूँ, तो पता चलता है कि अुनके जैसी निष्ठा मैंने बहुत ही कम लोगोंमें देखी है। और अिसलिअे मैं कह सकता हूँ कि वह असाधारण थी।

हमारे यहाँकी दूसरी अेक प्रथा मैंने आज तक दूसरे किसी कुटुम्बमें नहीं देखी। श्रावणी सोमवारके दिन सवेरे अुठकर, नहा-धोकर और संध्या-वन्दनसे निबटकर पिताजी देवघरमें जा बैठते। फिर पूजा शुरू करनेसे पहले अेक बढ़िया कागज़ लेकर, अुसे चन्दन-कुंकुम लगा कर, अुस पर कुलदेवताके नाम अेक पत्र लिखते। पत्रमें प्रारंभिक विरुदावलीके शब्द अितने अधिक होते कि कागज़का आधा हिस्सा अिन अुपाधियोंके शब्दोंसे ही भर जाता था। फिर पिछले वर्षकी कुटुम्बकी सब हालतका वर्णन किया जाता कि 'आपने अिस वर्ष अितनी समृद्धि दी, घरमें अमुक बालकोंका जन्म हुआ, फ़लाँ बातें हुअीं, अमुक रीतिसे अुत्कर्ष हुआ' वगैरा। फिर वर्षभरकी बीमारी, चिन्ताके कारण वग़ैरा सब गिनाकर 'हम अज्ञान हैं, आपकी 'लीला'॰ समझ नहीं सकते, आपने जो भी कुछ किया अुसे श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लेना ही हमारा धर्म है,' आदि बातें आतीं। अिसके बाद अगले वर्षके लिअे जो भी मन्शा होती, वह लिखी जाती। अुस अभिलाषामें माँगी हुअी चीज़ें मामूली ही रहतीं : 'सबको दीर्घायु, आरोग्य और सन्मति मिले; कोअी दु:खी न रहे, सबको

सुख-संतोष प्राप्त हो।' अिसके बाद सामाजिक सुख-दुःखकी बातें आतीं, जिनमें खासकर अकाल, महँगाओी, महामारी वग़ैराका ही अुल्लेख रहता। अिसमें भी सबको सुख-संतोष मिले यही माँगा जाता। आखिरमें 'आपका दासानुदास सेवक' आदि लिखकर हस्ताक्षर किये जाते। पूजाके बाद यह पत्र कुलदेवताके चरणोंमें रखा जाता।

हमारे घरमें अैसे पत्र लिखनेकी प्रथा है, अिसकी जानकारी मुझे तब हुअी जब में पूजाके कार्यमें पिताजीकी मदद करने लगा। यह पत्र पिताजी छिपाकर रखते थे, अैसी बात नहीं थी। लेकिन अुन्हें किसीको खास तौरसे सुनाते भी नहीं देखा था। अैसे कअी पुराने काग़ज़ोंको मैंने अुनकी पेटीमें पड़े हुअे देखा था। अुनमें से जितने मिले, अुतने मैंने अिकट्ठे भी करके रखे थे। बादमें जब मैं अुग्र राजनीतिमें हिस्सा लेने लगा तब मेरे अेक भतीजेने मेरे बहुत-से काग़ज़ात जला डाले। अुन्हींके साथ ये प्रार्थनापत्र भी जल गये।

जिस वर्ष मुझे अिन पत्रोंका पता चला, अुसी वर्ष पिताजी जब लिखने बैठे थे, मैं वहाँ गया और अुनसे पढ़नेके लिअे वह पत्र मैंने माँगा। अुस अधूरे पत्रको ही मेरे हाथमें देकर अुन्होंने मुझसे कहा, 'अिसमें और कुछ बढ़ाने जैसा तुझे लगता हो तो मुझसे कहना।' मैंने पत्र पढ़ लिया। अुससे मैं बहुत प्रभावित हुआ। अिसमें और कुछ क्या जोड़ा जा सकता है, अिस पर विचार करने लगा। अिसी अरसेमें हिन्दुस्तानकी सरहद पर अफ़ीदी लोगोंके साथ युद्ध चल रहा था। हिन्दुस्तान और अफगानिस्तानके बीचके मुल्कमें रहनेवाले अेक मुसलमान कबीलेका नाम अफ़ीदी है। अखबारोंमें पढ़ा था कि वे लोग बड़ी कुशलताके साथ अंग्रेज़ोंसे लड़ रहे हैं। मैंने पिताजीसे कहा, 'हम भगवानसे प्रार्थना करें कि अंग्रेज़ोंकी हार हो और अफ़ीदी लोग जीत जायँ।' अुन्होंने मेरी बात सुन ली और कुछ वाक्य लिखकर पत्र पूरा किया।

दूसरे या तीसरे दिन मैंने वह पत्र लेकर पढ़ा। अुसमें हार-जीतका अुल्लेख तक न था। अितना ही था कि 'सरहद पर जो लड़ाअी चल रही है और मनुष्य-संहार हो रहा है, वहाँ दोनों पक्षोंको सन्मति प्राप्त हो। लड़ाअी शांत हो और सब सुखी हों।' मुझे यह नरम माँग ज़रा भी पसन्द न आयी। मनमें यह भी विचार आया कि पिताजी सरकारकी नौकरी करते हैं, अिसलिअे अुनके मनमें अिस सरकारके प्रति कुछ पक्षपात होना ही चाहिये। विरोध करनेकी तो मेरी हिम्मत नहीं हुअी। मैंने अितना ही पूछा कि 'अैसा क्यों लिखा?' पिताजीने कहा, 'भगवान्‌से तो यही माँगा जा सकता है। किसीका बुरा हम क्यों चाहें? जिसके कर्म बुरे होंगे, वह अुसका फल भुगतेगा। हम तो यही माँग सकते हैं कि सब सुखी रहें। अिसीमें हमारा कल्याण है।'

पिताजीकी अिस बात पर मैं बहुत सोचता रहा!

३१

अँगुलियाँ चटकायीं!

छुटपनमें अँगुलियाँ चटकानेका आनन्द किसने नहीं लिया होगा? लेकिन मुझे बचपनमें अँगुलियाँ चटकाना नहीं आता था। हर अँगुलीको जोरसे पकड़ कर खींचता, फिर भी आवाज़ न निकलती। गोंदूको अिस बातका पता चल गया, अिसलिअे जब-जब मुझे चिढ़ानेका मन होता तब-तब वह कहता, 'तुझे अँगुली चटकाना कहाँ आता है?' पाठशालाके दो-चार दोस्तोंके बीच में बैठा होता और गोंदू यों कहता, तो अिज़्ज़त चली जानेका दुःख होता। मैं अुससे कहता, 'यह देख, मुझे भी अँगुलियाँ चटकाना आता है।' अितना कहकर अेक हाथकी मुट्ठीमें दबायी हुअी दूसरे हाथकी अँगुली पकड़कर खींचता और चमड़ीके घर्षणसे 'सू . . . क्' सी आवाज़ होती। लेकिन गोंदू

कहता, 'ना-ना, यह कोअी चटकन नहीं है, चटकनकी आवाज़ तो हड्डीमें से आती है।'

कअी बार यों फज़ीहत होनेसे मैंने निश्चय किया कि अिस कलामें असाधारण प्रवीणता प्राप्त किये बिना अब नहीं चल सकता। रोज़-रोज़ यह अपमान कौन सहे?

शाहपुरमें अेक नाअी था। वह अपना पेशा नहीं करता था, क्योंकि वह पागल हो गया था। अुसे मनुष्यके शरीरके चाहे जिस अंगको पकड़ कर चटकानेकी कला मालूम थी। वह हमें रास्ते पर दिखाअी देता तो हम अुसे खानेका लालच देकर घरमें बुलाते और कहते कि हमारा शरीर चटका। वह चोटी पकड़कर खींचता तो अुसकी जड़में आवाज़ होती, कान खींचता तो कानमें आवाज़ होती। अिसी तरह नाक, दाढ़ी, सिर, हर जगह चटकनेकी आवाज़ होती। खेल पूरा हो जाने पर हम माँसे माँगकर अुसे कुछ खानेको दे देते।

अेक दिन माँने कहा, 'यह नाअी बड़ा मांत्रिक था। अिसने अेक भूतको वशमें कर लिया था। अुस वक्त अिसकी शान देखने लायक थी। कहते हैं कि अिसके घरमें सोनेका दीया था। तेलकी जगह अुसमें यह पानी ही डालता, फिर भी वह जलता था! अिसने जो मंत्र-साधना की थी, अुसका फल अिसे बारह वर्ष तक मिला। फिर अेकाअेक यह पागल हो गया और अिसका सारा वैभव चला गया। अब यह भीख माँगता फिरता है। अिसकी मंत्र-साधना गंदी थी। बारह वर्ष तक वह भूत अिसके कहनेके मुताबिक करता रहा। बारह वर्षके बाद अुसी भूतने अिसका सत्यानाश कर दिया। जैसा करे वैसा भरे।'

मैंने निश्चय किया कि अँगुलियाँ चटकाना तो अुस नाअी जैसा ही आना चाहिये। दिन-रात अुसीका ध्यान रहता। करीब पन्द्रह दिनकी कड़ी मेहनतके बाद मेरी छिगुनी चटकी। अुस दिन मेरे आनन्दकी सीमा

न रही। मैंने दुगनी ताकतसे मेहनत करना शुरू किया। अिस तरह करते करते हर अँगुली तीन तीन जगहसे चटकने लगी। कुछ ही दिनोंमें मैंने खोज की कि अँगूठेमें भी तीन गाँठें हैं। तीसरी गाँठ बिलकुल हाथके जोड़के पास होती है। अुस गाँठको भी चटकानेका प्रयत्न किया। यानी अब हर हाथमें पन्द्रह चटकन तक पहुँच गया।

लेकिन अितनेसे भी मुझे संतोष न हुआ। हर अँगुलीकी दो गाँठोंको मैंने तीन-तीन तरहसे चटकानेकी कोशिश की। अुसमें भी सफल हुआ। फिर आयी कलाअीकी बारी। वह भी काबूमें आ गयी। मेरी जीत बढ़ने लगी। दोनों कन्धे भी वशमें आये। अुन्हें भी मैंने चटका लिया। फिर बारी आयी गर्दनकी। वह भी तीन तरहसे चटकने लगी: पीछेकी ओर और दाहिनी-बायीं ओर। फिर कान पकड़े। अुनके मूलस्थान भी बोलने लगे। फिर अुतरा कमर पर। पसली मरोड़नेसे कमर दो ओरसे आवाज़ करने लगी। घुटनेको वश करनेमें बहुत कठिनाअी पड़ी। वह आवाज़ तो करता था, लेकिन अुसके मनमें आता तभी। कभी किसीके सामने प्रदर्शन करने जायँ तो वह दग़ा दे सकता था। फिर टखनोंकी कसरत शुरू हुअी। अुन्होंने भी आवाज़ की। पैरकी अँगुलियाँ तो अिसके पहले ही बोलने लगी थीं।

अब जीतनेका कोअी प्रदेश शेष न था। कोहनी तो कभी बोली ही नहीं। अिसलिअे मैंने अुसको छोड़ दिया था। अेक दिन नींदमें से अुठकर जँभाअी ले रहा था कि मुझे खयाल आया कि मुँहका निचला जबड़ा भी बोल सकता है। लेकिन मुँहकी ये हरकतें मुझे खुदको भी पसन्द नहीं थीं, अिसलिअे अेक-दो बार जबड़ा बजानेका प्रयत्न करके फिर वह छोड़ दिया।

यों मैंने गोंदू पर विजय प्राप्त की। मेरे पराक्रमको देखकर सभी चकित हो गये। लेकिन अितनेसे मेरी तसल्ली नहीं हुअी

थी। मैं आगे बढ़ता ही गया। हाथकी अँगुलियाँ तो अितनी वशमें हो गयी थीं कि जब कहो तब और जितनी बार कहो अुतनी बार चटकती थीं। कोअी यदि मेरे अँगूठेका नाखून पकड़ लेता, तो मैं अुसे वहीं अेक-दो चटकन सुना देता था।

अितनी विजय मिलने पर भी मुझे यह चीज़ खलती थी कि चटकनोंमें अेक हाथको दूसरेकी मदद लेनी पड़ती है। यह द्वैत किस कामका? फिर तो अुसी हाथके अँगूठेसे मैं अुसकी दूसरी अँगुलियाँ चटकाने लगा। मुझे लगा कि अब हम अिस कलाके शिखर पर पहुँच गये। परन्तु, नहीं! अभी अेक कदम बाकी था। दो अँगुलियोंके स्पर्शके बिना, बिना किसी दबावके, अपने आप ही आवाज़ निकलनी चाहिये। हमारा शरीर तो कल्पवृक्ष है। जो भी कल्पना करें वह सफल होनी ही चाहिये। कुछ ही दिनोंमें मैं हर अँगूठेको तनिक फैलाकर आवाज़ निकालने लग गया। जब मैंने यह स्वयंभू आवाज़ सुनी, तभी मेरी विजिगीषा तृप्त हुअी।

लेकिन हाय, अिस निकम्मी कलाकी साधनामें मुझे बहुत बड़ी कुरबानी देनी पड़ी! शरीरके सारे जोड़ ढीले पड़ गये। हाथके पंजेमें तो बिलकुल ताक़त न रही। यदि मैं कोअी चीज़ जोरसे पकड़ूं, तो छोटा-सा बालक भी मुझसे वह छीन सकता है।

पाठशालामें मुझे फुटबाल खेलनेका शौक था। मेरे दुर्बल शरीरका ख़याल करके कहा जा सकता है कि मैं फुटबाल अच्छा खेलता था। खेलकी कुशलताकी अपेक्षा मुझमें अुत्साह ज़्यादा था। हाथ-पैर टूट जायें तो परवाह नहीं, लेकिन सामनेवालेको थकाये बिना नहीं छोड़ता। जहां धमा-चौकड़ी मची हो, वहाँ तो अपने राम ज़रूर घुस जाते। मेरी कक्षामें मेरा क़द सबसे अूँचा था; अिसलिअे अकसर मेरे क़द और मेरे अुत्साहकी क़द्र करके मुझे खेलमें लक्ष्यपाल (गोल-कीपर) बनाया जाता। फुटबालमें लक्ष्यपाल तो सर्वतंत्र-स्वतंत्र होता है। वह हाथका भी अुपयोग कर सकता है, पैर और सिरका अुपयोग तो

करता ही है। मैं लक्ष्यपाल बनता तो मेरा पक्ष निश्चिन्त हो जाता। लेकिन अुन लोगोंको क्या पता कि मैं चटकानेकी कला सिद्ध करनेमें जुटा हुआ था?

अेक दिन मैं लक्ष्यपाल था। अूपरसे फूटबाल आयी। लक्ष्यवेध (गोल) होनेका सबको पूरा विश्वास था। लेकिन अितनेमें मैं ज़ोरसे अुछला और मैंने दोनों हथेलियोंसे गेंदको रोका। चारों ओर मेरा जय-जयकार होने लगा। लेकिन अितनेमें मैंने देखा कि गेंदके वेगको रोकनेकी शक्ति मेरी हथेलीमें बाकी नहीं थी। कमज़ोर हाथोंसे गेंद खिसकी और अुसने लक्ष्यवेध (गोल) कर दिया। अेक ही क्षणमें जय-जयकारकी जगह मुझ पर धिक्कार बरसने लगा। यह क्यों हुआ अिसका किसीको पता न चला। खेलते समय ध्यान देनेमें या अुत्साहमें मैं किसीसे कम न था। आज क्या हुआ? मित्र आकर मेरा हाथ देखने लगे। अुस वक़्त मैं कुछ नहीं बोला; लेकिन मनमें समझ गया कि अँगुलियाँ चटकानेकी कला बहुत महँगी पड़ी है!

अुसी क्षण मैंने अुस कलाको त्याग देनेका निश्चय किया। लेकिन अब वह कला मुझे त्यागनेको तैयार न हुअी। 'बाबा कंबल छोड़नेको तैयार हुआ, पर कम्बल बाबाको कैसे छोड़ता?' अँगुलियाँ चटकानेकी वह घातकी आदत मुझमें अब भी मौजूद है, यद्यपि अुसकी हरकतें आज तो हाथोंके पंजों तक ही सीमित हैं। कअी बार मैंने प्रयत्न किया कि मैं अिस आदतसे छुटकारा पाअूँ, लेकिन जैसे आँखकी पलकें अपने आप हिलती रहती हैं, वैसे ही दोनों हाथ अपनी हलचल चालू ही रखते हैं, चटका ही करते हैं, और मुझे अुसका पता तक नहीं चलता। मुझे लगता है कि मेरे हाथको कोअी गंभीर रोग हो जाता, तो भी मेरा अितना नुक़सान न होता!

विजिगीषा — जीतनेकी, विजयी होनेकी महत्वाकांक्षा अच्छी वस्तु है; अुत्साह और टेक मानव-जीवनका तेज है; लेकिन यदि

बिना विचारे अिनका प्रयोग किया जाय, तो अुससे सदा ही पछताना पड़ता है और पछताने पर भी कुछ हाथ नहीं आता। ज़िद पकड़ कर कअी बार मैंने अपना नुक़सान किया है। सबसे आगे जानेका मोह शायद ही कभी मुझे हुआ है। लेकिन जब कभी हुआ है, तब अुसने मुझे अिसी तरह अन्धा बना दिया है।

३२

बुरे संस्कार

शाहपुरके अेक कोनेमें होस्सूर नामक गाँव है। शाहपुर और होस्सूरके बीच अेक खेतका भी अन्तर नहीं है। दोनों गाँवोंके घर बिलकुल पास पास हैं। लेकिन अुस वक़्त शाहपुर देशी राज्यमें था, और होस्सूर अंग्रेज़ी सल्तनतके मातहत था। होस्सूर कन्नड़ नाम है, और अुसका अर्थ होता है 'नया गाँव'; लेकिन वहाँ भी पाठशाला तो मराठी ही है।

न जाने क्यों, मुझे अेक वक़्त होस्सूरकी मराठी पाठशालामें भरती किया गया था। शाहपुरमें पाठशाला तो थी, पर होस्सूरकी पाठशाला हमें नज़दीक पड़ती थी। लेकिन मैं सोचता हूँ कि मुझे वहाँ भरती करनेका कारण यह नहीं था। ब्रिटिश राज्यमें जो किसान लोकल फण्ड देते थे, अुन्हें पाठशालाकी फीस बराय नाम ही देनी पड़ती थी। शाहपुरकी पाठशालामें पूरी फीस देनी पड़ती थी; होस्सूरमें लगभग मुफ़्त ही पढ़नेको मिलता था। अिसीलिअे मुझे ब्रिटिश पाठशालामें भेजा गया था!

मेरी पढ़ाअीकी तरफ़ घरमें किसीका भी ध्यान नहीं था। फिर मेरा अपना ध्यान तो होता ही कैसे? होस्सूरकी पाठशालामें हमारे हेडमास्टर महीनों तक छुट्टी पर रहते थे। अुनके सहायक तो थे

ही नहीं। अतः रोज़ाना चपरासी आकर पाठशाला खोलता, और अिधर-अुधर थोड़ी झाड़ू लगा देता। फिर लड़के अपनी-अपनी कक्षामें बैठ जाते। कोअी नकशा खोलता, तो कोअी कविता गाता। दस बजते ही लड़कोंमें घंटी बजानेकी धमाचौकड़ी मचती। अेक बड़ा लड़का बहुत ही दुष्ट था। छोटे लड़के अूँची अंगद छलाँग मारकर घंटी बजाते, और घंटीमें से निकलते हुअे नादका दीर्घ अनुरणन सुननेके लिअे खड़े रहते, तो वह तुरन्त ही वहाँ आकर हाथसे घंटी पकड़ लेता और नादका वध कर देता। अिससे लड़कोंने अुसका नाम 'घंटा-नाद-विडंबन' रखा था!

यह लड़का और तरहसे भी ख़राब था। हररोज़ नअी-नअी गन्दी पुस्तकें न जाने कहाँसे ले आता। फिर अूँची कक्षाके लड़के अुसके आसपास बैठकर अुनका पारायण करते। मैं भी अुसी कक्षामें पढ़ता था। मेरी कक्षामें मैं सबसे छोटा था, अिसलिअे अुस गन्दे पारायणका ब्रह्माक्षर भी मैं नहीं समझ पाता था। मुझे बिलकुल अनभ्यस्त देखकर दूसरे लड़के मुझे अपने बीच नहीं बैठने देते। मेरे प्रति तिरस्कार तो नहीं था, लेकिन मैं अुस बारेमें अनजान हूँ और मेरे अुस अनजानपनको बिगाड़नेका पाप हम न करें, यों मान कर 'घंटा-नाद-विडम्बन' मुझे दूर रखता होगा, अैसा मेरा ख़याल है। अुसके अिस सद्भावके लिअे मुझे अवश्य अुसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिये। अुस कक्षामें चलनेवाली बातोंको मैं समझता न था। मुझे अुनमें मज़ा भी न आता था, फिर भी अुन लोगोंकी कुछ न कुछ बातें मेरे कानमें ज़रूर घुस जाती थीं।

बाल-मानसका यह स्वभाव है कि जिस बातको वह नहीं समझता, अुसे अेक कोनेमें अिकट्ठा करके रखता है; और मन जब फ़ुरसत पाता है तो अुसका रहस्य समझनेका प्रयत्न करता है। मेरे बारेमें भी अैसा ही हुआ। चित्तमें अनेक बेवकूफ़ी-भरे तर्क-वितर्क

चलते और मनको गन्दा करते। अिस प्रकार हाेस्सूरकी पाठशालामें नहीं, किन्तु अुस पाठशालाके कारण मेरा बहुत ही नुक़सान हुआ।

आख़िर हेडमास्टर आये। भूगोलमें मेरी प्रगतिको देखकर वे मुझ पर ख़ुश हो गये। गणित और मराठी काव्य अुनके प्रिय विषय! वे जितने विद्वान थे, अुससे ज़्यादा घमंडी थे। वर्गमें भी बीच-बीचमें कोअी न कोअी अुनसे मिलनेको आता ही रहता। फिर अुनकी बातें चलतीं और हम सुनते रहते। अुनके अपने मनमें अुनके दिमाग़की क़ीमत असाधारण थी। अेक दिन अपने अेक दोस्तसे कहने लगे, "मेरा गणिती दिमाग़ मैं क्षुद्र काममें नहीं खर्च करता। बाज़ारमें बनिये या कच्छीसे जब मैं कोअी चीज़ खरीदता हूँ और वह मुझसे हिसाब करनेको कहता है, तो मैं अुससे कह देता हूँ कि 'तू ही अपना हिसाब कर ले और जितने पैसे लेने हों अुतने लेकर बाकी पैसे मुझे दे दे।' बनियाशाही हिसाबमें मैं अपने गणिती दिमाग़का अुपयोग नहीं किया करता।"

अिस बातको सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। अब तक मैं यह मानता था कि गणितमें होशियार मनुष्य कठिनसे कठिन सवाल भी ज़बानी कर सकता है। अुसे हिसाबकी चिढ़ नहीं होती, अुलटे अुसमें असे मज़ा ही आता है। सामान्य हिसाबमें भी मेरा काम त्रैराशिकके बिना नहीं चलता था; अिसलिअे मैं मानता था कि मेरा दिमाग़ गणिती नहीं है। लेकिन जब हमारे गणिती हेडमास्टरकी राय सुनी, तो मनमें नया (?) ही खयाल पैदा हुआ कि अपना ज्ञान हर घड़ी बरतनेकी चीज़ नहीं होती; दिमाग़का अुपयोग करनेसे वह खर्च हो जाता है! भुक्खड़ लोग भले ही तुच्छ बातोंमें अपना दिमाग़ खर्च करें। प्रतिष्ठित गणिती तो ज़बरदस्त युद्धका प्रसंग आये, तभी अपने ज्ञानकी तलवार म्यानसे बाहर निकालता है।

अेक दूकानदारके बारेमें मैंने अैसी ही बात सुनी थी। वह भला आदमी दूकानमें आँखें मूँदकर बैठता था। कोअी ग्राहक आता,

तभी अपनी आँखें खोलता। किसीने अुसे अिसका कारण पूछा तो जवाब मिला — '**आँखोंका नूर मुफ़्त क्यों खोवें?**'

अिस गणिती हेडमास्टरकी कल्पनामें समाये हुअे विचारदोषको खोजनेमें मुझे बहुत समय न लगा। लेकिन अुसकी बोअी हुअी वह वृत्ति निकाल फेंकनेमें बेहद मेहनत करनी पड़ी। अभी भी वह निकल गयी है, यह मैं विश्वासके साथ नहीं कह सकता।

३३

मैं बड़ा कब हुआ?

अेक दिन गवसू नामक अेक मुसलमान भाअी हमारे यहाँ आया। अुसने अपनी छोटी-सी ज़मीन रेहन रखकर मेरे पिताजीसे सौ-सवासौ रुपये अुधार लिये थे। अुसका ब्याज बढ़ रहा था, फिर भी आज वह नया क़र्ज़ लेने आया था। वह बड़ा ही आलसी आदमी था। कोअी काम-धंधा नहीं करता था। अिधर-अुधर कुछ चालाकियाँ करके पेट भरता था। लेकिन अब आयसे ख़र्च बढ़ गया, अिसलिअे फिरसे क़र्ज़ लेनेकी आवश्यकता हुअी। अिस नये क़र्ज़के लिअे वह अपना घर रेहन रखनेको तैयार था।

आम तौर पर पैसेका लेन-देन घरके बड़े लोग अपनी अिच्छाके मुताबिक़ ही करते हैं। छोटे लड़कोंसे अुसमें पूछना ही क्या होता है? लेकिन अुस दिन न जाने क्यों, पिताजीने मुझसे पूछा, 'दत्तू, यह गवसू और सौ रुपये माँग रहा है और अुसके लिअे अपना घर रेहन रखना चाहता है। क्या हम अिसे कर्ज़ दे दें?' मैं आश्चर्यचकित हो गया। किसीको पैसे अुधार देने जैसी महत्त्वपूर्ण बातमें पिताजी कभी मेरी सलाह भी लेंगे, अिसकी मुझे कल्पना तक नहीं थी। मुझे लगा कि अब मैं बड़ा हुआ; क्योंकि कौटुम्बिक राज्यमें मुझे मत देनेका

अधिकार मिला! अधिकार मिलनेका मुझे जो आनन्द हुआ, अुसे मैं छिपा न सका। साथ ही साथ मुझे यह भी भान हुआ कि वह आनन्द मेरे चेहरे पर स्पष्ट दिखाअी देता होगा। यह भान होते ही मैं शरमाया। शरमकी छटा मुँह पर आ गयी है, अिसका भी मुझे भान हुआ। अिसलिअे मैं और भी परेशान हुआ। आखिर हिम्मत करके मनमें सोचा कि जब मैं बड़ा हो ही गया हूँ, तब मुझे गंभीर बनना चाहिये। सलाह देनेके प्रसंग तो अिसके बाद हमेशा आते ही रहेंगे; अतः अिस नये अधिकारके लिअे मैं योग्य हूँ, अितनी स्वाभाविकता मुझे अपनी मुखमुद्रा पर रखनी चाहिये और यह भी दिखा देना चाहिये कि बड़ी अुम्रके लोगों जैसी पुख्ता सलाह भी मैं दे सकता हूँ।

अिस प्रकार मनमें सोच-विचार करके मैंने विवेकपूर्वक कहा, 'पैसेके व्यवहारमें मैं क्या जानूं? फिर भी मुझे लगता है कि अिस आदमीको हमें पैसे नहीं देने चाहिये। मैं अिसके यहाँ अनेक बार हो आया हूँ। अिसके घरमें बूढ़ी माँ है, स्त्री है, और बाल-बच्चे हैं। गवसू तो सारा दिन मारा-मारा फिरता है। घरकी औरतें बेचारी सूतकी कुकड़ियाँ भरनेका काम करती हैं, सवेरेसे शाम तक अटेरन घुमाती हैं, तब कहीं मुश्किलसे गुज़र-बसर करने जितना पैसा मिलता है। गवसू अपना लिया हुआ क़र्ज़ अदा नहीं कर सकेगा। आखिर तो हमें अिसका घर ही ज़ब्त करना पड़ेगा; तब अिसके बाल-बच्चे कहाँ जायेंगे?'

मैंने मनमें माना कि मैंने पुख्ता सलाह दी है। पिताजीने भी अुस आदमीसे कहा, 'गवसू, दत्तू भैया जो कह रहे हैं, वह सच है।' गवसू मेरी ओर दबे हुअे रोषसे देखने लगा। अिससे मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मैं दरअसल बड़ा हो गया हूँ। गवसू मेरे सामने कुछ बोल नहीं सकता था। थोड़ी देर तक हमने और चर्चा करके तय किया कि गवसूके घरके पास जो ज़मीन है, अुसे पुराने

कब्ज़में ले लिया जाय और अुसके लिअे पचास रुपये ज़्यादा देकर अुसकी वह ज़मीन खरीद ली जाय तथा घर रेहन रखकर अुस पर पचास रुपये दिये जायँ, जिससे अुस पर ब्याजका बोझ ज़्यादा न पड़े।

मेरी अिस व्यवस्थामें महाजनीका व्यवहार-ज्ञान तो था ही, लेकिन अुसकी जो ज़मीन हमने ली थी वह अितनी छोटी थी कि बाज़ारमें अुसकी क़ीमत पचास रुपयेसे अधिक नहीं थी। रास्तेके किनारे होनेसे अगर वहाँ पर दूकानके लायक छोटा-सा मकान बना कर किराये पर दिया जाय, तो गवसूको दिये हुअे कर्ज़के सूद जितना किराया मिल सकेगा, अिस हिसाबसे मैंने यह सुझाव पेश किया था। अिसमें मैंने अुस कुटुंबका हित ही देखा था।

अुन पचास रुपयोंका भी ब्याज अुसने कभी नहीं दिया। तब मेरे बड़े भाअीने अुस पर मुक़दमा दायर किया। मुक़दमेका समन्स गवसूकी माँको देना था, जिसके लिअे नाज़िरके साथ मुझे गवसूके घर जाना पड़ा। अिस घरमें यों ही क्षेम-कुशलकी बातें करनेके लिअे मैं कअी बार गया था, लेकिन अब अुसी घरमें नाज़िरको लेकर शत्रुके समान प्रवेश करनेमें मुझे बहुत ही शरम मालूम हुअी। गवसूकी माँके सामने मैं आँख तक न अुठा सका। लेकिन घरके स्वराज्यमें मिले हुअे अधिकारके साथ अैसा गन्दा काम करनेका भार भी मुझ पर आ पड़ा था और अुसे वफ़ादारीके साथ अदा करने जितना मैं बड़ा हो गया था। कोर्टमें गवसूने कबूल किया कि अुसने हमसे पैसे लिये हैं और ब्याज बिलकुल नहीं दिया है। अब तो अुसका घर ज़ब्त करके नीलाम करनेकी बात रही थी। यह विचार मेरे लिअे असह्य हो गया। मैंने मुन्सिफ़से कहा, 'मैं नहीं चाहता कि अिस ग़रीबका घर नीलाम हो। आप अिसकी किस्त बाँध दीजिये।' कोर्टने फैसला दिया कि पचास रुपये और अुनका अुस दिन तकका ब्याज जब तक चुक न जाय, गवसूको तीन रुपये महीनेकी किस्त देनी होगी; अुसमें यदि

अेक महीनेकी भी भूल होगी, तो घर ज़ब्त कर लिया जायेगा। मैंने पत्र लिखकर पिताजीको सारा हाल बताया। अुनका जवाब आया, 'तूने ठीक किया।' मेरे अपनी ज़िम्मेदारी पर किये हुअे कामके लिअे पिताजीकी मंजूरी मिल गयी, अिससे मुझे विश्वास हो गया कि अब मैं अवश्य ही बड़ा हो गया हूँ।

अुस वक़्त शायद मैं तेरह-चौदह वर्षका था। गवसूने लगभग अेक वर्ष तक हर माह तीन रुपये दिये। फिर किसी महीनेमें वह अेक रुपया लाता तो किसी महीनेमें आठ ही आने लेकर आता। आख़िर अूब कर मैंने अुससे कहा, 'बस हो गया; अब मत आना। घरके बच्चोंको अिन पैसोंसे घी-दूध खिलाना।' अदालतमें मुक़दमा लेकर जानेका यह मेरा पहला और अंतिम अवसर था। अिसके बाद मैं कभी अदालतमें नहीं गया।

३४

पचरंगी तोता

केशू अपने बचपनमें बार-बार बीमार पड़ता। अुसे मृगी रोगकी व्यथा थी। ज़रा नाराज़ होता तो बेसुध हो जाता और अेकदम अुसके मुँहसे फेन निकलने लगता। अिससे अुसकी तबियतके साथ अुसका मिजाज़ भी सँभालना पड़ता था। अिससे वह बड़ा तुनक-मिजाज़ बन गया था। वह जो माँगता, वह अुसे मिलना ही चाहिये। अुसके खिलाफ़ कोअी बोल न सकता था। अुसकी अिच्छाअें हमेशा पूरी की जातीं। फिर भी वह सदा असंतुष्ट ही रहता था। अुसका जितना लाड़ लड़ाया जाता, अुतनी अुसकी अपेक्षाअें बढ़ती ही जाती थीं।

गोंदू केशूसे छोटा था। केशूकी बीमारीके कारण गोंदूकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया था। फिर गोंदूके दुर्भाग्यसे अुसके जन्मके

डेढ़ वर्ष बाद ही मेरा जन्म हुआ था। अिसलिअे स्वाभाविक रूपसे ही सबकी ममता मेरी ओर झुक गयी। केशू बीमार था और मैं बच्चा। दोनोंके बीच गोंदूके लिअे बहुत ही सँकड़ी जगह बची।

अेक वक्त पिताजी केशूको साथ लेकर गोवा गये थे। गोवामें पोर्तुगीजोंका राज है। वहाँसे लौटते समय केशूने अेक पचरंगी तोता देखा। अुसने ज़िद पकड़ी कि मैं यह तोता जरूर लूँगा। अक्काने जबसे घरमें से तोतेको निकाल दिया था, तबसे घरमें तोता लानेकी किसीकी अिच्छा न होती थी। विष्णु यदि तोता माँगता, तो कोअी अुसे वह न दिलाता; लेकिन केशूकी बात अलग थी। पिताजीने तोता खरीदा। गोवाकी सीमामेंसे यदि तोता बाहर जाता है, तो अुस पर कर देना पड़ता है। (स्वतंत्र तोते पर कर नहीं लगता, बन्दी बनकर जानेवाले तोते पर ही कर लगता है!) तोतेका रेलवे किराया भी लगभग मनुष्यके किराये जितना ही होता है।

अिस तरह बड़े ठाटबाटसे तोता घर आया। केशू सारे दिन तोतेको लेकर खेलता और अुसीकी बातें सुनता। तोतेके गलेमें काली लकीरका अेक घेरा था। अुसे हम कंठी कहते। अुस कंठीसे वह तोता कितना सुन्दर दिखाअी देता था! केशूने अुसे 'विठू विठू' (विट्ठल विट्ठल) बोलना सिखाया था। अुसे खिलाने-पिलानेका काम मुझे सौंपा गया था। हर रोज़ बाज़ार जाकर मैं अुसके लिअे केले लाता। बीच-बीचमें अुसे हरी मिरचियाँ भी खिलाता। ताजी हरी मिरचियाँ तो तोतेके लिअे मानो बढ़िया भोज है! अपनी लाल-लाल चोंचमें हरी मिर्चको पकड़कर तोता जब अपनी जीभसे अुसका स्वाद चखता, तो वह दृश्य देखनेमें मुझे बड़ा मज़ा आता। घीकुवाँर या ग्वारपाठेकी गिरी भी अुसे बहुत भाती थी। अिसलिअे कहींसे ग्वारपाठा लाकर, अुसके काँटे निकालकर और टुकड़े करके तोतेको देना भी मेरा ही काम था। सुबह-शाम अुसका पिंजरा भी धोना पड़ता। पिंजरेमें पानीकी कटोरी हमेशा भरी रहती। मैं रातको सोते

समय चनेकी दाल पानीमें भिगोकर रखता और सुबह होते ही वह तोतेको नाश्तेमें दे देता। पिंजरेमें अगर मैं अपनी अँगुली डालता तो तोता अुसे प्यारसे अपनी चोंचमें पकड़ता लेकिन कभी काटता नहीं था। गोंदूकी अैसी हिम्मत न होती थी। अेक दिन तोतेकी पूँछ पिंजरेसे बाहर आ गअी थी। गोंदूको मौक़ा मिल गया। अुसने ज़ोरसे वह पूँछ पकड़कर खींची। तोतेने चिल्लाकर कुहराम मचाया। हम सब घटनास्थल पर दौड़े। केशूने ग़ुस्सेमें गोंदूकी चोटी पकड़ी और अितने ज़ोरसे खींची कि गोंदूको भी तोतेका ही अनुकरण करना पड़ा।

तोतेकी सारी सेवा-टहल मुझीको करनी पड़ती, लेकिन तोता तो केशूका ही माना जाता था। मेरे नामसे घरमें अेक बिल्ली हमेशा रहती। गोंदूके मनमें आया कि अपना भी कोअी जानवर हो तो अच्छा। नारायण मामाके यहाँ अेक कुतिया थी। अुसका नाम था टॉमी। 'टॉमी' शब्द अिकारान्त होनेसे मामाने समझा कि वह स्त्रीलिंग ही होगा। मामाको अितनी ही अंग्रेज़ी आती थी। लेकिन कुत्तेका नाम अंग्रेज़ी रखें तभी हम पढ़े-लिखे माने जायँ न? गोंदू टॉमीको ले आया और माँसे बोला, "मेरी टॉमीको कुछ खानेको दो।' माँने कहा, 'पथरीमें छाछ है वह अपनी कुतियाको पिला दे।' गोंदूने वह सारा बरतन ही कुतियाके सामने रख दिया। अुसमें मक्खनका गोला तैर रहा था वह भी टॉमी निगल गयी। भाभीने यह देखा तो घरके सब लोगोंसे कह दिया। मक्खन गया और पत्थरका बरतन भी कुतियाने भ्रष्ट कर दिया। सबने गोंदूको आड़े हाथों लिया। पथरी अेक ख़ास किस्मके पत्थरका बरतन होता है। अुसमें दाल भी पकायी जा सकती है। चूल्हेसे नीचे अुतार दें, तो भी पन्द्रह-बीस मिनट तक अुसमें दाल अुबला करती है। यह बरतन जितना अधिक पुराना हो अुतना अधिक अच्छा माना जाता है। गोंदूकी मूर्खताके कारण अितना अच्छा बरतन बेकार हो गया। अिससे

घरके सब लोग भले ही गोंदू पर नाराज़ हुअे हों, लेकिन टॉमी तो गोंदू पर बहुत खुश हुअी। और क्यों न होती? अुसे तो 'प्रथम-ग्रासे नवनीतप्राप्तिः' हुअी।

रातके आठ बजे होंगे। दीवानखानेमें कोअी नहीं था। घरके सब बड़े लोग बाहर घूमने गये थे। स्त्रियाँ रसोअी पकानेमें लगी थीं। भाभी रसोअीघरमें भोजनके लिअे थाली-कटोरी लगा रही थी। श्वान-धर्मके अनुसार टॉमी आने-जानेके रास्तेमें सो रही थी; और बड़े भाअी घरमें नहीं थे, अिसलिअे मैं अुनकी अनुपस्थितिसे लाभ अुठाकर अुनके कमरेसे 'मोचनगढ़' नामक अुपन्यास लेकर पढ़ रहा था। अुपन्यासका नायक (जिसका नाम शायद गणपतराव था) अेक क़िलेमें क़ैदी होकर पड़ा था। छूटनेका कोअी रास्ता न मिलनेसे वह बेंतकी छड़ोंवाला अेक बड़ा छाता हाथमें लेकर अुसके सहारे क़िलेके नीचे कूदनेवाला था। मेरा चित्त अुसके साथ सहानुभूतिसे अेकाग्र हो गया था। साँस रुक गयी थी। अितनेमें तोतेकी चीख सुनाअी दी। रात होते ही तोता सो जाता था। अतः अुसकी चीख सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। अुपन्यासकी अुत्तेजना तो थी ही। अिसलिअे ज्यों ही चौंककर मैंने पिंजरेकी ओर देखा तो कितना भीषण दृश्य वहाँ अुपस्थित था! दरवाज़ेसे खूँटी पर और खूँटी परसे छतसे टँगे हुअे पिंजरे पर कूदकर बिल्ली तोतेका ब्यालू करनेकी तैयारीमें थी। डरके मारे तोतेके होश-हवास गुम हो गये थे और बिल्लीका पंजा पिंजरेमें घुस चुका था। मैं शूरवीरकी तरह दौड़ा और हाथकी अेक ही चपेटसे बिल्लीको नीचे गिरा दिया। न जाने अुस दिन कौनसा मनहूस मुहूर्त्त था! बिल्ली जो गिरी तो टॉमी पर। सोयी हुअी टॉमीको पता न चला कि क्या हुआ है। वह घरकी ही बिल्ली है अितना पहचाननेका भान टॉमीको न रहा। अुसने बिल्लीको अपने पंजेका मज़ा चखा ही दिया। यदि मैं टॉमीको ज़ोरसे लात न मारता, तो अुस वक़्त मेरी बिल्ली मर ही जाती; क्योंकि टॉमीने

बिल्लीकी गर्दन लगभग दाँतोंमें पकड़ ही ली थी। तोते पर हमला करनेवाली बिल्लीके प्रति मेरा रोष अेक ही क्षणमें दयामें परिवर्तित हो गया; तोतेके बदले बिल्ली दयाका पात्र बनी, और बिल्ली परका ग़ुस्सा कूदकर टॉमी पर सवार हुआ। मैंने टॉमीको दो लातें जमा दीं।

अितनेमें बाहरसे गोंदू वापस आया। अुसे यहाँका हाल क्या मालूम? अुसने तो केवल टॉमीको लात मारते मुझे देखा था। फिर पूछना ही क्या? 'मेरी कुतियाको क्यों मारता है?' अैसा कहते हुअे अुसने मेरे गाल पर दो तमाचे जड़ दिये। अुस कुमुहूर्त्तका असर शायद अितनेसे ही ख़तम होनेवाला नहीं था। अत: अुसी क्षण बाज़ारसे केशू भी आ पहुँचा। केशूका मैं लाड़ला ठहरा! अिसलिअे अुसने मेरा पक्ष लिया। क्या हो रहा है, यह पूछनेकी प्रस्तावनाके तौर पर अुसने गोंदूकी पीठमें अेक घूँसा लगाया। हमारा शोरगुल सुनकर घरके सब लोग अिकट्ठा हो गये। अुस परिस्थतिमें औरोंकी अपेक्षा मैं ही वहाँ सर्वज्ञ था। अत: मेरा ही दिमाग़ ठिकाने था। खाये हुअे तमाचे भूलकर मैंने हँसते-हँसते सारा माजरा ब्यौरेवार सबको कह सुनाया और जब देखा कि सब लोग अुसकी चर्चा करनेमें मग्न हो गये हैं, तो अुस मौक़ेसे लाभ अुठाकर मैं चुपचाप 'मोचन-गढ़' अुपन्यास भाअीसाहबके कमरेमें रख आया!

३५

छोटा होनेसे !

ठेठ बचपनसे केशूका मेरे प्रति विशेष पक्षपात था। अिससे वह मुझ पर कुछ-कुछ अभिभावकत्व भी जताता था। अुसे सन्तोष हो अितनी वर्ज़िश मुझे करनी चाहिये, वह कहे सो काम करना चाहिये, अुसे जो पसन्द हो वही मुझे भी पसन्द होना चाहिये, अुसकी जिससे दुश्मनी हो अुसकी निन्दा मुझे करनी चाहिये, दुश्मनकी गुप्त बातें चाहे जहाँसे प्राप्त करके अुसको बतानी चाहियें। फिर यदि केशू मुझे पीटे, तो अितना ही नहीं कि मैं अुससे झगड़ा न करूँ, बल्कि मेरे पिटते समय अगर कोअी दया करके मुझे छुड़ाने आ जाय, तो अुससे मुझे कह देना चाहिये कि, "केशू मुझे भले ही पीटे, तुम्हें बीचमें पड़नेकी कोअी ज़रूरत नहीं है!" — अैसे अैसे अनेक काम मुझे करने पड़ते। और वे सब मैं अेक तरहकी राज़ी-ख़ुशीसे करता। सेनापतिके कठोर हुक्मका पालन करनेमें अेक सैनिकको जो कर्तव्य-पालनका सन्तोष मिलता है, वैसा सन्तोष मैंने आत्मसात् कर लिया था। मैंने तो अितना अद्भुत और आदर्श अनुयायीपन ग्रहण कर लिया था कि केशूमें जब सदाचारका अुबाल अुठता, तो मैं मर्यादानिष्ठ वैष्णव बन जाता; जब शृंगारयुक्त पद गानेकी धुन अुस पर सवार होती, तब मैं भी रसिक बन जाता; जब अिसके कारण अुसे पश्चात्ताप होता, तो मैं भी अुसी क्षण पश्चात्ताप करने लगता। अिस प्रकारके अपूर्व आदर्श, और अनुयायीपनकी मैंने अपनेको आदत डाली थी। अुसमें से जितना हिस्सा अच्छा था, वह अब भी मुझमें मौजूद है; और शायद अुसका कुछ बुरा असर भी मुझमें रह गया होगा।

अिस प्रकारकी साधनाका अेक परिणाम तो मैं आज स्पष्ट देखता हूँ कि जब कोअी व्यक्ति मुझसे बातें करता है, तो मैं तुरन्त ही अुसके प्रति समभाव धारण करके अुसकी बातको अच्छी तरह समझ लेता हूँ। अितना ही नहीं कि मैं अुसकी मनोवृत्तिको समझ सकता हूँ, बल्कि अुस वृत्तिको बहुत कुछ अपनेमें महसूस भी कर सकता हूँ। अिससे हरअेक पक्षका पहलू और अुसकी खूबी सामान्य लोगोंकी अपेक्षा मेरी समझमें जल्दी आती है। नतीजा यह है कि जब तक मैं अपने मनमें किसीके प्रति प्रयत्नपूर्वक गुस्सा पैदा नहीं कर लेता, तब तक वह (गुस्सा) मेरे मनमें नहीं आता।

मैं जैसे-जैसे केशूका आदर्श अनुयायी बनता गया, वैसे-वैसे अुसकी तानाशाही भी बढ़ती गयी। प्रेम तो स्वभावसे ही हुक्म चलानेवाला होता है। अुसमें फिर 'यथेच्छसि तथा कुरु' वृत्तिवाला मुझ जैसा अनुयायी मिले तो तानाशाहीको दूसरा कौनसा पोषण चाहिये? अिस प्रकार मैं अपने अनुभवसे सीख गया हूँ कि ज़ालिम यदि ज़ालिम बनता है, तो अुसका कारण गुलामकी गुलामी वृत्ति ही है। अेक अगर नरम रहता है तो दूसरा गरम क्यों न बन जाय?

अपने अिस बचपनके अनुभवके कारण मुझे किसी पर हुकूमत चलाना ज़रा भी अच्छा नहीं लगता। दूसरेके विकासके लिअे मैं हमेशा अपने आपको दबाता रहता हूँ। मेरे अिस स्वभावके कारण कअी लोग अपनी मर्यादाको लाँघकर मेरे सिर पर सवार हो जाते हैं। जब तक मुझसे बर्दाश्त होता है, मैं अुनको वैसा करने भी देता हूँ; लेकिन आगे चलकर जब झगड़ा होनेकी नौबत आती है तो सबको ताज्जुब होता है। दुनिया दो ही वृत्तियाँ जानती है:— दूसरों पर सवार होना या दूसरोंको अपने अूपर सवार होने देना। या तो डरकर दूसरेको अपनेसे अूँचा समझना या स्वयं हाकिम बनकर दूसरेको तुच्छतासे नीचा समझना। समान भावसे सबको समान समझने और अपनी मर्यादाका पालन करनेकी कला बहुत ही कम लोगोंमें पाअी

जाती है। जहाँ मिले वहाँ नाजायज़ फायदा अुठाना और जहाँ अपना बस न चले वहाँ नरम बनकर दूसरेके वशमें हो जाना, यही नियम सर्वत्र दिखाअी देता है। Looking up और Looking down यानी भय या आदरसे दब जाना अथवा अधिकारमद या घमंडसे दूसरोंको दबा देना—ये दो ही तरीक़े सर्वत्र दिखाअी देते हैं। Looking level यानी समानताकी वृत्तिसे केवल सहज संबंध रखनेका तरीक़ा बहुत ही कम पाया जाता है।

मेरी सौम्यताके कारण लोग जब मुझ पर हावी होने लगते हैं, तब या तो मुझे अपना बढ़ाया हुआ संबंध धीरे-धीरे कम करना पड़ता है या बिलकुल तोड़ देना पड़ता है। अैसा करनेसे प्रेमकी स्थिरता नहीं रहती और अिसका मुझे बहुत दुःख होता है। खुद होकर किसीके साथ संबंध प्रस्थापित न किया जाय, लेकिन अगर अेक बार संबंध प्रस्थापित हो गया, तो वह सारी जिन्दगी तक बराबर टिकना चाहिये, यह मेरा खास आदर्श है। किसी कारण जब अिस आदर्शका पालन करना असंभव हो जाता है या अुसमें खींचातानी होने लगती है, तो मुझे अत्यंत दुःख होता है, असह्य वेदना होती है। लेकिन मैं दुनियाके स्वभावको कैसे बदल सकता हूँ? अैसी परिस्थिति पैदा होनेमें जिस हद तक मेरा संकोचशील स्वभाव ज़िम्मेवार हो अुस हद तक मुझे अपनेमें सुधार करना चाहिये। मनुष्यको अैसा लगता है कि वह बहुत प्रयत्नशील है, लेकिन स्वभावको बदल डालना सचमुच ही बहुत कठिन है। खैर!

केशूकी अितनी ग़ुलामी करनेके बाद मुझे अुसके खिलाफ़ सविनय विद्रोह करना पड़ा। [अुस समय गांधीजी या अुनके तत्त्वज्ञानकी जानकारी मुझे कहाँसे होती?]

माँकी शिक्षा तो यह थी कि जिस तरह लक्ष्मणने रामचंद्रजीकी सेवा की थी, अुस तरह हमें अपने बड़े भाअियोंकी सेवा करनी चाहिये।

हमसे अुम्रमें जो भी बड़े हों, वे सब हमारे गुरुजन हैं। हमें अुनके वशवर्ती रहना चाहिये। हमें अैसा कुछ भी करना या बोलना नहीं चाहिये, जिससे अुनका अपमान हो। माँका यह अुपदेश मेरे मन पर अच्छी तरह अंकित हो गया था। अतः जब मेरे मनमें विद्रोहका खयाल पैदा हुआ, तो मैं अिसी बातका विचार करने लगा कि सविनय विद्रोह कैसे किया जाय, जिससे केशूका अपमान भी न हो और अुसे यह भी मालूम हो जाय कि अुसकी आज्ञा मुझे मंजूर नहीं है। अतः जब केशू मुझे कोअी हुक्म देता और वह मुझे पसन्द न होता, तो अत्यन्त नम्रतासे मैं अुससे कह देता कि, 'देखो केशू, तुम्हारा कहना मैं हमेशा मानता हूँ, लेकिन यह बात मुझसे नहीं होगी।' केशूकी अवज्ञा हमारे घरमें कोअी भी नहीं करता था, अिसलिअे मेरे लाख समझाने पर भी अुसको तो मेरे जवाबमें अपनी मानहानि ही महसूस होती। अतः वह नाराज़ होकर मुझे पीट देता। कभी-कभी वह मेरे गालमें अैसी चुटकी काटता कि ख़ून ही निकल आता। कभी वह मुझे भूखे रहनेकी सज़ा फ़रमाता। धिक्कारना और तिरस्कार करना तो साधारण बात थी। मैं यह सब सह लेता और दूसरे ही क्षण यदि वह कोअी मामूली काम करनेको कहता, तो अुसे दूने अुत्साहसे कर डालता। केशूका सिर हमेशा दर्द करता था। गुस्सेमें आकर मुझे वह पीटता और अपने बिस्तर पर जाकर लेटता, तो तुरन्त ही मैं अुसका सिर दबाने जाता। केशूका स्वभाव महादेव जैसा शीघ्रकोपी किन्तु आशुतोष था; अुसमें विवेक तो नाममात्रको भी नहीं था। अिसलिअे बार-बार यही नाटक होता रहता।

अन्तमें मेरी सहनशीलताकी विजय हुअी। मुझे अपनी स्वतंत्रता मिल गयी। अिसका दूसरा भी अेक कारण था। बचपनमें घरके सब लोग मुझे बिलकुल बुद्धू समझते थे। वास्तवमें अिसमें मेरा कोअी क़सूर नहीं था। मैं किसीके सामने अपनी बुद्धिमत्ताका प्रदर्शन नहीं करता था और मेरी तरफ ध्यान देनेकी बात भी किसीको नहीं सूझी

थी। लेकिन जब पढ़ाअीमें केशूने मेरी बुद्धिकी चमक देखी, तो वह बहुत कुछ नरम पड़ गया।

केशूने जब देखा कि अंग्रेज़ी कविताओंका अर्थ अुसकी अपेक्षा मेरी ही समझमें अधिक अच्छी तरह आता है, तो वह मुझसे बहुत प्रभावित हुआ। आगे चलकर जब वह कॉलेजमें पढ़ता था तो अुसे लकवेका भयंकर रोग लग गया। फिर तो वह असहाय बालकके समान बन गया। अुसकी जो तीमारदारी मैं करता वही अुसको पसन्द आती। अपने मनकी हर तरहकी अुलझनें वह मेरे सामने खोल देता और मेरी बातोंसे अुसे आश्वासन मिल जाता। बीमार व्यक्ति चिड़चिड़ा तो हो ही जाता है। जिस वक़्त वह घरमें सबसे चिढ़ जाता, तब अुसे शान्त करनेका काम मेरे जिम्मे आता। अुसके सारे जीवनके गुण-दोष और प्रमाद मैं जानता था; फिर भी अथवा अिसी कारण हमारा सम्बन्ध मामूली भाअी-भाअीके सम्बन्धसे भी ज़्यादा गाढ़ा हो गया था। अुसे मैं दिलसे चाहता था। अुसकी सेवा करनेमें मुझे आनन्द आता। लेकिन अुसकी जीवन-पद्धति मुझे कभी पसन्द नहीं आयी। अुसके बहुतेरे मित्र मेरी दृष्टिमें कुछ हलके दर्जेके थे। अुसके सारे मत और अभिप्राय जल्दबाजीमें बने हुअे होते। वह छोटी-छोटी वासनाओंके चंगुलमें आसानीसे फँस जाता। छुटपनसे अुसका लाड़ लड़ाया गया था, अिसलिअे अुसमें आत्मप्रीति विशेष बढ़ गयी थी। अहंप्रेमी मनुष्य अपनेको ही दुनियाका केन्द्रबिन्दु मान लेता है, लेकिन अुसके मान लेने भरसे दुनिया अुसके चारों ओर नहीं घूमती। अिसलिअे अुसके हिस्सेमें हमेशा दुःख ही रहता है। जैसे पृथ्वीको केन्द्र मानकर रचा हुआ ज्योतिषशास्त्र ग़लत होता है, वैसे ही अपने आपको केन्द्र मानकर की हुअी जीवनकी कल्पना और अपेक्षाअें भी ग़लत साबित होती हैं। अिसमें क्या आश्चर्य कि जो ग़लत नक़शेको सामने रखकर चलता है अुसकी क़िस्मतमें क़दम-क़दम पर ठोकरें खाना ही बदा हो?

केशूके विरुद्ध मैंने जितने विनम्र विद्रोह किये, अुसकी सविनय अवज्ञायें कीं, अुनमें से कअी आज भी मुझे याद हैं; लेकिन वे सब तो स्मरण-यात्रामें लिखे नहीं जा सकते।

अिसीलिअे अितने विस्तारसे अुन सारे प्रसंगोंका सार यहाँ दे दिया है। मेरे सब भाअियोंमें मेरा प्रेम केशू पर ही विशेष था। वह हमेशा मेरे हितकी चिन्ता करता, और वह ख़ुश रहे अिसीमें आख़िर तक मेरा सन्तोष था। अतः मैंने यहाँ जो लिखा है वह मनोविज्ञानके अेक महत्त्वपूर्ण अनुभवके तौर पर ही है, न कि केशूको नीचा दिखानेके हेतुसे। अुसका सरल स्वभाव, अुसकी स्वराज्य-प्रीति और महत्त्वाकांक्षाको यदि मौक़ा मिल जाता तो निश्चित ही अुसने अच्छा नाम कमाया होता।

३६

होशियार बननेसे अिनकार

अुस समय में मराठी पढ़ रहा था और केशू अंग्रेज़ी। अेक दिन अुसके मनमें आया कि चलो हम दत्तूको अंग्रेज़ी पढ़ाकर होशियार बना दें। न जाने क्यों, अुस वक़्त मुझे अैसा लगा कि फिलहाल मुझे अंग्रेज़ी नहीं पढ़नी चाहिये। अतः मैंने अुससे डरते-डरते कहा, "मैं अंग्रेज़ी स्कूलमें जाअूंगा तब अंग्रेज़ी पढ़ूँगा; आज क्या जल्दी है?" अुसने मुझे अंग्रेज़ीका महत्त्व समझानेका प्रयत्न किया। मेरे सामने लम्बी-चौड़ी तकरीर की। दुनियामें अंग्रेज़ीकी कितनी अिज्ज़त है आदि सब बातें विस्तारसे समझा दीं। मैंने अिसका कोअी प्रतिवाद नहीं किया। अतः केशूने समझा कि अुसकी बात मेरे गले अुतर गयी है। अुसने भाषांतर-पाठमाला मेरे हाथमें दे दी और मुझे कुछ शब्द रट लेनेको कहा।

रटनेकी पद्धतिमें असको बहुत ही विश्वास था, लेकिन मुझे कविताको छोड़ और कोओी चीज़ रटना बिलकुल पसन्द न था। स्कूलमें तो आज सबक़ देते और कल तक वह तैयार हो जाता तो काफ़ी था। लेकिन केशूको जल्दीसे आम पकाने थे। असने कहा, "ये शब्द अभी मेरे सामने ही रट डाल!" मुझे वह क्योंकर पसन्द आता? जिस तरह कछुवा अपने पैर और सिर अपने अन्दर खींच लेता है, अस तरह मैंने अपना चित्त अन्दर खींच लिया और मनमें कहा, "ले, अब मुझसे जो लेना हो सो ले! मैं भी देखता हूँ कि तेरी कहाँ तक चलती है।" अंग्रेज़ी वर्णमालाके छब्बीस अक्षर तो मुझे आते ही थे; क्योंकि मराठी वर्णमालाकी पुस्तकमें अंग्रेज़ीके अक्षर भी छपे हुअे रहते थे। अतः भाषांतर पाठमालाके पहले ही पाठका पहला शब्द लेकर मैं रटने बैठ गया:

अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें (यानी बैठना)
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट् म्हणजे, बसणें

कुछ समय बीतनेके बाद केशूने पूछा, "सिट् यानी क्या?" मुझे जवाब कहाँसे आता? केशूको ग़ुस्सा आया। कहने लगा, 'यह अेक ही शब्द पच्चीस बार रट डाल!' दाहिने हाथकी अँगुलियाँ पकड़कर मैं गिनता जाता और रटता जाता:

अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें

पच्चीस दफ़ा रट लिया। केशूने फिर पूछा, 'सिट् यानी क्या?' मैं तो पहले जितना ही मासूम था। जवाब क्योंकर देता? मेरी जाँघमें अेक चुटकी काटकर केशूने कहा, "अब सौ बार रट!" सौ बार गिननेके लिअे तो दोनों हाथोंकी अुँगलियोंको अिस्तेमाल

करना चाहिये। अतः मूर्तिकी तरह दोनों हाथ घुटनों पर रखकर मैं गिन-गिनकर रटने लगा:

अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें

सौ बार रट लिया। केशूने पूछा, 'सिट् यानी क्या?' अबकी बार मैं लाचार हो गया। मुंहसे बरबस निकल ही गया, 'बसणें'। तो केशूको कुछ आशा बँधी और अुसने पूछा, 'सिट्का स्पेलिंग (हिज्जे) क्या?' अैसी अुलटी छलाँग क्या बिना ध्यानके मारी जा सकती थी? मैं शून्य दृष्टिसे अुसकी ओर देखता ही रहा। अिस बार केशूने बहुत सब्र किया; पीटनेके बदले अुसने मुझे सोचनेका मौक़ा दिया और कहा, "देख, सिट् शब्दका अुच्चारण किन-किन अक्षरोंको मिलानेसे होता है? सिट् शब्दमें कौन-कौनसे अुच्चारण समाये हुअे हैं?"

मुझे दिमाग़का अुपयोग तो करना ही न था। ओंठ हिलाअूंगा, मुँहसे आवाज़ निकालूंगा, और बहुत हुआ तो अँगुलियाँ चलाअूंगा; बस अितनी ही मेरी तैयारी थी। विचार करनेकी बात तो मैंने अपने अिकरारमें कहाँ शामिल की थी? मैं शून्य दृष्टिसे देखता ही रहा। मेरी अुस दृष्टिमें न था डर, न था अुद्वेग और न थी शर्म। खेदका भी नाम न था। वह तो वेदान्तियोंके परब्रह्म जैसी निराकार, निर्गुण, निश्चल, निर्विकारी शून्य दृष्टि थी। पत्थरकी मूर्तिमें अैसी दृष्टि सहन हो सकती है, लेकिन ज़िन्दा मनुष्यमें क्या वह सहन होती? केशू अेक क्षण तक तो झेंप गया, लेकिन दूसरे ही क्षण अुबल पड़ा। अुसने मेरा सिर पकड़कर नीचे झुकाया और दूसरे हाथसे पीठ पर कितने ही मुक्के लगाये। क्रोधकी भाप क्रियाके द्वारा निकल जानेके बाद अब मुंहसे निकलने लगी: "रडघा, म्हारड्या, (मनहूस, ढेढ़!)

तू क्या पढ़ेगा? तू तो निरा लद्धड़ बैल है।" अिस तरह बहुत कुछ चलता रहा। लेकिन मुझे कहाँ अिसकी परवाह थी? आखिरकार केशूने कहा, "अब तीन सौ बार रट।"

मेरी मशीन फिर चलने लगी:

अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें —

अिस बार मैंने अपने यंत्रमें अेक सुधार किया। मैंने सोचा, कितनी दफ़ा रटा है यह अँगुलियों पर गिना ही क्यों जाय? केशूके धीरजकी अपेक्षा मेरा धीरज अधिक था। अतः जब तक वह न टोके तब तक रटते रहनेका मैंने तै कर लिया।

अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट, म्हणजे बसणें —

अब तो मेरे लिअे पुस्तककी तरफ़ देखना भी ज़रूरी न था। चाहे जिधर देखता, मनमें चाहे जो सोचने लगता, सागरकी लहरोंका गीत सुनाअी दे रहा था अुसे ध्यानपूर्वक सुनता, पाससे बिल्ली गुज़रती तो अुस पर पेन्सिल फेंकता। सिर्फ़ मुँह चलता रहा कि बस, बाकी तो अपने राम बिलकुल स्वतंत्र थे। यह स्थिति तो बड़ी सुविधाजनक थी। आँखोंकी पलकें हिलती हैं, नाकसे साँस चलती है, शरीरमें खून बहता है, वैसे ही मुँह भी चलता रहे तो क्या हर्ज है?

अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें
अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें —

अिस तरह न जाने कितना समय बीत गया। आखिर केशूने फिर कहा, 'बोल!' मैंने तुरन्त ही कह सुनाया, 'अेस् आअि टी, सिट्, म्हणजे बसणें।' मुझे यदि कोअी नींदमें भी बोलनेको कहता तो भी मैं बोल देता, अितना वह पक्का हो गया था। मुट्ठी मोड़नेसे

जैसे हथेलीमें वहीकी वही सिलवटें पड़ती हैं, वैसी ही मेरी ज़बान और ओठोंको आदत पड़ गयी थी। लेकिन बदक़िस्मती केशूकी, कि अुसने मुझे फिर अुलटा सवाल पूछा, 'बैठनेके लिअे कौनसा शब्द है?' जब दिमाग़के सभी खिड़की-दरवाज़े बन्द रखे हों, तो अैसे अटपटे सवालोंका जवाब कहाँसे निकलता? केशू अेकदम निराश हो गया। मैंने ठंडे दिलसे पूछा, 'और रट डालूँ?' मैंने मान लिया था कि अब तो बेहिसाब पिटाअी होगी और सारे शरीरकी चमड़ी ज़हरकी तरह हरी हो जायगी। अुस मारके स्वागतकी मैंने तैयारी भी पूरी की थी — आँखें मूँद लीं, छाती पेटमें दबा ली, सिर कन्धोंके अन्दर घुसेड़ लिया। हाँ, विलम्ब करनेसे क्या लाभ? जो कुछ होना है सो झट हो जाय तो अच्छा ही है!

लेकिन दुनियामें कअी बार कुछ अनपेक्षित घटनाअें हो जाती हैं। चिढ़, निराशा और क्रोधका ज़ोर अितना बढ़ गया कि केशू अन्धा होनेके बदले अेकदम शान्त हो गया। वह बोला, (और अुसकी आवाज़में कतअी जोश या ज़ोर न था) 'अच्छा, तू जा सकता है।' मैं भी अिस तरह शान्तिसे अुठा जैसे कुछ हुआ ही न हो, और झटसे पीठ फेरकर चलता बना।

अुस दिनसे केशूने मेरे सामने अंग्रेज़ीका नाम न लिया। आगे चलकर कअी साल बाद अुसने अेक दिन रातको, जब मैं सो गया था, मेरी मेज़ पर मेरा लिखा हुआ अेक सुन्दर अंग्रेज़ी निबन्ध देखा तो अुसने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ी। दूसरे दिन स्टेशन पर जाकर व्हीलर कम्पनीकी स्टॉलसे स्कॉटकी 'मार्मियन' ख़रीदकर अुसने मुझे भेंट की। आज भी वह पुस्तक मेरे पास है और जब-जब अुस पर नज़र पड़ती है, तब-तब मुझे अपने बचपनके वे दिन याद आ जाते हैं। 'मार्मियन' से कअी अच्छी-अच्छी पंक्तियाँ याद करके मैंने केशूको सुनायी थीं।

३७

देशभक्तिकी झनक

देशभक्तिकी तथा श्री शिवाजी महाराजकी बातें मैंने पहले-पहल पूनामें सुनी थीं। अुस वक्त मैं मराठी दूसरी कक्षामें पढ़ता था। पूनामें हमारे घरके पास ही बाबा देशपांडे नामक अेक पुलिस हवलदार रहते थे। हमारे यहाँ वे अक्सर आया करते थे। अुनकी स्त्री भी हमारी माँ और भाभीसे मिलने आती थी। बहुत भली औरत थी। बाबा हमारे यहाँ आकर केशूको, गोंदूको और मुझे अपने पास बैठाकर अैतिहासिक कहानियाँ सुनाया करते। देशभक्ति मनुष्यका पहला कर्तव्य है, देश पर मर मिटनेको हमें तैयार रहना चाहिये आदि बातें हमें समझाते। यही बाबा देशपांडे आगे चलकर बम्बअी प्रान्तके सी० आअि० डी० विभागके मशहूर अधिकारी बने। महाराष्ट्रके क्रान्तिकारी आन्दोलनकी जड़ें खोज निकालनेमें अिन देशपांडे महाशयका हिस्सा कुछ कम नहीं था। अैसे व्यक्तिके मुँहसे देशभक्तिके शब्द पहले-पहल मेरे कानमें पड़े, यह कितना अजीब था!

पूनासे शाहपुर आनेके बाद हमने जीवनियों तथा अुपन्यासोंमें शिवाजी महाराजका अधिक अितिहास पढ़ा। फिर तो शामको घूमने जाते तब वहाँकी गुम्मटकी टेकरी पर शिवाजी और अफ़ज़लखाँकी लड़ाअी खेलते। गुम्मटकी टेकरी पर पत्थरकी खदानें खोदी गयी थीं। अुनमें से पत्थर लेकर हम अेक-दूसरे पर फेंकते; लेकिन काफ़ी दूरी पर खड़े रहते थे, अिसलिअे किसीको पत्थर लगता न था।

यह तो तबकी बात है जब मैं मराठी चौथी कक्षामें पढ़ता था। हम अंग्रेज़ी पहलीमें गये तब हमारी देशभक्तिने भाषणोंका रूप लिया। घरके बालाखानेमें, जहाँ घरके कोअी अन्य लोग नहीं आते थे,

हम तीन-चार मित्र अिकट्ठे होते और बारी-बारीसे भाषण देते। भाषणोंमें शिवाजी महाराजकी स्तुति और अंग्रेज़ों तथा नये ज़मानेको गालियाँ देना अितनी ही बातें रहती थीं। अंग्रेज़ोंके खिलाफ़ लड़ना चाहिये, अितना तो हमारा निश्चय हो चुका था, लेकिन अुसके लिअे शरीर मज़बूत होना चाहिये। अतः हमने कसरत और कुश्ती शुरू की। हमारे मंडलमें लागू नामका अेक लड़का था। वह अुम्रमें मुझसे छोटा था, फिर भी कुश्तीमें मुझे सदा हराता; अितना ही नहीं बल्कि मुझे पीटता और सताता भी था। हारनेके बाद केशूकी झिड़कियाँ भी सुननी पड़तीं। अतः मैंने कुश्ती लड़ना छोड़ दिया और अुस मंडलको भी छोड़ दिया। हर रोज़का अपमान कौन बर्दाश्त करे?

३८
ख़ूनकी ख़बरें

शाहपुरकी अंग्रेज़ी पाठशालामें मैं पढ़ रहा था। शायद दूसरी कक्षामें था। मेरे पैरमें फोड़ा हुआ था। अिसलिअे हररोज़ लँगड़ाता-लँगड़ाता स्कूल जाता था। रास्तेमें अेक ठठेरा मुझे यों स्कूल जाते देख मुझ पर तरस खाता। कभी-कभी मेरी स्कूल-निष्ठाकी तारीफ़ भी करता। अतः अुस आदमीके प्रति मेरे मनमें कुछ सद्भाव पैदा हो गया था। अगर मुझे बर्तन खरीदने होते तो मैं अुसीकी दूकानसे खरीदता।

अेक दिन अुसकी दूकानके खम्भे पर 'केसरी-जादा पत्रक' शीर्षकसे छपा हुआ अखबारका अेक छोटा-सा टुकड़ा चिपकाया हुआ मैंने देखा। चलते-चलते मैं देख रहा था कि यह क्या है, अितनेमें ठठेरेने मुझे बुलाया और कहा, "देखो बेटा, यह पढ़ो तो सही! कैसा ग़ज़ब है! न जाने अिस देशमें क्या होनेवाला है!"

पढ़ने पर पता चला कि मलका विक्टोरियाकी डायमंड ज्युबिलीके दिन रातके वक़्त पूनामें दो गोरोंका ख़ून हुआ था। डायमंड ज्युबिलीके

सार्वजनिक अुत्सवमें हमारी पाठशालाकी ओरसे हमने अेक-दो पद गाये थे। लेकिन पूनाका गायन तो और ही किस्मका निकला! पूनामें जब पहले-पहल प्लेग (ताअून) शुरू हुआ, तो घबड़ाअी हुअी सरकारने शहरमें फ़ौजी बन्दोबस्त कर दिया था। लोग बहुत परेशान हुअे। अुनको लगा कि प्लेग तो सहन किया जा सकता है, लेकिन यह सरकारी बन्दोबस्त किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। अिसी कारण प्लेग-अधिकारीकी हत्या हुअी थी। लोग कहने लगे, 'हो न हो, यह किसी देशभक्तका काम है।' बादमें तो लोकमान्य तिलक महाराजको सरकारने कारावासकी सज़ा दी। सरदार नातू बंधुओंको राजबन्दियोंकी हैसियतसे बेलगाँवमें लाकर रखा। गाँवके लोग कहते, 'तिलक तो शिवाजीके अवतार हैं। शिवाजीके चार साथी थे: येसाजी कंक, तानाजी मालुसरे और अन्य दो। ये नातू बंधु अुन्हीं साथियोंके अवतार हैं।' दूसरे दो साथियोंके कौनसे नाम हमने निश्चित किये थे सो आज याद नहीं। सरकारकी तरह हमारे बाल-मनमें तो यही बात पक्की हो गयी थी कि तिलक महाराजकी प्रेरणासे ही ये हत्याअें हुअी हैं। लोगोंका दुःख दूर करनेकी ख़ातिर अपनी जान पर खेलनेकी प्रेरणा लोकमान्यके सिवा भला और किससे मिल सकती थी? अिसके लिअे हमारे पास कोअी सबूत नहीं था; पर कल्पना करनेके लिअे सबूतकी ज़रूरत थोड़े ही होती है? देश-हितका जो भी काम होता अुसका संबंध, बिना किसी सबूतके, तिलक महाराजके साथ जोड़ना हम जैसोंको सहज ही अच्छा लगता था।

थोड़े दिनों बाद अण्णा पूनासे आया। अुसने तो कुछ और ही बात बतायी। अुसने कहा, "रैंड साहब अस्पतालमें मरे, अुसके पहले वे होशमें आये थे और अुन्होंने कअी बातें बतलायी थीं। अुन्होंने अपने क़ातिलको देखा था। अुनका ख़ून करनेवाला आदमी कोअी गोरा ही था। किसी मेमके मामलेमें अुन दोनोंके बीच झगड़ा हुआ था और अुसीके कारण यह ख़ून हुआ है। अिस ख़ूनकी तहकीक़ात करनेवाले ब्रुअिन साहबको

यह सब मालूम है, लेकिन अुसने सब मामला 'हशप्' (hush up) कर दिया है — दबा दिया है।"

फिर तो पूनासे रोजाना नयी-नयी ख़बरें आतीं। ख़बरोंके दो प्रवाह थे: — अेक तो अख़बारों द्वारा आनेवाली और दूसरी पूनासे आनेवाले मुसाफिरों द्वारा मिलनेवाली। यह तो साफ़ ही था कि लोग ख़ानगी ख़बरों पर ज़्यादा यक़ीन करते थे। यह बड़े मार्केकी बात थी कि लोग जो बातें करते वे अेक-दूसरेके कानोंमें। लेकिन अुस समय सभी लोग अेक-दूसरेके विश्वासपात्र थे।

फिर ख़बर आयी कि सरकारके गुप्तचर (सी० आअि० डी०) हर शहरमें घूम रहे हैं। फिर क्या था? हर अपरिचित व्यक्तिके बारेमें यह शक होने लगा कि वह सरकारका जासूस है। अिसी बीच लिंगायत लोगोंके दो जंगम साधु शाहपुर आये और दोनों हाथोंमें दो घंटियाँ लेकर अुन्हें बजाते हुअे शहरमें घूमने लगे। लोगोंने सोचा, ये ज़रूर गुप्तचर ही होंगे। किसीने कहा कि अुनकी गेरुअी कफनीके अन्दर जासूसका तमग़ा भी किसीने देखा है। स्कूलके लड़कोंने यह बात सुनी तो अेक दिन गलीमें अुन बेचारे साधुओं पर काफ़ी मार पड़ी।

आगे चलकर सभी अफ़वाहें ख़त्म हो गयीं और चाफेकर भाअियोंके नाम रैंड और आयर्स्टके ख़ूनके साथ जोड़े गये।

अिन दो हत्याओंके कारण कअी भारतीयोंको फाँसी पर लटकाया गया और कअियोंको कड़ी सज़ाअें दी गयीं। ख़ूनियोंको खोज निकालनेमें सरकारकी मदद करनेवाले द्रविड़ नामक भाअियोंको जानसे मार डाला गया। अुनकी हत्या करनेवाले भी पकड़े गये और अुन्हें सज़ाअें हुअीं। अिस षड्यंत्रमें हिस्सा लेनेवाला अेक आदमी अपनी सज़ा काटनेके बाद पुलिसके महकमेमें भरती हो गया। अिस तरह अिस मामलेने बहुत तूल पकड़ा था। अिस अरसेमें सरकारने अख़बारों पर बहुत ही कड़ी पाबन्दियाँ लगायी थीं।

३९

शत्रु-मित्र

मैं अंग्रेज़ी पहलीमें पढ़ता था अुस समय विष्णु नामक मेरा अेक दोस्त था। अथवा यों कहना ज्यादा ठीक होगा कि मैं अुसका दोस्त था। अुस गुमराह लड़केका कोअी मित्र न था। अुसका सारा दिन ख़याली दुनियामें ही बीतता। अुसने मेरे साथ दोस्ती करनेकी कोशिश की। अुसकी ख़याली दुनियाकी बातें मैं शान्तिके साथ सुनता, अिससे मैं अुसका अेक बड़ा सहारा बन गया था। हम दोनोंने मिलकर 'क्लृप्ति विजय' नामका अेक नाटक लिखना तय किया था। क्लृप्ति यानी तरकीब। अेक पटवारीने यमराजको किस तरकीबसे ठगा, अिसकी कहानी सुननेके बाद हमारे मनमें यह नाटक लिखनेकी कल्पना आयी थी। अुन दिनों 'सत्यविजय' नामका अेक नाटक बहुत ही लोकप्रिय हो गया था। विष्णुने वह देखा था और अुस छपे हुअे नाटकका कुछ हिस्सा मैंने पढ़ा था। अपने नाटकको 'क्लृप्ति विजय' नाम देनेकी तरकीब मेरी ही थी। लेकिन प्रवेशों और पात्रोंका निश्चय करनेसे अधिक प्रगति हमारे अुस नाटकने नहीं की।

विष्णु अपने मामाके यहाँ रहता था। पंसारीकी दूकानमें जाकर वह अपने मामाके नाम पर गुलकन्द, बादाम, किशमिश आदि खानेकी चीज़ें अुधार लेता और खा जाता। अुनमें हिस्सा बँटानेके लिअे वह मुझे निमंत्रण देता। पहले दिन मैंने अुसका गुलकन्द खाया, लेकिन बादमें जब पता चला कि वह चोरीसे खाता है तो मैंने अुससे कुछ भी लेनेसे अिनकार कर दिया। अुस वक़्त मैंने प्रामाणिकताका कोअी खास अूंचा आदर्श अपने सामने रख लिया हो सो बात नहीं थी, लेकिन अुसका वह काम मुझे अनुचित लगता था। घरके लोगोंके साथ

विश्वासघात करके चोरी करनेमें न तो अीमानदारी थी और न बहादुरी ही।

विष्णुके बारेमें क्लासमें अेक-दो खराब बातें कही जाती थीं। कोअी कहता कि, 'ये' सच नहीं हो सकतीं; किसीने यों ही गढ़ दी हैं।' और कोअी कहता, 'अिस लड़केके बारेमें यह सच भी हो सकता है। यह क्या नहीं कर सकता?'

अेक दिन, न जाने क्यों, हम दोनों लड़ पड़े। मैंने अुससे दुश्मनी शुरू की। मैंने मनमें निश्चय किया कि अिस नालायक़को बदनाम करना ही चाहिये। वर्गमें शिक्षक न थे। पहले नंबर पर पटवेकर बैठा था। मैंने अुसके पास जाकर कहा, 'विष्णुके बारेमें लड़के जो बातें कहते हैं वे सच हैं।' दूसरे नम्बर पर कौन बैठा था वह तो अिस समय याद नहीं। अुससे भी मैंने वही बात कही। विष्णु तो ग़ुस्सेसे मुझ पर लाल-पीला हो गया था — नहीं, नहीं; अुसका मुँह अेकदम फ़क़ हो गया था। अुसकी पतली चमड़ी पर ख़ून मुश्किलसे दिखाअी देता था। तीसरे नम्बर पर मोने बैठा था। अुससे भी मैंने कहा, 'विष्णुके बारेमें जो बातें कही जाती हैं वे सब सच हैं।'

मोने शरीफ़ लड़का था। अुसे मेरा यह बर्ताव पसन्द नहीं आया। मेरी ओर घृणासे देखकर अुसने कहा, 'सच हों तो भी क्या? हरअेकसे यों कहते फिरनेमें तुम्हें शर्म नहीं आती? मित्र समझकर ही अुसने अपनी खानगी बातें तुमसे कही होंगी न? अब तुम दोनोंमें झगड़ा हो गया अिससे क्या? तुम अपनी कुलीनताको मत भूलो। जाओ, अपनी जगह पर जाकर बैठो।'

ये कठोर शब्द तो मुझे तमाचेसे भी ज़्यादा लगे। अपना प्रचार बन्द करके मैं अपनी जगह पर जा बैठा। मेरे कान गरम हो गये थे। अेक क्षणमें वे ठंडे पड़ते और फिर गरम हो जाते। रक्तके प्रवाहके साथ विचारोंका प्रवाह भी ख़ूब ज़ोरसे चल रहा था। मोने पर मुझे ज़रा भी ग़ुस्सा न आया। अुसने तो मुझे जीवनका

अेक क़ीमती सबक़ सिखाया था। मनुष्य चाहे जितना क्रुद्ध हुआ हो, फिर भी अुसे अितना तो भान रहता ही है कि अुसका अपना काम हीन है। विष्णु मेरे पास ही बैठा था; लेकिन दुश्मनके साथ कैसे बोला जा सकता था? मैंने काग़ज़के टुकड़े पर अेक वाक्य लिखा 'मेरी ग़लती हुअी', और वह अुसकी गोदमें फेंका। अितनेसे वह खुश हो गया और हम फिर मित्र बन गये।

अुस लड़केके साथ लगभग चार महीने तक मेरी दोस्ती रही होगी। फिर तो मैं पिताजीके साथ सावंतवाड़ी चला गया। यह लड़का खराब है, अितना तो मैं पहलेसे जानता था। अुसे मेरा सहारा चाहिये, यह देखकर ही मैंने अुसे अपने साथ दोस्ती करनेका मौक़ा दिया था। फिर भी अुसकी छूत मुझे किसी तरह न लगी। अुसके मुँहसे मैंने गंदी-से-गंदी बातें सुनी थीं। लेकिन चूँकि मैं अुसको अच्छी तरह जानता था, अिसलिअे अुस वक्त मुझ पर अुनका कुछ भी असर नहीं हुआ। मगर यदि मैं कह सकता कि आगे चलकर अुन बातोंके स्मरणसे मेरी कल्पनाशक्ति ज़रा भी गन्दी नहीं हुअी, तो कितना अच्छा होता!

दोस्त बननेकी कोशिशमें अुसने दुश्मनका काम किया। अुसने मेरे दिमाग़में जो गन्दगी भर दी अुसे धो डालनेके लिअे मुझे बरसों तक मेहनत करनी पड़ी। सुनी हुअी बातें अेक कानसे घुसकर दूसरेसे नहीं निकल जातीं। हमेशा प्यासा रहनेवाला दिमाग़का अिस्पंज सभी बातोंको सोख लेता है। शिलालेख मिट सकते हैं, लेकिन स्मरण-लेख नहीं मिट सकते।

कबीरने अेक जगह कहा है, 'मन गया तो जाने दो, मत जाने दो शरीर।' यानी जब तक हाथसे तीर नहीं छूटा है, तब तक वह क्या नुक़सान कर सकता है? अिस सिद्धान्त पर भरोसा करके मैंने जीवनमें अपना बहुत नुक़सान कर लिया है। बहुतोंका यही अनुभव होगा। वास्तवमें जिसको सँभालना चाहिये वह तो मन ही है।

४०

अंग्रेज़ी वाचन

अेक दिन मेरे मनमें आया कि चाँदनीमें मनुष्यको पढ़ना आना ही चाहिये। अितनी मज़ेदार चाँदनी छिटकी होती है, अुसमें पढ़ा क्यों नहीं जा सकता? अतः अेक कुर्सी लेकर मैं आँगनमें बैठा और अपनी लाँगमैनकी दूसरी रीडर पढ़ने लगा। अंग्रेज़ी दूसरी कक्षामें गये मुझे अभी बहुत दिन नहीं हुअे थे। मेरे दो-तीन पाठ ही हुअे थे। माँने पूछा, 'बेटा, दीयेके बिना रातमें क्या पढ़ रहा है?' मैंने जवाब दिया, 'अपनी अंग्रेज़ी पुस्तक।'

बँगलेके मुसलमान माली नन्हूकी स्त्री माँके पास कुछ माँगने आयी थी। अुसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि अितना छोटा लड़का और अंग्रेज़ी पढ़ता है! वह दौड़ती हुअी गयी और आसपासके कुछ लोगोंको वह अद्भुत दृश्य देखनेके लिअे बुला लायी।

यह बात तबकी है, जब हम सावनूरमें थे। सावनूर हुबलीकी ओर अेक छोटा-सा देशी राज्य था। अुसका राजा मुसलमान था। यावलगी स्टेशनसे सावनूर जाते हैं। वहाँकी भाषा कन्नड़ है। पिताजी काफ़ी कन्नड़ जानते थे। माँ भी थोड़ा-बहुत समझ सकती थी। लेकिन मेरे लिअे तो वह जानवरोंकी भाषासे ज़रा भी भिन्न न थी। घरमें नौकर मुसलमान थे, अतः मेरा काम अच्छी तरह चल जाता था। लेकिन बरतन कपड़े सब मुसलमानके हाथों धुले हुअे होनेसे माँको वे फिरसे धो लेने पड़ते। अिस काममें मैं माँकी काफ़ी मदद करता। यहाँकी मुसलमानी भाषा हिन्दी, मराठी और कन्नड़ शब्दोंका विकृत मिश्रण होता है। अुर्दू शब्द अुसमें सिर्फ़ बीस प्रतिशत होंगे और अुनका अुच्चारण सुनकर तो अुन पर तरस ही आता है। आखिर हमें अेक लिंगायत नौकर मिला, जो हिन्दी

बोल सकता था। वह अपने देहाती ढंगसे सुबह-शाम ख़ूब गाता। अुसके मुँहसे सुने हुअे पदोंकी कुछ पंक्तियाँ अभी भी मुझे याद हैं।

दत्तू आप्पा अंग्रेज़ी पढ़ते हैं, यह देखनेके लिअे कअी लोग जमा हो गये। लेकिन चाँदनीमें अक्षर साफ़ दिखाअी नहीं दे रहे थे। पहला पाठ तो कंठस्थ था, अिसलिअे मैं वह धड़ल्लेके साथ पढ़ गया। श्रोताओंके आश्चर्यकी सीमा न रही। दूसरे पाठमें हमारी गाड़ी कुछ धीमी पड़ी। आँखों पर ज़ोर पड़नेसे (जी हाँ, घबड़ाहटसे नहीं!) अुनमें पानी आने लगा। माँने कहा, "भला, चाँदनीकी रोशनीमें भी कहीं पढ़ा जाता है? रख दे वह किताब और चल खाना खाने।"

सभा विसर्जित हुअी और मुझे लगा कि चलो, छूट गये। अिसके बाद जब तक हम सावनूरमें रहे, मैंने दिनमें या रातको फिर कभी हाथमें पुस्तक नहीं ली।

४१

हिम्मतकी दीक्षा

सावनूरकी ही बात है। हमारे घरके आसपास अिमलीके बहुत-से पेड़ थे। अिमली अच्छी तरह पक चुकी थी। मुझे अिमलीका शर्बत बहुत भाता था; अिसलिअे माँने मुझसे कहा, "दत्तू, पिछवाड़े जो अिमलीका पेड़ है अुस पर बड़ी अच्छी अिमलियाँ पकी हैं; चल, तुझे बतलाअूं। अूपर चढ़कर थोड़ी नीचे गिरा दे, तो गरमीके समय अुनका अच्छा शर्बत बन सकेगा।"

मैं पेड़ पर चढ़ा। कुछ अिमलियाँ नीचे गिरायीं। लेकिन अच्छी पकी हुअी और मोटी-मोटी अिमलियाँ तो टहनियोंके सिरों पर ही होती हैं। मैंने हाथ बढ़ाये, ख़ूब हिम्मत की, लेकिन अिमलियों तक मेरा हाथ न पहुँच पाया। माँको मुझ पर ग़ुस्सा आया। वह बोली, 'निरा डरपोक लड़का है! देखो तो, अिसके हाथ-पाँव

कैसे काँप रहे हैं! क्या यह सहिजनका पेड़ है जो टूट जायगा? अिमलीकी टहनी पतली हो तो भी टूटती नहीं है। अब अिसे क्या कहूँ? निडर होकर आगे बढ़, नहीं तो खाली हाथ नीचे आ जा! अरी दैया, अितना भी अिस लड़केसे नहीं होता!" मेरी आँखोंमें अँधेरा छाने लगा — डरसे नहीं, बल्कि शर्मसे।

कुछ लड़के जब शरारत करके अपनी जान खतरेमें डालते हैं, तब माँ-बाप (और खासकर माँ) डरकर अुन्हें रोकना चाहते हैं, शरीरकी हिफ़ाज़त करनेकी ताकीद करते हैं और बच्चोंकी लापरवाहीसे नाराज़ हो अुठते हैं — यह सनातन नियम है। लेकिन जवानोंको तो यही शोभा देता है। अिसके बदले मेरा डरपोकपन मेरी माँको असह्य हो गया और अुसने मुझे बहुत झिड़का। मुझे लगा कि अिससे तो मैं यहीं मर जाअूँ तो अच्छा।

फिर तो मैं किस तरह आगे बढ़ा और अेक टहनीके बिलकुल सिरे पर पहुँचकर वहाँकी अिमलियाँ कैसे तोड़ लाया, अिसका मुझे कुछ भी ध्यान न रहा। यदि मैं कहूँ कि अुस दिनसे मैंने अिस तरहका डर छोड़ ही दिया तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आज जब मुझसे लड़के पूछते हैं कि "अितना स्वार्थ-त्याग कैसे किया जा सकता है? हमारी 'करियर' खराब हो जायगी, अुसका क्या?" तब मैं अुनसे कहता हूँ, "तुम जैसे जवानोंको बहुत आगे बढ़नेसे हम बूढ़े लोग लगाम खींचकर रोकें, सब्र करनेको कहें, तो वह बात शोभा दे सकती है। लेकिन तुमको आगे बढ़ानेके लिअे हम अपने हाथोंमें चाबुक लें, तो वह तुमको शोभा नहीं देता।"

जब-जब मैं अिस वाक्यका अुच्चारण करता हूँ, तब-तब सावनूरका वह अिमलीका पेड़ और अुसके नीचे खड़ी हुअी मेरी माँकी मूर्ति मेरी आँखोंके सामने खड़ी हो जाती है।

४२

पनवाड़ी

सावनूरमें हम लगभग डेढ़ महीना रहे होंगे। अेक दिन सवेरे मुझे जल्दी जगाकर पिताजी अपने साथ घूमने ले गये। कहाँ जाना है, अिसका मुझे कोअी पता न था। दो-चार और आदमी साथमें थे। हम खूब चले। अन्तमें आम रास्ता खत्म हुआ तो हम खेतोंमें से चलने लगे और देखते-देखते अेक सुन्दर बगीचेमें पहुँच गये। जहाँ देखता, वहाँ नीबूके पेड़ दिखाअी देते। सब पेड़ोंके पत्ते आम तौर पर हरे होते हैं, लेकिन नीबूके पत्तोंके रंगकी खूबी कुछ और ही होती है। सोनेके पास सिर्फ़ रंग ही होता है, जब कि नीबूके अिन चमकीले पत्तोंके पास रंगके साथ खुशबू भी होती है। फिर नीबू भी कितने बड़े बड़े! अुससे पहले तो मैंने केवल गोल नीबू ही देखे थे, लेकिन यहाँके नीबू लम्ब-गोल थे। मैंने पिताजीसे कहा, "देखिये, वह नीबू कितना बड़ा और सुनहला हरा है!" मेरे मुँहसे यह वाक्य निकला ही था कि तुरन्त वह नीबू मेरे हाथमें आ पड़ा। शिष्टाचारकी ख़ातिर मैंने मालीसे कहा, "तुम लोगोंकी मेहनतका फल मैं मुफ्तमें क्यों ले लूँ?" तो हमारे साथके क्लर्कने कहा, "यह बाड़ी सरकारी है। अिसे देखनेके लिअे ही आप लोगोंको विशेष निमंत्रण देकर यहाँ बुलाया गया है।" फिर तो क्या? मेरी नीयत बिगड़ गयी। कोअी अच्छा फल दिखाअी देता तो मैं झट अुसे तोड़ लेता या अुसमें मुँह लगाता।

पास ही अेक खेतमें लौकीकी बेली थी। बेलीका मण्डप काफ़ी अूँचा था और अुसमें तीन लौकियाँ अूपरसे ज़मीन तक लटक रही थीं। अुतनी बड़ी और लम्बी लौकियाँ अुससे पहले मैंने कभी नहीं देखी थीं और अुसके बाद भी देखनेको नहीं मिलीं। मैंने कहा, "अिनमें से

अेक हमारे घर भेज दो, मेरी माँको यह बतलाना है।" माली बड़ा चुलबुला था। वह बोला, "सरकार, अपने हाथसे ही तोड़ लीजिये न!" और अुसने मेरे हाथमें हँसिया दे दिया। मैं अपने पैरोंकी अँगुलियों पर खड़ा हुआ। बायें हाथसे लौकीका सहारा लिया; लेकिन हँसिया डंठल तक थोड़े ही पहुँचनेवाला था! यह देखकर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

हम कुछ आगे बढ़े। वहाँ नारियलके पेड़ थे। अुन पर से कुछ डाब (कच्चे नारियल) तुड़वाकर हमने अुनका पानी पीया और अन्दरसे पतला मक्खन जैसा खोपरा (गरी) निकालकर भी खाया। कहते हैं कि नारियलका केवल पानी ही नहीं पीना चाहिये, अुसके साथ कुछ गरी भी अवश्य खानी चाहिये। लेकिन वह गरी अितनी मीठी थी कि अुसके खानेके लिअे किसी नियम या आग्रहकी ज़रूरत ही नहीं थी।

हम अेक घंटेसे भी ज़्यादा देर तक घूमे होंगे। चारों तरफ सुंदर हरियाली फैली हुअी थी। जैसे-जैसे धूप बढ़ती गयी, वहाँकी छायाकी मीठी ठंडक ज़्यादा आनंद देने लगी। मैं मज़ेसे घूम रहा था कि अितनेमें बहुत दूर तक फैली हुअी मंडप जैसी अेक झोंपड़ी दिखाअी दी। मैंने पूछा, "अैसी विचित्र और ठिंगनी झोंपड़ी क्यों बनायी है? आदमियोंकी बात तो दूर रही, अिसमें तो ढोर भी आरामसे खड़े नहीं रह सकेंगे।" पिताजीने कहा, "पगले, यह कोअी झोंपड़ी नहीं है, अिसे नागरबेलीका मंडप कहते हैं। अन्दर जाकर देख तो तुझे खानेके कोमल पान दिखाअी देंगे। ये पान धूप नहीं सह सकते, अिसलिअे अैसा मंडप बनाना पड़ता है।"

मैं अन्दर जानेके लिअे अधीर हो अुठा; लेकिन अन्दर जानेका दरवाज़ा दिखाअी नहीं दे रहा था। बहुत दूर जाने पर आख़िर दरवाज़ा मिल गया। बछड़ेकी तरह मैं अन्दर घुसा। ओहो! कैसा मज़ेदार दृश्य था! दूर तक फैली हुअी लम्बे बाँसोंके खंभोंकी कतारें किसी

बड़े मंदिरके खंभोंकी तरह अैसी लग रही थीं, मानो अन्तमें जाकर वे अेक-दूसरीसे मिलना चाहती हैं। फिर जैसे बालक पितासे लिपटता है, वैसे ही हर खंभेसे अेक नागरबेली लिपटी हुअी थी। अुसके हलके हरे, कोमल, नुकीले पत्ते बड़े भले मालूम होते थे। अितना मनोहर दृश्य कभी कल्पनामें भी नहीं आया था।

अुन खंभोंकी कतारोंके बीच मैं ख़ूब दौड़ा। मुझे लगा, यह तो परियोंकी रानीका महल है। कोअी पत्ता तोड़ लेता तो 'कट्' जैसी नाज़ुक आवाज़ होती। पिताजीने मुझे बुलाया न होता तो मैं अपने आप शायद बाहर न निकलता। साथके लोग कहने लगे, "अितनेसे ही क्या पेट भर गया, अप्पासाहब? आगे तो अिससे भी ज़्यादा मज़ा देखनेको मिलेगा।" मैंने मनमें कहा, "अिससे सुन्दर और कुछ हो ही नहीं सकता। मुझे बाहर निकालनेके लिअे ये लोग यों ही कह रहे हैं।"

लेकिन मेरी धारणा ग़लत निकली। आगे अेक तरफ पपीतेके पेड़ थे और दूसरी तरफ सुपारीके। हर पेड़के चारों ओर अेक अेक नागर-बेली लिपटी हुअी थी। सुपारीके पेड़ बहुत ही पास-पास लगाये जायँ तो भी कोअी नुक़सान नहीं होता; बल्कि पास-पास होनेसे अुनकी छाया गलीचे जैसी गहरी पड़ती है। यहाँकी नागरबेली अुस मंडपकी नागरबेली जितनी कोमल नहीं थी और अिसके पत्ते भी कुछ मोटे, चौड़े और कालापन लिये हुअे थे। किसीने मुझे बताया कि, "अिस नागरबेलीको 'शिरसी पान' कहते हैं। ये पान बहुत तीखे होते हैं। जो लोग तंबाकू खाते हैं, वे यही पान पसन्द करते हैं।" अुन पेड़ोंके बीच दौड़ना आसान नहीं था, क्योंकि पेड़ोंके बीचसे मोटका पानी बह रहा था।

मुझे शक हुआ कि अिन पेड़ों पर जब सुपारी पकती होगी, तो अुसे अुतारा कैसे जाता होगा? मालीने कहा, "अभी आपको बतलाता हूँ।" लेकिन अब कुतूहलकी जगह मनमें डर पैदा हुआ कि मेरी जिज्ञासाको तृप्त करनेके लिअे यह माली अपने पैरोंसे बेचारी नागर-

बेलीको कुचलकर अूपर चढ़ेगा। मगर वैसा कुछ नहीं हुआ। बगीचेके अेक सिरे पर विधुर जैसा अेक सुपारीका पेड़ खड़ा था। (अुसमें नागर-बेली लिपटी हुअी नहीं थी।) अुस पर वह माली चढ़ गया। अूपर पहुँचकर वह अुस पेड़को बन्दरकी तरह हिलाने लगा। थोड़ी ही देरमें सुपारीका वह सीधा और पतला पेड़ बड़े-बड़े झोंके खाने लगा। मालीने झटसे छलाँग मारकर पासका दूसरा पेड़ पकड़ लिया और अुससे लिपटकर पहले पेड़को पाँवोंकी पकड़से छोड़ दिया। पहला पेड़ छुटकारा पाकर पीछे लौट आया। अब मैं समझ गया कि यह नर-वानर अिसी तरह अेक पेड़से दूसरे पेड़ पर जाते हुअे ठाकुरोंके हुक्केकी तरह सारे बाग़का चक्कर पूरा करेगा। मालीने लटकते-लटकते अेक कतार पूरी की और दूसरी तरफके नंगे पेड़ परसे नीचे अुतर आया।

४३

हकीम साहब

सरकारी बाग़ देखकर घर लौटते-लौटते बहुत धूप हो गयी। जैसे-तैसे नहाकर खाना खाया। दोपहरके वक़्त बहुत गर्मी हो रही थी, अिसलिअे घर लाये हुअे डाबों पर फिर हाथ साफ़ किया और सारा दिन नागरबेलीकी ही बातें कीं। दूसरे दिन मुझे सख़्त बुखार चढ़ा। न मालूम, सावनूरमें कोअी अच्छा डॉक्टर था भी या नहीं, लेकिन रियासतके दीवानसाहबने मेरे लिअे अेक मशहूर हकीमको भेज दिया। अुन हकीम साहबकी मूर्ति आज भी मेरी आँखोंके सामने मौजूद है। अुनके क़द्दावर शरीर पर अुनका वह लम्बा अँगरखा और फरफर लहरानेवाली डाढ़ी बहुत ही फबती थी। अुनके चेहरे पर अेक क़िस्मकी प्रतिष्ठित प्रसन्नता हमेशा छायी रहती थी।

वे हमारे यहाँ आये तो सीधे मेरे बिस्तर पर ही आकर बैठ गये। अुन्होंने मेरी नाड़ी देखी, कुछ ज़रूरी बातें पूछ लीं और फिर

अिधर अुधरकी गप्पें शुरू कीं। जनाबकी ज़बानमें अितनी मिठास थी कि वे घंटा भर बैठ रहे तो भी न अुन्हें समयका पता चला और न हमें ही। फिर अुन्होंने दवाअी देनेका विचार किया। अँगरखेकी लटकती हुअी थैली जैसी लम्बी जेबमें से अेक शीशी निकाली। अुस अेक ही शीशीमें अनेक तरहकी गोलियाँ थीं। हकीम साहबने शीशीकी सारी गोलियाँ बायें हाथकी हथेली पर अुड़ेल लीं और अेक अेक गोली दाहिने हाथकी अँगुलियोंमें लेकर सोचने लगे। दो अँगुलियोंमें गोलीको घुमाते जाते और सोचते जाते। अन्तमें कुछ निर्णय करके अुन्होंने अेक गोली मेरे हाथमें दी। लेकिन मैं अुसे मुँहमें डालता अुससे पहले ही अुन्होंने अपना विचार बदल दिया और कहने लगे, "ठहरो, आज यह नहीं चाहिये। कलसे यह दूँगा। आज दूसरी देता हूँ।"

फिर अुनकी अँगुलियोंमें अलग अलग गोलियाँ फिरने लगीं। आख़िर अेक गोली निश्चित हुअी और अुसे मैं निगल गया। विलायती दवाओंकी अपेक्षा हमारा देशी वैद्यक अच्छा है। अिसमें पथ्यसे अवश्य रहना पड़ता है, लेकिन देशी दवाअियाँ स्वादिष्ट और रुचिकर होती हैं।

दूसरे दिन अुसी वक़्त हकीम साहब फिर आये। मैं तो बिस्तरमें लेटे लेटे अुनकी राह ही देख रहा था। अपने स्वभावके मुताबिक वे हर रोज़ अंदर आते ही, 'क्यों छोटे महाराज!' कहकर मेरी तबीयतका हाल पूछते, पथ्यकी सूचनाअें दे देते और फिर बातोंमें लग जाते। पिताजीको संभाषणकी अपेक्षा श्रवणभक्ति विशेष प्रिय थी। हकीम साहबकी हिन्दुस्तानी भाषा बिलकुल ही आसान थी। अुसमें कन्नड़की अपेक्षा मराठीके शब्द ही ज़्यादा रहते। अतः अुनकी बातोंमें मुझे बहुत मज़ा आता। किसी दिन किसी मशहूर डाकूकी बातें करते, तो कभी देश-देशान्तरका अपना अनुभव बयान करते।

अेक दिन मैंने अुन्हें सरकारी बग़ीचेमें देखी हुअी लौकीकी बात बतायी। हकीम साहब तुरन्त ही बोल अुठे, "अरे, अुसमें तुमने कौन-सी

बड़ी चीज़ देख ली ? मैंने अेक जगह देखा था कि मालीने लौकीकी बेलीको मंडप पर चढ़ानेके बदले ज़मीन पर ही फैलाया है। अुसकी अेक लौकी जैसे बढ़ने लगी वैसे ही अुसने अुसके आगे ज़मीन पर अेक कील गाड़ दी। लौकी कुछ टेढ़ी होकर बायीं ओर बढ़ने लगी। अुस दिशामें अुसे कुछ बढ़ने देनेके बाद अुसने फिर वहाँ अेक कील ठोंकी; अिससे वह फिर दाहिनी ओर मुड़ी। अिस तरह मालीने कअी बार कीलें गाड़कर अुस लौकीको साँपकी चालकी तरह चक्करदार शक्ल दी। अुस समय अुस दस हाथ लम्बी लौकीको देखनेका मज़ा कुछ और ही था।"

अकबर और बीरबलके किस्सोंका तो हकीम साहबके पास बड़ा भारी खज़ाना ही था। बीरबलने अेक बेलीसे लटकते हुअे छोटे-से कद्दूके नीचे अेक छोटे-से मुँहवाला बड़ा मटका लटकाया और कद्दूको मटकेके अन्दर बढ़ने दिया। जब मटका कद्दूसे बिलकुल भर गया तो अूपरसे डंठल काटकर अुसने वह कद्दू बादशाहके पास भेंटके तौर पर भेज दिया और यह कहला भेजा कि, "आप अपने बुद्धिमान दरबारियोंसे पूछिये कि यह कद्दू अिस मटकेमें कैसे भर दिया गया होगा और मटकेको वगैर फोड़े अन्दरका कद्दू कैसे बाहर निकाला जा सकता है?" अैसी अैसी कअी कहानियाँ मैंने हकीम साहबसे सुनीं।

यह कहना मुश्किल है कि मैं हकीम साहबकी दवासे चंगा हुआ या अुनकी बातोंसे। अितना सही है कि अुनके किस्सों-कहानियोंके कारण जल्दी चंगे होनेकी मुझे परवाह नहीं रही। बल्कि यह डर लगा रहता था कि चंगा हो जाअूँगा तो हकीम साहबका आना बन्द हो जायगा और फिर अिन दिलचस्प कहानियोंका अकाल पड़ जायगा।

हकीम साहब अपनी विद्यामें बहुत प्रवीण थे। मेरी माँ हमारे सगे-संबन्धियोंमें से कअियोंकी बीमारियोंका वर्णन करके हकीम साहबसे अुनकी दवा पूछती। गैरहाज़िर रोगियोंके सामान्य वर्णनसे भी हकीम साहब अंदाजसे छोटी-मोटी बातें बता सकते थे। अेक बार अुन्होंने पूछा,

"क्या वह साहब ठिगने और फुसफुसे हैं?" माँने कहा, "जी हाँ।" हकीम साहबने फिर पूछा, "क्या अुन्हें पहले कभी फलाँ बीमारी हुअी थी?" माँने कहा, "जी हाँ, यह भी सही है।" अुनका यह अद्‌भुत सामर्थ्य देखकर हम दंग रह जाते।

हकीम साहब सिर्फ़ नाड़ी-परीक्षामें ही प्रवीण नहीं थे, बल्कि मनुष्य-स्वभावकी भी अच्छी परख अुन्हें थी। जब मैं अकेला होता तो वे अेक ढंगकी बातें करते; पिताजी पास होते तब दूसरा ही रंग जमाते; और फुरसत पाकर जब माँ सुननेको आ बैठती तब तो दूसरी बातें छोड़कर माँसे मेरे बचपनकी बातें ही पूछते रहते। कहाँ तो अैसे हमारे जीवनस्पर्शी वैद्य-हकीम और कहाँ आजके पेशेवर डॉक्टर! ये डॉक्टर पहले तो विज़िटिंग फ़ीस लिये बगैर कहीं जायेंगे नहीं, और अपने धंधेके अलावा दूसरी कोअी बात मुँहसे निकालेंगे नहीं। लेकिन अिसमें अुनका भी क्या दोष है? अेक-अेक डॉक्टरके पीछे हर रोज़ सैकड़ों बीमारोंकी फौज लग जाय तब बेचारे डॉक्टर क्या करें? पुराने ज़मानेमें लोगोंको बार-बार बीमार पड़नेकी आदत नहीं थी और बीमार पड़ें तो झट अच्छे होनेकी जल्दी भी नहीं होती थी।

आख़िर मैं चंगा हो गया। मेरा बुखार चला गया। बादमें हकीम साहब मेरे लिअे रोज़ाना अेक किस्मका मुरब्बा केलेके पत्तेमें बाँधकर ले आते। हर रोज़की खूराक रोज़ाना लाते और पास बैठकर बड़े प्यारसे खिलाते। पहले दिन तो मेरे मनमें शक हुआ कि मुसलमानके हाथका मुरब्बा कैसे खाया जाय? मैंने आहिस्तासे माँसे पूछा तो माँने कहा, "दवाओंकी चर्चा नहीं करनी चाहिये।" पिताजीने भी कहा,

'औषधं जाह्नवीतोयं
वैद्यो नारायणो हरिः।'

दवाको गंगाजलके समान पवित्र मानना चाहिये और वैद्यका वचन तो मानो स्वयं भगवानकी वाणी है। बादमें कअी लोगोंके मुँहसे

मैंने अिसी श्लोकका अिससे अुलटा अर्थ सुना कि "बीमार पड़ें तब और कोअी दवा लेनेकी ज़रूरत नहीं है; गंगाजल ही हमारी सच्ची दवा है और सबको स्वास्थ्य प्रदान करनेवाला वैद्य परमेश्वर तो हमारे हृदयमें ही रहता है।"

हकीम साहब कहने लगे, "ओहो, छोटे महाराज, आपको धर्मकी बातने रोक दिया? अिसमें कोअी गोश्त-वोश्त नहीं है। कअी हिन्दू घरोंमें मेरा आना-जाना है। आप लोगोंके रस्मोरिवाजोंसे मैं अच्छी तरह वाकिफ़ हूँ। हमारी यूनानी चिकित्सामें हर तरहकी दवाअियाँ हैं। लेकिन आपके हिन्दू आयुर्वेदमें भी कहाँ मांसका प्रयोग नहीं करते?"

बस, फिर तो अेक लम्बा क़िस्सा शुरू हो गया। वे कहने लगे, "अेक बार मैं मुसाफिरी कर रहा था। चलते-चलते रास्तेमें अेक गाँव आया। वहाँ मैंने देखा कि अेक जगह बहुतसे लोग जमा हो गये हैं और हू-हा चल रही है। पास जाकर देखा तो बहुतसे लोग अेक आदमीको खूब पीट रहे थे। पूछने पर लोगोंने बताया कि, 'अिसे भूत लगा है और हम अिसका भूत अुतार रहे हैं।' मैं तुरन्त समझ गया कि भूत-वूत कुछ नहीं, अुस आदमीको अेक ख़ास रोग हो गया है। तमाशबीन लोगोंको दूर हटाकर मैं आगे बढ़ा और बोला, 'अरे बेवक़ूफ़ो, तुम भूत नहीं निकाल रहे हो, बल्कि अिस ग़रीबकी जान ले रहे हो। अिसे तो बड़ा खतरनाक रोग हो गया है। अिसी क्षण यदि ख़रगोशका ख़ून मिल जाय तो यह आदमी ठीक हो सकता है, वरना यह शाम तक मर जायगा। तुमने अिसे पीट पीटकर अधमरा तो कर ही डाला है।' लोग कहने लगे, 'यहाँ ख़रगोशका ख़ून कहाँसे मिले?' मैंने कहा, 'तब तो अिस आदमीके बचनेकी कोअी अुम्मीद नहीं।' और मैं वहाँसे चल दिया। लेकिन ख़ुदाका करिश्मा देखो कि अचानक सामनेसे अेक पारधी आया। अुसके हाथमें मैंने ताज़ा मारा हुआ ख़रगोश देखा। मैंने ख़ुश होकर कहा, 'मिहर ख़ुदाकी!

अब तुम्हारा आदमी बच गया समझो।' मैंने तुरन्त अपने बक्ससे दवा निकाली और ख़रगोशके ख़ूनमें तैयार करके अुस आदमीको पिलायी। फिर तो वह आदमी अच्छा हो गया।"

ख़रगोशके ख़ूनकी बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। लेकिन माँने कहा, "अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं। अपने गाँवमें भी अेक आदमीके पास ख़रगोश और कबूतरके ख़ूनमें डुबाकर सुखाये हुअे रूमाल हैं।"

चिकित्सामें कौन-सी चीज़ काममें आती है और कौन-सी नहीं, यह कहना मुश्किल है। कअी रोगोंमें खटमलको दूधमें घोलकर पिलाया जाता है, तो अेक रोगमें बिल्लीकी विष्ठा भी दी जाती है। अिसीलिअे तो हमारे पूर्वजोंने कह रखा है:

'अमंत्रम् अक्षरम् नास्ति।
नास्ति मूलम् अनौषधम्॥'

फिर तो भाँति-भाँतिकी वनस्पतियोंके गुणधर्मके बारेमें चर्चा चली। वनस्पतिकी चर्चामें नीमका ज़िक्र आये बिना भला कैसे रह सकता है? माँने कहा, "नीमके पत्ते पीसकर, अुनमें पानीकी अेक बूंद भी डाले बिना, यदि अुनका रस निकाला जाय तो अैसे तोलाभर रससे मरा हुआ आदमी भी जिन्दा हो सकता है।" अिस पर पिताजी हँसकर बोले, "पानी डाले बग़ैर नीमके पत्तोंमें से अेक बूंद भी रस नहीं निकल सकता; अिसीसे शायद किसीने यह माहात्म्य गढ़ डाला है।" हकीम साहब कहने लगे, "जो हो, लेकिन यदि आपको कोअी पुराना नीमका वृक्ष दिखाअी दे, तो आप अुसके आसपास घूमकर देखिये। कभी कभी अुसका तना अपने आप फटता है और अुसमें से गोंदके जैसा रस निकलता है। अैसा रस अगर मिल जाय तो आप तुरन्त अुसे खा लें। अुस ताज़े गोंदमें अद्‌भुत शक्ति होती है। अुससे अनेक रोग ठीक हो जाते हैं। कअी लोगोंके पैर

हमेशा फटते हैं। वे लोग अगर अुस रसको चाटें तो अुनकी वह शिकायत दूर हो जायगी। नीमके पेड़ पर अगर मधुमक्खियाँ अपना छत्ता बनायें, तो अुस छत्तेका शहद भी विशेष गुणकारी होता है।"

कुछ ही दिनों बाद हमारे बँगलेके सामने अेक नीमके दरख़्त पर मुझे अेक छोटा-सा मधुमक्खियोंका छत्ता दिखाअी दिया। पासके कुअें पर क़ैदी आकर मोटसे पानी खींच रहे थे। अुनसे कहकर मैंने वह छत्ता अुतरवाया और वह शहद अेक सुन्दर पतली शीशीमें भरकर रखा। थोड़े दिनोंमें अुस शहदमें अुम्दा दानेदार शक्कर बनने लगी। अुसका रंग पीलापन लिये हुअे सफ़ेद था। अितने बढ़िया शहदकी शक्कर अेक साथ खा जानेका मेरा मन न हुआ। अतः मैंने वह अेक-दो बार ही चखी होगी। अितनेमें अेक दिन वह शीशी मेरे हाथसे छूटकर फूट गअी। बोतलमें बचे हुअे शहदके अन्दर काँचकी किरचियाँ होंगी, अिस डरसे माँने वह सारा शहद फिंकवा दिया।

आख़िर पिताजीका सावनूरका काम ख़तम हुआ। सावनूर छोड़नेका वक़्त आया। पिताजीने क्लर्ककी मारफत हकीम साहबसे अुनकी फीस पुछवायी। पिताजी चाहते थे कि हकीम साहबको अुनकी हमेशाकी फीससे कुछ ज़्यादा पैसा देकर अुन्हें ख़ुश किया जाय। लेकिन हकीम साहबने कहा, "मुझे आपसे पैसे नहीं चाहिये; मगर आपकी यह घड़ी यादगारके तौर पर दे दीजिये।" घड़ीकी क़ीमत कुछ ज़्यादा नहीं थी। तीस-पैंतीस रुपये होगी। पर पिताजीने अुसे देनेसे अिन्कार किया। वे बोले, "आप दूसरा जो भी माँगें मैं दे दूँगा।" पिताजीने अुन्हें चालीस रुपये लेनेको कहा। दूसरी घड़ी मँगवाकर देनेकी भी बात कही; लेकिन हकीम साहब किसी भी तरह राज़ी न हुअे। अुन्होंने कहा, "मुझे कहाँ पैसेकी पड़ी है? मुझे तो आपके अिस्तैमालमें आनेवाली घड़ी ही चाहिये।" पिताजीने घड़ी देनेसे क्यों अिन्कार किया, यह मेरी समझमें न आया और न

अुन्हें पूछनेका ही खयाल आया। आखिर वे अपनी ही ज़िद पर अड़े रहे और दीवानसाहबकी मार्फत हकीम साहबको कुछ रक़म लेनेके लिअे अुन्होंने मजबूर किया।

अुस घड़ीके साथ पिताजीका कोअी खास सम्बन्ध या भावना होगी अैसी कल्पना मैंने की। पिताजीकी मृत्युके बाद वह घड़ी मेरे पास आयी। कअी बरस तक वह मेरे पास रही। बादमें जब म काश्मीरमें घूम रहा था, तब श्रीनगरमें अेक साधुने मुझसे वह घड़ी माँगी; लेकिन मैंने भी ज़िदके साथ अुसे देनेसे अिन्कार किया। मैं साबरमती आश्रममें पहुँचा तब तक वह घड़ी मेरे पास थी। वह न तो कभी बीमार हुअी और न ही अुसने कभी ग़लत समय दिखाया। बादमें मद्रासकी तरफ़के अेक मित्रने कुछ रोज़के लिअे वह मुझसे माँगी और कहीं खो दी। जब तक वह घड़ी मेरे पास थी, तब तक मुझे कअी बार हकीम साहबका स्मरण हो आता। आज भी अितना दुःख तो है ही कि हकीम साहबको वह घड़ी नहीं दी गअी; अैसे दिलदार आदमीको हमने नाराज़ किया यह कुछ अच्छा नहीं हुआ।

४४

द्वीनपरस्त कुतिया

नन्हू मालीकी अेक काली कुतिया थी। शिकार करनेमें वह अपना सानी नहीं रखती थी। बकरियों और भेड़ोंको देखती तो फौरन अुन पर टूट पड़ती। कभी कभी कोअी मेमना या खरगोश मारकर लाती। अुस दिन नन्हूके यहाँ होली या दीवालीकी तरह खुशियाँ मनायी जातीं। सावनूरमें हम शहरसे बाहर डाक बँगलेमें रहते थे, अिसलिअे वहाँ मुझे अेक भी बिल्ली नहीं मिली। अतः अुस कुतियाको ही, जिसका नाम काली था, मैंने अपनाया। मैं हर रोज़ अुसे पेटभर खिलाता और अुसके साथ खेलता रहता। कालीका मज़हब शायद अिस्लाम था। गुरुवारके दिन वह बिलकुल नहीं खाती थी। पहले गुरुवारको मुझे लगा कि काली बीमार होगी, अिसलिअे नहीं खा रही है। लेकिन आसपासके लोगोंने बताया कि, "अुसे कुछ भी नहीं हुआ है, वह बृहस्पतके दिन रोज़ा रखती है।" बचपनमें हमारा मन बहुत छान-बीन करनेवाला नहीं होता। चाहे जो बात हम श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं; अितना ही नहीं बल्कि हमें अद्‌भुत रस अितना प्रिय होता है कि अैसी कोअी अजीब बात सुनते हैं तो वह सच्ची ही होगी अैसा माननेकी तरफ हमारे दिलका रुझान होता है। फिर भी कालीकी यह बात मुझे असंभव-जैसी लगी कि अुस जानवरको ठीक गुरुवारका पता कैसे चलता होगा? अतः मैंने अुस पर कड़ी निगरानी रखी।

दूसरे गुरुवारको मैंने दूधमें आटा गुंधवाकर अेक बढ़िया रोटी बनवायी और अुस पर घी चुपड़ा। (मैं तो कालीको पूड़ी ही खिलाने-वाला था, लेकिन माँने कहा, "कुत्तोंको तली हुअी चीज़ नहीं

खिलायी जाती ; अुससे कुत्ते या तो पागल हो जाते हैं या बीमार पड़ते हैं।") अतः मैंने वह विचार छोड़ दिया। मैंने वह रोटी कालीको दी। रोटीकी ख़ुशबू बहुत अच्छी आ रही थी, अिसलिअे अुसे खा लेनेको कालीका मन ललचा रहा था। वह रोटीका टुकड़ा मुँहमें लेती और फिर छोड़ देती। अिस प्रकार अुसने कअी बार किया; लेकिन अुपवास नहीं तोड़ा। शामको चार बजे अुसे बहुत भूखी देख कर मैंने फिर वही प्रयोग किया। अेक पूरी रोटी अुसके सामने रख दी। कालीको अिस बार नयी तरकीब सूझी। अुसने वह रोटी मुँहमें पकड़ी और कुछ दूर जाकर अगले पैरोंसे ज़मीन खोदकर अुसमें वह रोटी गाड़ दी अेवं अुसी पर अपना आसन जमा दिया। दूसरे दिन सवेरे जल्दीसे अुठकर मैं कालीको देखने गया। वह भी अुसी वक़्त जगी थी। अुसने ज़मीन खोदी और देखते-देखते अुस रोटीसे अुपवासका पारण किया।

अगले दो गुरुवारोंको भी मुझे यही अनुभव हुआ।

अुसके बाद बहुत वर्षोंके पश्चात् मेरे पिताजीको दूसरी बार सावनूर जाना पड़ा। अिस बार मैं नहीं गया था। वहाँसे अुन्होंने पहले ही पत्रमें मुझे लिखा था कि कालीका कार्यक्रम बदस्तूर जारी है। बादमें पत्र आया कि काली किसी दुर्घटनासे मर गयी जब कि वह शिकारके लिअे गयी हुअी थी।

कालीको गुरुवारकी दीक्षा किसने दी होगी? क्या वह पूर्व-जन्मका कोअी संस्कार होगा? लेकिन अिस तरहकी कल्पनाअें करना मेरा काम नहीं है।

४५

भाषांतर-पाठमाला

सावंतवाड़ीमें जब हम गवंडळकरके यहाँ किरायेके मकानमें रहते थे तब खग्रास सूर्यग्रहण हुआ था। क़रीब दस-ग्यारह बजे होंगे। चारों तरफ बिलकुल अँधेरा छा गया। आसमानमें अेक-दो ग्रह भी दिखाअी देने लगे। कौअे वग़ैरा पक्षी घबड़ाकर शोर मचाने लगे। हम लोग काँचके टुकड़ों पर दीपककी कालिख लगाकर अुसमें से सूर्यका लाल बिब देखने लगे। अुस वक़्त मैंने अेक मज़ेदार खोज की। ग्रहण जैसे-जैसे बढ़ता गया, वैसे-वैसे हवामें कुछ अैसा परिवर्तन हो गया कि मृगजलकी पतली लहरें छोटी-छोटी जल-लहरोंकी तरह आकाशमें दिखाअी देने लगीं। मुझे शक हुआ कि शायद मेरी आँखोंको धोखा हो रहा हो, अिसलिअे मैंने आसपासके सब लोगोंको वह दृश्य बतलाया। फिर ज़मीनकी तरफ देखा तो जैसे धुअेंकी परछाअीं ज़मीन पर दौड़ती है वैसी छायाकी पतली लहरें ज़मीन पर दौड़ती हुअी दिखाअी दीं। अिसका कारण क्या होगा यह अभी तक मेरी समझमें नहीं आया है। अुसके बाद फिर कभी वैसा खग्रास ग्रहण दिखाअी नहीं दिया, अिससे अुस अनुभवकी जाँच करनेका मौक़ा नहीं मिला। लेकिन अुस अनुभवकी छाप दिमाग़ पर आज भी स्पष्ट है।

वह सूर्यग्रहण तो अेक दिनका था — अेक दिन क्या, बल्कि आधे घण्टेका भी नहीं होगा; पर दूसरे अेक ग्रहणने मुझे महीनों सताया। केशूकी अुस भाषान्तर-पाठमालाको मैंने अुस वक़्त तो सत्याग्रह करके टाल दिया था; लेकिन वह मुझे छोड़नेवाली नहीं थी। अिस बार अण्णाने सोचा कि दत्तू और गोंदू सारा दिन आवारागर्दी

करते हैं, अुन्हें कुछ पढ़ाना चाहिये। फिर क्या था? हर रोज़ अंग्रेज़ीके शब्द रटना हमारे नसीबमें लिख गया। अुसके अलावा नियम भी याद रखने पड़ते और वाक्य भी बनाने पड़ते। कैसी आफ़त थी! A (अे), An (अेन) और The (दि) हर जगह हमें परेशान कर देते। मुझे दुःख अिस बातका होता कि अिन अुपपदोंको सीधा बनानेके बजाय सब लोग हमींको हैरान करते। पब्लिक शब्दके हिज्जे में अचूक Publike करता। अण्णा कहते, "अिसका अुच्चारण 'पब्लाअिक' होगा।" तो मैं अुसे सुधारकर Publick कर देता। मेरे मुँहसे ck (सीके) निकलते ही चप्से बेंतकी छड़ी मेरी भुजा या जाँघ पर पड़ती, लेकिन c (सी)को असहाय अकेली रखनेकी बात मुझे नहीं सूझती।

सुबहका समय स्नान, संध्या और भोजनमें चला जाता। दोपहरके वक़्त अण्णा या तो लाअिब्रेरीमें जाते या रघुनाथ बापू रांगणेकरके यहाँ राजयोगका ज्ञान प्राप्त करने जाते। यह सारा वक़्त हम खेल-कूदमें बिताते। शामको ब्यालूके बाद अण्णा हमें सबक़ पढ़ाते।

अेक दिन अचानक अण्णा दोपहरको ही घर आ धमके। धूपके कारण अुन्होंने छाता लगा रखा था। अिसलिअे वे जब तक बिलकुल नज़दीक न आ गये, तब तक हम अुन्हें देख न सके। अुन्होंने हमें खेलते हुअे देखकर पूछा, "तुम लोग शब्द याद करके ही खेल रहे हो न?" मैंने झट कह दिया, "ज़ी हाँ!" अुनके गुस्सेसे बचनेके लिअे मैंने झूठ बोल तो दिया, पर मनमें डर लगा कि अण्णा राजयोग सीखने जाते हैं; योगकी शक्तिसे दूसरे लोगोंके मनकी बातें जानते हों तो? तब तो हम ज़रूर पकड़े जायँगे और दुगुनी मार पड़ेगी।

अण्णाकी यह आदत थी कि हम दोनोंमें से जो पहले भोजन कर लेता अुसका सबक़ वे पहले ले लेते, फिर दूसरेका। अतः अण्णाका भोजन खतम होनेसे पहले ही हम लोग जल्दी जल्दी खाना खा

लेते और जो कुछ पाँच-दस मिनटका समय मिल जाता अुसमें अुस दिनके शब्द देख लेते। हम सारा दिन अध्ययन न करके खेलकूदमें बिताते और अैन वक़्त पर जल्दीसे शब्दों पर नज़र डाल लेते, अिससे हमारे दिमाग़में गड़बड़ी हो जाती।

अेक दिन मुझे अेक युक्ति सूझी। मैं वैज्ञानिक ढंगसे बहुत ही धीरे धीरे चबा-चबा कर खाने लगा। अिस बीच गोंदू हमेशाकी तरह झटसे जीम लेता और तोपके मुँहमें जा पहुँचता। अुधर मैं गोंदूका पाठ खतम होने तक अपने शब्द रट लेता और अण्णाकी परीक्षामें पास होने जितनी तैयारी कर लेता।

चार-पाँच रोज़में गोंदू मेरी चालाकी समझ गया और चुपचाप अुसने भी पागुर करना शुरू कर दिया। अब तो कठिन प्रसंग आया। हम दोनों अिरादतन् भोजनमें देर लगा रहे हैं, यह देखकर अण्णा भी आहिस्तासे खाना खाने लगे। जब मेरे ध्यानमें यह बात आयी तो तुरन्त ही मैंने अपनी रणनीति बदल दी। जब गोंदू धीरे धीरे चबाकर खाता होता तब मैं बहुत ही तेज़ीसे कुत्तेकी तरह पेटमें निवाले डाल लेता और अण्णा जीमकर अुठते अुससे पहले ही अपने शब्द अच्छी तरह देख लेता। शब्द ठीक तरहसे कंठस्थ करनेका तो सवाल ही नहीं था। मैं दो-तीन बार शब्द देखता तब तक अण्णा आ जाते। ताज़े शब्द अुगल देनेमें कौन-सी मुश्किल होती? मेरे भोजन करके चले जानेके बाद गोंदू खानेमें जितनी अधिक देर लगाता अुतना अुसीका नुक़सान होता। मेरी पढ़ाअी खतम हो जाती तो अुसे जल्दी ही हाज़िर होना पड़ता। अिससे अुसका भोजन द्रुतविलम्बित गतिसे चलता। जब तक अण्णा जीमते रहते तब तक अुसकी गति विलंबित रहती और अण्णाके अुठ जानेके बाद वह द्रुत हो जाती। अिससे अुसके समयका बजट तो बराबर रहता, लेकिन अिसीसे वह पकड़ा गया। सब जान गये कि ये लड़के दिन भर खेलते रहते हैं और अैन वक़्त पर भोजनके वक़्तमें से समय चुराकर जैसे-तैसे शब्द रट लेते

हैं। अण्णाने अिसका अेक अुपाय ढूंढ़ निकाला। अुन्होंने अुस दिन पुराने शब्द भी पूछे। अिससे मेरी पोल खुल गयी। जिस दिनके शब्द अुस दिन तो बराबर आ जाते थे, लेकिन आज अुनमें से अेक भी नहीं आया।

दूसरे दिन मैंने निश्चय किया कि अब चालाकी करनेसे काम नहीं चलेगा। प्रामाणिकता ही सबसे अच्छी चालाकी है। अुस दिन मैं अण्णाके साथ ही जीमकर अुठा और दीवानखानेमें जाकर मैंने अुनसे कहा, "आज मेरे शब्द कच्चे हैं। मुझे कुछ समय दे दीजिये तो मैं अच्छी तरह याद कर लूं। तब तक आप नाना (गोंदू)का पाठ ले लें।" हमारी अिस बातचीतका पता गोंदूको कहाँसे होता? दत्तू अच्छी तरह चंगुलमें फँसा है, अैसा समझकर वह कुछ लापरवाहीके साथ नीचेसे अूपर दीवानखानेमें आया। लेकिन जब अण्णाने अुसीको पाठके लिअे आनेको कहा तो वह भौंचक्का रह गया। यह कैसे हुआ? किस युक्तिसे मैं छूट गया यह अुसकी समझमें किसी तरह भी न आया। वह कभी अण्णाकी तरफ देखता तो कभी मेरी तरफ। मैं तो सिर झुकाकर मुस्कुराता हुआ अपने शब्द रटने लगा।

अिसके बाद अण्णाने हम दोनोंको साथ बिठाकर रोज़ाना शुरूसे लेकर अुस दिन तकके सभी शब्द पूछनेका नियम बनाया। कभी अेक पाठसे शब्द पूछते तो कभी दूसरे ही पाठसे। अिस दैनिक परीक्षासे बिना विशेष मेहनतके मुझे सारे शब्द याद हो गये। हाँ, चार-पाँच दुष्ट शब्द ज़रूर सताते रहे; मगर अुनके लिअे अण्णाने मुझे मारना छोड़ दिया। आगे चलकर अुन्होंने अचूक वे ही चार-पाँच शब्द पूछना शुरू किया, तो अन्तमें अुन शब्दोंने हार मान ली और मेरा अध्ययन निष्कंटक हो गया।

अिस सारी घटनामें आश्चर्यकी बात तो यह है कि मुझे अितनी युक्तियाँ सूझीं, लेकिन दोपहरके वक़्त घंटा-आध घंटा बैठकर बाक़ायदा पढ़ाअी करनेका सीधा रास्ता न तो मुझे सूझा और न पसन्द ही आया।

४६

टिड्डी-दल

“अितने भिखारियोंका यह टिड्डी-दल न जाने कहाँसे फट पड़ा है! हमें अितने वर्ष हो गये, मगर अितनी भुखमरी कभी नहीं देखी।” हमारे घरकी बूढ़ी नौकरानी हर रोज़ यही कहती। और सचमुच रोज़ाना सवेरे सात बजेसे दोपहरके बारह बजे तक न जाने कैसे कैसे भिखारियोंकी भीड़ लग जाती थी। वे लोग तरह-तरहकी आवाज़ें निकालकर या गाना गाकर भीख माँगते फिरते। किसीके हाथमें अून कातनेकी तकली चलती, तो कअी भिखारिनें हाथसे खजूरीके पत्तोंसे चटाअियोंकी पट्टियाँ बुनती जातीं और भीख माँगती जातीं। कुछ भिखारिनें अपने सिर पर टोकरीमें सूअी, डोरा और काँचके मनके बेचनेके लिअे लातीं। अुनकी बिक्री भी चलती रहती और साथ-साथ भीख भी माँगतीं। ‘मेरे सामानमें से कुछ खरीदो और कुछ भिक्षा भी दो,’ अिस तरह अुनकी माँग होती।

कअी भिखारिनें अिस तरहके खुशामदके गीत गातीं:

‘ताअी बाअीचे डोळे
लोण्याचे गोळे’

[अर्थात् बहनजीकी आँखें मक्खनके गोले जैसी हैं।]

कअी भिखारिनें तो राधाबाअी, रुखमाबाअी, गोपकाबाअी आदि स्त्रियोंके जितने भी नाम हो सकते हैं अुतने सब सम्बोधनके रूपमें बोलकर खानेको माँगतीं। कअी पुरुषोंके गलेमें लोहेकी अेक लम्बी साँकल और लकड़ीका अेक बालिश्त लम्बा हल टँगा रहता। वे कहते, “अकालमें हम खेतके मालिकका लगान अदा न कर सके,

अिसलिअे भीख माँगकर अब अुसे पूरा कर रहे हैं। अब तक ढाअी हजार पूरे हुअे हैं, अब आठ सौ रुपये ही बाकी हैं। अगर हर घरसे हमें कुछ न कुछ मिल जाय तो हम जल्दी मुक्त हो जायँगे।"

पहले तो मुझे अिन लोगों पर बहुत तरस आता। मैं सबको मुट्ठी-मुट्ठी चावल देता। कअी लोगोंको दाल-भात वग़ैरा भी खानेको देता। अुनके हावभावके साथ गाये हुअे गीतोंका अनुकरण करते हुअे मुझे अुनकी कअी पंक्तियाँ कंठस्थ हो गयी थीं। अुनमें से कुछ तो आज भी याद हैं। लोकगीतोंकी दृष्टिसे आज मैं अुनकी तरफ देख सकता हूँ:

'सोनार बापूजी बापूजी
नथ का घडवली घडवली
पायां पडवली पडवली
पायाचा जोड जोड
पायाला आला फोड फोड।'

दूसरा गीत कोंकणी है:

'आल्यान् माल्यान्, माल्यान् मोगरो
फुलेलो मोगरा, माल्यान् गो
जावअि बोले, लाडके सुने
दादान् मोगरो, माल्यान् गो।'

फिर तो हर रोज़ वही लोग बार-बार आने लगे। मैं अूब गया। मेरी सहानुभूति सूख गयी। मुझे यक़ीन हो गया कि ये लोग भुखमरीकी वजहसे भीख नहीं माँगते, बल्कि भीख माँगना अिनका धन्धा ही हो गया है। कअी लोगोंसे मैं अदालतकी जिरहकी तरह अुलटे-सीधे सवाल पूछने लगा। वे हमेशा झूठ बोलते। हर रोज़ कुछ नया ही क़िस्सा गढ़ डालते। कअियोंसे मैंने पूछा, "लेकिन

परसोंके दिन तो तुमने कुछ और ही क़िस्सा बतलाया था न?" वे बेशर्मीसे कह देते, "नहीं जी, तुम्हें धोखा हो रहा है। हम तो आज पहली ही बार अिस शहरमें आये हैं।"

अब मेरे सब्रने जवाब दे दिया। मैं अुन लोगोंको भगाने लगा। अुन्हें आँगनमें क़दम ही न रखने देता। शुरू शुरूमें वे लोग मेरी तारीफ़ करते, मुझे भोले शिवजीका अवतार कहते। लेकिन अब वे पहले तो गिड़गिड़ाने लगे और बादमें बुड़बुड़ाने लगे। यहाँ तक कि अन्तमें वे गालियों पर भी अुतर आये। मैं बहुत ग़ुस्सा हो गया। अब मैं हमेशा बेंतकी अेक छड़ी अपने पास रखता और कोअी भिखारी आँगनमें आता तो अुसे मारने दौड़ता। यह देखकर अड़ोस-पड़ोसके लोग हँसने लगे।

कभी कभी रमा भाभी बचा-खुचा भात अिन भिखारियोंको देनेके लिअे बाहर आतीं तो वे दौड़ पड़ते। मैं कुत्तेकी तरह अुन पर झपट पड़ता और भाभीसे कहता, "लाओ, वह भात मैं कुत्तोंको खिला देता हूँ। अिन निठल्ले लोगोंको तो कुछ भी नहीं देना चाहिये। ये सरासर झूठ बोलते हैं।"

गोंदू कहता, "कोअी किसीको दान देता हो तो हमें अुसमें बाधा नहीं डालनी चाहिये; अिससे पाप लगता है।"

"हमको भले ही पाप लग जाय। मगर देखूँ तो सही कि अिन भिखारियोंको तुम कैसे खानेको देते हो!" मैं ज़िदके साथ कहता।

सभी मुझे समझानेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें मकानके मालिकने मुझसे कहा, "तुम अपने दरवाज़े पर आनेवालोंको भले ही रोको, लेकिन हमारे दरवाज़े पर आकर कोअी भीख माँगे, तो क्या अुसमें भी तुम्हें आपत्ति है?" शर्म और क्रोधके मारे मैं लाल-पीला हो गया। मैंने छड़ी फेंक दी और चुपचाप अपने कमरेमें चला गया। फिर तो बारह बजेसे पहले मैंने घरसे बाहर निकलना ही छोड़ दिया।

लगभग पंद्रह दिनमें भिखारियोंकी यह बाढ़ कुछ कम हो गयी। अितनेमें कहींसे बड़ी-बड़ी लाल-पीली टिड्डियाँ आ गयीं। अितनी टिड्डियाँ, अितंनी टिड्डियाँ कि सारा आकाश भर गया। आसमानसे अैसी आवाज़ सुनाअी पड़ती, मानो बिजलीका डायनेमो चल रहा हो। अुन टिड्डियोंने सारी साग-सब्ज़ी खा डाली, पेड़ोंके पत्ते चट कर दिये। ये टिड्डियाँ भी कोअी मामूली कीड़े थे? जी नहीं, वे तो मानो आग ही थीं। वे खाती जातीं और लेंडियाँ डालती जातीं। सवेरेसे शाम तक खाती रहतीं, फिर भी अुनका पेट नहीं भरता। लोग बेचारे क्या करते? लम्बे लम्बे बाँस लेकर अुन्हें पेड़ों परसे हटानेका प्रयत्न करते। टिनके डिब्बे बजा-बजाकर अुन्हें भगानेकी कोशिश करते। लेकिन टिड्डियाँ किसी तरह कम न होतीं। रास्तेसे चलना भी दूभर हो गया। वे तो भर्रर्रर्रसे आतीं और कमीज़की आस्तीनोंमें भी घुस जातीं। ज़रा गर्दन झुकाकर नीचे देखने लगते, तो कोट और कमीज़के गरेबानोंमें घुसकर पीठ तक पहुँच जातीं। फिर तो रास्ते पर ही कोट अुतार कर अन्दरकी टिड्डियोंको बाहर निकालना पड़ता। अितनेमें दूसरी टिड्डियोंके अंदर घुस जानेका अंदेशा बना ही रहता। शाम होने पर अुनके पंख भारी हो जाते और वे कहीं बैठ जातीं।

अब लोगोंने अेक तरकीब निकाली। खेतों और बाड़ियोंके पास वे अेक लम्बी खाअी खोद देते और रात पड़ने पर अुसमें घास जलाते। आगकी लपटें देखकर टिड्डियाँ अुधर दौड़ जातीं और अुनमें कूद-कूदकर मर जातीं। यह देखकर देहातके छोटे लड़कोंको अेक नअी ही बात सूझी। वे टिड्डियोंको पकड़कर अुनके पैर तोड़ डालते और फिर अुन्हें भूनकर खा जाते। वह दृश्य देखकर हमें बड़ी घिन आती। लेकिन अुन दिनों ग़रीब लोगोंने अपने-अपने घरोंमें टिड्डियोंके बोरेके बोरे भरकर रख लिये!

टिड्डियोंका हमला अब नारियलके पेड़ों पर शुरू हुआ। अुनकी लम्बी-लम्बी शाही पत्तियाँ अेक दिनमें ही खत्म होने लगीं। आठ-दस दिनके अन्दर नारियलके पेड़ तारके खंभोंकी तरह ठूँठ दिखाअी देने लगे। अुस दृश्यको देखकर तो रोना ही आता था। किसान और बाग़बान बड़े चिन्तित हो गये। वे कहते, "किसी साल वर्षा नहीं होती, तो अेक वर्षका ही अकाल भुगतना पड़ता है; लेकिन हमारे तो नारियलके पेड़ ही साफ़ हो गये। अब दस बरस तक आमदनीका नाम न रहा।" रास्ते पर देखो या आँगनमें, खेतोंमें देखो या बाड़ियोंमें, ज़मीन पर टिड्डियोंकी लेंडियाँ ही लेंडियाँ बिछी हुअी दिखाअी देतीं। किसीने कहा, "अिन लेंडियोंका खाद बहुत क़ीमती होता है।" यह सुनकर अेक बुढ़िया बिगड़कर बोली, "जले तेरा मुँह! सोनेके जैसे पेड़ जल गये और तू कहता है कि यह खाद क़ीमती होता है। यह खाद तू अपने ही खेतमें डालकर देख; बोया हुआ अनाज भी जलकर राख हो जायगा। यह खाद नहीं, आग है।"

अभी भी टिड्डियोंकी पलटनें अेकके बाद अेक आ ही रही थीं। मीलों तक टिड्डियोंके बादल छाये हुअे थे। सबकी सब अेक ही दिशामें अुड़ रही थीं — मानो किसीका हुक्म ही लेकर आयी हों।

हर चीज़का अन्त तो होता ही है। अुसी प्रकार टिड्डियोंके अिस संकटका भी अन्त अपने आप हो गया। वे जैसे आयी थीं वैसे ही चली गयीं।

अतिवृष्टिर् अनावृष्टिः शलभाः मूशकाः शुकाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥
[स्वचक्रं परचक्रं वा सप्तैता ईतयः स्मृताः॥]

४७

शेरकी मौसी

सामान्य लड़कोंकी अपेक्षा मेरा पशु-पक्षियोंके प्रति विशेष प्रेम था। कुत्ते, बिल्लियाँ, गोरैयाँ, कौअे, बछड़े, खरगोश, गिलहरियाँ, तोते आदि कअी प्राणी मेरा समय ले लेते थे। घरकी भैंसकी सेवा-टहल करना मेरे ही जिम्मे होता। बैलोंकी गर्दनें खुजलाना और अुनके सींगोंके बीचकी जगह साफ़ करना भी मेरा ही काम था। यह कहना कठिन है कि मैं बाग़ोंमें फूल चुनने जाता था या तितलियाँ देखने!

पर मेरा सबसे प्रिय जानवर तो बिल्ली था। बिल्लियाँ अपने मालिककी खुशामद करती हैं, लेकिन कभी स्वाभिमानको नहीं खोतीं। आप कुत्तेको अनार्य बना हुआ पायेंगे, लेकिन बिल्ली तो हमेशा अपनी संस्कृति और शानको सँभालकर ही रहती है। किसी दिन पीनेका दूध थोड़ा कम होता तो अुसमें से भी अपनी बिल्लीको पिलाये बिना स्वयं पीना मुझे अच्छा नहीं लगता था। बचपनमें मैंने काफ़ी मुसाफ़िरी की है। जहाँ जाता वहाँ आठ-दस दिनके अन्दर आसपास कितनी बिल्लियाँ हैं, किस-किसकी हैं, अिसका ठीक-ठीक पता मैं लगा लेता। बिल्लियोंके प्रति मेरा यह पक्षपात अेकान्तिक या अिकतरफा न था। जहाँ जाकर रहता, वहाँकी बिल्लियोंको मेरे राग और द्वेष दोनोंका अनुभव लेना पड़ता। बिल्लीको कैसे घेरना चाहिये, अुसे कैसे पीटना चाहिये, किसी गड्ढेमें काँटे डालकर तथा अुस पर काग़ज़ या पतला कपड़ा बिछाकर बिल्लीको गढ़ेमें कैसे गिराना चाहिये आदि सारी कलाओंमें मैं पारंगत था।

यदि मैं न जानता कि बिल्लीको जानसे मार डालनेसे बारह ब्राह्मणोंकी हत्याका पाप लगता है, तो मेरे हाथों बिल्लियोंकी हत्या भी हो जाती। मैंने देखा था कि बिल्लीकी पूंछ पर पापकी बारह काली पट्टियाँ होती हैं। अतः ब्राह्मणोंकी हत्याकी बात झूठी है, अैसा समझनेकी कोअी गुंजाअिश नहीं थी।

मैं कारवारमें था तब मैंने अेक छोटा-सा बिल्ला पाला' था। वह बहुत खूबसूरत था। अुसका नाम अुसी प्रदेशके प्रचलित नामोंमें से होना चाहिये, अिस दृष्टिसे मैंने अुसका नाम व्यंकटेश रखा था। वह मेरे साथ क़रीब अेक साल रहा होगा। आख़िर अेक छछूंदरने अुसे मार डाला। मुझे तो बिल्लीके बिना चैन न आता था। अतः मैंने सारा कारवार शहर खोज डाला। जब कोअी अुम्दा बिल्ली दिखाअी देती, तो वह जिस घरमें जाती अुसके मालिकसे मैं अुसे माँगता। लेकिन अिस तरह बिल्ली थोड़े ही मिला करती है? चंद लोग शरीफ़ाना ढंगसे कहते कि 'अिस बिल्लीको हमारी आदत हो गयी है, वह तुम्हारे यहाँ नहीं रहेगी।' लेकिन कुछ लोग हमारा अपमान करके हमें निकाल देते। आख़िर केशू, गोंदू और मैं अेक घरके आसपास पहरा लगाकर बैठे और मौक़ा पाते ही राक्षस-पद्धतिसे अेक बिल्लीको भगा लाये।

बिल्लीको पकड़ना कोअी अैसा-वैसा काम नहीं है। अुसके नाखूनों और दाँतों पर अभी हथियारबन्दीका क़ानून लागू नहीं हुआ है। पहले तो बिल्लीका पकड़में आना ही मुश्किल है। आप अुसे पकड़िये तो तुरन्त ही वह 'गुर्रर्र... म्याअूँ...' करके काटेगी या नाखूनोंसे नोच डालेगी। हम लोग अपने साथ अेक बोरा रखते थे। तीनों तीन तरफ़ खड़े हो जाते। बिल्ली कुछ पास आ जाती, तो अुस पर झपटकर अुसकी गर्दन पकड़ लेते। बिल्लीकी गर्दनकी चमड़ी पकड़कर अूपर अुठानेसे अुसे तकलीफ नहीं होती और वह बिलकुल क़ाबूमें आ जाती है। अुसकी गर्दनकी चमड़ी यदि आपके

हाथमें हो, तो आप अपनेको बिलकुल सुरक्षित समझिये। वहाँ तक न अुसके दाँत पहुँच पाते हैं, न नाखून ही। हाँ, पिछले पैरोंको अूपर अुठाकर वह नाखून मारनेकी कोशिश अवश्य करती है; सारे शरीरको सभी दिशाओंमें मरोड़कर छूट निकलनेकी चेष्टा भी कर देखती है। नया आदमी हो तो नाखूनोंके हमलेके डरसे वह बिल्लीको छोड़ देता है और अेक बार छूट जाने पर बिल्लीबाअी कभी हाथ नहीं आ सकती।

हम बिल्लीको पकड़ते तो अेक हाथसे अुसकी गर्दन और दूसरेसे अुसके पिछले पैर अच्छी तरह पकड़ रखते। फिर झटसे अुसे बोरेमें डालकर तुरन्त ही बोरेका मुँह बन्द कर देते। बिल्ली अिस तरह अन्दर बन्द हो जाती, तो वह तुरन्त ही बंगाली ढंगसे आन्दोलन शुरू करती। खूब शोर मचाती और अैसा दिखावा करती मानो बोरेको फाड़ ही डालेगी। बिल्लीको पकड़ते वक़्त कअी बार मेरे हाथ-पैर खूनसे लथपथ हो गये हैं। लेकिन जिस बिल्लीको पकड़नेका मैं निश्चय करता, अुसे किसी भी हालतमें हाथसे जाने न देता।

बिल्लीको घर ले जानेके बाद हमारा सबसे पहला काम यह होता कि हम अुसे भरपेट खिलाते और अुसके नाक-कानको घरके चूल्हे पर रगड़ते। अिसमें मान्यता यह थी कि अैसा करनेसे बिल्ली अुस चूल्हेको छोड़कर कहीं नहीं जाती; वहीं रहती है और आग ठंडी हो जाने पर रातको अुसी चूल्हेमें सो जाती है। कारण चाहे जो हो, लेकिन हमारी बिल्लियाँ हमेशा हमारे चूल्हेमें ही सोती थीं।

अेक दिन मैंने अेक बिलकुल सफ़ेद बिल्ली देखी। अुसकी पूँछ पर काली पट्टियाँ भी नहीं थीं। हमको लगा कि अैसी निष्पाप बिल्ली हमारे यहाँ अवश्य होनी चाहिये। जिस औरतकी वह बिल्ली थी अुससे माँगना संभव न था। अतः तीन-चार दिनकी तपश्चर्याके बाद हमने अुस बिल्ली पर कब्ज़ा कर लिया। अुसे घर लानेके बाद

अुसके रहनेके लिअे अेक लकड़ीकी बड़ी पेटीका घर बनवाया। अुसके सोनेके लिअे गद्दी तैयार की। बढ़ओीके पास जाकर अुस पेटीमें छोटी छोटी खिड़कियाँ बनवायीं। अुसमें लाल, हरे और पीले काँचके टुकड़े जड़ाये, जिससे हर खिड़कीमें से वह बिल्ली अलग-अलग रंगकी दिखाअी देती। बिल्लीको भी अपना नया घर खूब पसन्द आया। लेकिन वह तो दिन-ब-दिन सूखने लगी। जब हम अुसे लाये थे तो वह अच्छी मोटी-ताज़ी थी, लेकिन अब अुसकी हड्डियाँ अुभर आयीं। यह देखकर माँने कहा, "अै पागलो, अिसे जहाँसे लाये हो वहीं रख आओ; वरना नाहक अिसकी हत्याका पाप तुम्हें लगेगा। यह तो मछली खानेकी आदी है। हमारा दूध-भात अिसके कामका नहीं।"

अितनी सुन्दर और अितनी बहादुरीसे लायी हुअी बिल्लीको छोड़ देनेकी हमारी हिम्मत न हुअी। अतः हमने अपने घरके बरतन माँजनेवाली महरीसे कहा, "हम तुमको रोज़ाना अेक पैसा देंगे। तुम हर रोज़ अपने घरसे मछली लाकर अिस बिल्लीको खिलाती जाओ।" बस मछलीकी खुराक मिलते ही वह बिल्ली पहले जैसी ही हृष्ट-पुष्ट हो गयी और हम भी प्रसन्न हुअे। लेकिन थोड़े ही दिनोंमें यह बात पिताजीके कानों तक पहुँची। वे नाराज़ होकर कहने लगे, "अिन लड़कोंको क्या कहें? बिल्लीके पीछे पागल हो गये हैं और ब्राह्मणके घरमें बिल्लीको मछली खिलाते हैं!" पिताजीके सामने हमारी अेक न चल सकती थी। अिसलिअे हम चुपचाप बिल्लीको अुसके असली घरके पास छोड़ आये। फिर तो अुसका सूना-सूना लकड़ीका घर देखकर हमारा दिल बहुत अुदास हो जाता।

वह बिल्ली गयी तो हम दूसरी ले आये। भोजनके समय सहजनकी फलियाँ चबाकर अुनकी जो सीठी थालीके पास डाली जाती अुसे ही वह आ-आकर खाती। माँ कहने लगी, 'यह भी अिसके मांसाहारका ही लक्षण है।' लेकिन हमने माँसे साफ़ कह दिया, 'चाहे जो हो,

अिस बिल्लीको तो हम ज़रूर रखेंगे। देखो तो, कितनी सुन्दर है! माँने अिजाज़त दे दी। लेकिन अिस बिल्लीका अन्न-जल हमारे यहाँ नहीं था। थोड़े ही दिनोंमें वह बीमार पड़ी और मर गयी। अुसके अन्तकालकी यातनाओंको देखकर मेरे मन पर बड़ा असर हुआ। अिससे पहले मैंने आदमियों और पशुओंकी लाशें देखी थीं, लेकिन किसी भी प्राणीको मरते हुअे नहीं देखा था।

कारवारसे हम कुछ दिनोंके लिअे फिर सावंतवाड़ी गये थे। वहाँ भी अेक बिल्ली हर रोज़ हमारे यहाँ आती। हमारा भोजन देरीसे होता या जल्दी, वह हमारे जीमनेके अैन वक़्त पर ज़रूर हाजिर हो जाती। मैं अुसे पेट भरकर दूध-भात खिलाता। घरके लोगोंको लगा कि दत्तूका बिल्लियोंका शौक़ बहुत ही बढ़ गया है, अिसका कुछ अिलाज करना चाहिये। अतः विष्णु या अण्णाने अुस बिल्लीका नाम 'दत्तूची बायको' (दत्तूकी पत्नी) रख दिया। जहाँ वह घरमें आती कि सभी कहते, 'देखो, दत्तूकी पत्नी आ गयी।' मैं अुसे खिलाने लगता तो कहते, 'देखो, कितने प्रेमसे अपनी जोरूको खिलाता है।' मैं झेंपने लगा। सीधी नज़रसे बिल्लीकी ओर देखता तक नहीं। देखता भी तो तिरछी नज़रसे, सबकी आँखें बचाकर। बेचारी बिल्लीको अिसका क्या पता? व्रह तो भोजनके समय मेरे पास आकर बैठती — जी हाँ, बिलकुल पास बैठती, सामने भी नहीं! यदि मैं अुसे वक़्त पर भात न देता, तो वह मेरे मुँहकी तरफ़ देखकर गर्दन मटकाते हुअे म्याअूँ-म्याअूँ करती। लोग अिसका भी मज़ाक अुड़ाने लगे। अतः मैं बिल्लीकी ओर देखे बिना ही अुसके सामने थोड़ा-सा भात डाल देता। लोग अिसका भी मज़ाक अुड़ाते। अगर मैं कुछ भी न देता, तो बिल्ली हैरान करती; अुसका भी मज़ाक अुड़ाया जाता। मैंने बिल्लीको मार भगानेका प्रयत्न किया, लेकिन अुसमें असफल रहा। सच कहा जाय तो अुसे मार भगानेको मेरा मन ही न होता था।

कअी दिनों तक अिस परेशानीको बर्दाश्त करके अन्तमें मैंने निश्चय कर लिया कि 'लोग चाहे जो कहें, शरणमें आये हुअे को मरणके मुँहमें नहीं छोड़ा जा सकता। फिर अिसमें बेचारी बिल्लीका क्या गुनाह है?' और मैंने सारी शर्म-हया छोड़ दी। अेक दिन सबके सामने मैंने कह दिया, "हाँ, हाँ! बिल्ली मेरी पत्नी है! मैं अुसे ज़रूर खिलाअूंगा; रोज़ाना खिलाअूंगा; प्रेम और प्यारसे खिलाअूंगा। अब भी कुछ कहना बाकी है? आ, बिल्ली आ! बैठ मेरे पास!" अितना कहकर मैं बिल्लीकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

आदमी जब बिगड़ जाता है, नाराज़ होता है, तब सभी अुससे डरने लगते हैं। अुस दिनसे किसीने मेरा या बिल्लीका नाम नहीं लिया!

४८

सरो पार्क

बड़ी अुम्रमें अपनी हिमालय-यात्रामें जमनोत्री जाते हुअे धरासूसे आगे अेक दिन दोपहरके समय मैं अेक अैसे अजीबोगरीब जंगलमें पहुँच गया था, जहाँ आसपास कहीं आबादी न होने पर भी मुझे अैसा लगा था कि यहीं मेरा घर है; मानो अिस जन्ममें या पूर्व-जन्ममें मैं यहाँ बहुत काल तक रहा हूँ। अिस अद्‌भुत अनुभव या भावनाका कारण खोजनेका मैंने बहुत प्रयत्न किया है, लेकिन अभी तक कोअी कारण या सम्बन्ध ध्यानमें नहीं आया है। मनमें अेक शंका ज़रूर अुठती है कि बचपनमें कारवारके पास मैंने सरोका जो अुपवन देखा था, अुसके प्रति सुप्त मनमें कुछ-न-कुछ समानताका भाव अुत्पन्न हो गया होगा। लेकिन निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं

कहा जा सकता। कारवारके अुस सरो पार्कसे मेरा प्रथम परिचय अिस प्रकार हुआ था :

अेक दिन भाअू और मैं समुद्रके किनारे कुछ जल्दी घूमने निकले। रविवारका दिन था और हम दोनों मस्तमौला! अिसलिअे साढ़े-तीन बजे ही समुद्रकी ओर चल दिये। बाअीं ओर दूर तक जानेकी गुंजाअिश नहीं थी — मुश्किलसे पोस्ट ऑफिस तक ही जा सकते थे। लेकिन हमको तो खूब घूमना था। अिसलिअे दाहिनी ओरका किनारा पकड़ा। रास्तेमें सपाट रेत बिछी हुअी देखकर मैंने लकड़ीसे अुस पर कअी अुक्तियाँ लिख डालीं। लेकिन थोड़ीसी हवा लगते ही लिखा हुआ सब कुछ मिट जाता था। सूखी रेतमें चलते हुअे भी थकावट मालूम होती थी, अिससे पैर अपने आप ही गीली रेतकी ओर जाने लगे। वहाँ पर लिखनेका मज़ा कुछ और ही था। हम क्या लिखते थे? 'गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय!' अितनी लम्बी-चौड़ी पंक्ति लिखने और अुसे पढ़नेमें हमें कितना गर्व होता था! कुछ आगे जाकर मैंने लिखा, 'अंग्रेज़ हमारे दुश्मन हैं, अुन्हें मार ही डालना चाहिये।' महाराष्ट्रके मशहूर कवि मोरोपंतकी अेक आर्या भी मैंने लिखी थी, जो आज भी अच्छी तरह याद है; क्योंकि अुसे लिखनेमें बहुत समय लगा था। वह अिस प्रकार थी :

गरुड जसा गगनांतुनि वेगें अुतरोनि पन्नगा झडपी।

तैसा भीम बळानें दुःशासनकंठ अंघ्रिनें दडपी॥

[जिस तरह गरुड़ आसमानसे तेज़ीके साथ नीचे अुतरकर साँपको झड़प लेता है, अुसी तरह भीम सारी ताक़त लगाकर अपने पैरोंसे दुःशासनका गला घोंटने लगा।]

भाअूने यह आर्या पढ़कर तुरन्त ही अुसकी दूसरी पंक्तिके बदले यह पंक्ति लिख दी :

तैसा भट्ट बळानें अुन्ह अुन्ह पोळया, तुपांमध्यें दडपी।
[यानी अुसी तरह पाँड़ेजी या चौबेजी पूरी ताक़त लगाकर गर्म-गर्म रोटियाँ घीमें डुबोकर अुन पर हाथ साफ़ करने लगे।]

भट्ट महाशयको वहीं गर्म-गर्म रोटियाँ घीके साथ खाते छोड़कर हम आगे बढ़े। हम सीपियाँ चुनते, अुनमें कौन-सी अच्छी है अिसकी चर्चा करते, जब अधिक अच्छी सीपियाँ मिलतीं तो पुरानी फेंक देते और अिधर-अुधरकी बातें करते। अिस तरह हम बहुत दूर चले गये। वहाँ पर हमने अेक अैसा दृश्य देखा, जैसा कि अुससे पहले कभी नहीं देखा था। अेक प्रसन्न-गंभीर नदी आकर समुद्रमें मिल रही थी। सागर-सरिता-संगम यानी मूर्तिमंत काव्य! अैसा संगम जब हम पहली बार देखते हैं, तब तो अुसका नशा ही चढ़ता है। संगमकी शोभा देखते-देखते सूर्यास्तका समय हुआ। फिर तो पूछना ही क्या? सुनहरा रंग चारों ओर फैल गया। वृक्षों पर भी हरे-सुनहरे रंगकी छटा छा गयी। समुद्रकी शोभा तो अैसी हो गयी, जैसे स्वर्णरसका सरोवर छलछला रहा हो। ये अुपमाअें तो आज सूझ रही हैं। अुस वक़्तका मुग्ध हृदय अुपमाके द्वारा अपने अन्तरके भावको बहाकर दिलके बोझको हलका नहीं कर सकता था। दुःखके आवेगको हलका करनेकी जितनी ज़रूरत होती है, अुतनी ही ज़रूरत आनन्दकी अूर्मिको शान्त करनेकी भी होती है। वरना अुसका नशा बेक़ाबू होकर दम घुटने लगता है।

कितना समय बीत गया अिसका न तो केशूको भान रहा और न मुझे ही। हम जहाँ पहुँचे थे, वहाँ अेक ओर तो सरोका घना जंगल था और दूसरी ओर समुद्र था। ज्वारके शुरू होते ही समुद्रकी लहरें सरोके पेड़ोंका पादप्रक्षालन करने लगीं। अब वापस कैसे लौटा जाय? हिम्मत करके कुछ किनारे किनारे चलकर देखा, लेकिन लहरें जोशमें थीं। पानी बढ़ने लगा। घने पेड़ोंके बीचसे रास्ता निकलना संभव न था। यदि पानीमें होकर जाते, तो वह बढ़ रहा था और

वह कहाँ तक बढ़ेगा अिसका कोअी अंदाज़ा नहीं था। हम बड़े चकराये। भाअू मेरी ओर देखता और मैं भाअूकी ओर। कहाँ अस्त होनेवाले सूर्यका मुँह देखनेका आनन्द और कहाँ हम दोनोंके परेशान चेहरोंको देखनेकी विचित्रता! बहुत सोच-विचारके बाद हमने तय किया कि जिस रास्तेसे हम आये हैं अुससे तो अब जाया नहीं जा सकता। अतः नदीके किनारे किनारे चलना चाहिये; फिर जो कुछ भी होना हो सो होगा। नदीका पानी भी ज्वारके कारण बढ़ रहा था, क्योंकि वह खाड़ी थी। लेकिन समुद्रके किनारे पानी सीधा हमारे शरीर पर अुड़ता था, अुससे यह कुछ अच्छा था। पत्थरसे अींट भली, अिस न्यायसे हमने यही रास्ता पसन्द किया और नदीके किनारे-किनारे बहुत दूर तक चले। जैसे-जैसे हम अन्दर गये वैसे-वैसे दाहिनी तरफ़का वह सरोका जंगल घना होता गया। प्रकाशके बढ़नेकी तो संभावना थी ही नहीं।

संध्याकालका डूबता हुआ प्रकाश गमगीन और गंभीर होता है। अुसमें सभी गूढ़ भाव जाग्रत होते हैं। अिसीलिअे प्राचीन ऋषियोंने विधान बनाया होगा कि शामके समय कामसे मुक्त होकर ध्यान-चिन्तनमें मग्न होना चाहिये। संध्या-समयकी गंभीरता मध्यरात्रिकी गंभीरतासे भी अधिक गहरी होती है, क्योंकि संध्याकालका अँधेरा वर्धमान होता है, जब कि मध्यरात्रिके समय वह स्थिर हुआ होता है।

आगे चलकर दाहिनी ओर अेक पगडंडी दिखाअी दी। अुस पगडंडीसे आखिर कारवार पहुँच जायँगे अिस बारेमें शंका नहीं थी। लेकिन वह जंगलके आरपार जायेगी ही, अिसका विश्वास किसे था? और सरोके अुस जंगलमें से अँधेरेमें रास्ता तै भी कैसे करते? मेरी हिम्मत नहीं चली। मैंने भाअूसे कहा, 'मुझे अिस रास्तेसे नहीं जाना है। हम किसी तरह किनारे-किनारे ही चले चलें। कहीं-न-कहीं झोंपड़ी या घर मिल जायगा तो हम अुसीमें रात बितायेंगे। फिर सवेरेकी बात सवेरे।' भाअू कहने लगा, 'तू नहीं जानता दत्तू,

यदि हम घर न पहुँचे, तो घरवाले कितने फ़िक्रमंद हो जायँगे! सब हमें खोजने निकल पड़ेंगे और सारी रात भटकते फिरेंगे। अुन्हें शायद अैसा भी लगेगा कि हम समुद्रमें डूब गये होंगे। अतः कुछ भी हो, वापस तो जाना ही चाहिये।' भाअूकी बात सच थी। आखिर हमने हिम्मत बाँधी और अुस बीहड़ वनमें प्रवेश किया।

वहाँ पर सरोके अलावा कसम खानेको भी दूसरा पेड़ नहीं था। अपने सूअी जैसे लम्बे-लम्बे पत्तोंसे ये पेड़ स्...स्...स् की लम्बी आवाज़ दिन-रात निकाला ही करते हैं। हम नंगे पैर चल रहे थे — या दौड़ रहे थे कहना भी अनुचित न होगा। रास्ते पर हर तरफ़ सरोके कँटीले फल बिखरे पड़े थे। बढ़ता हुआ अंधकार, साँय-साँय करती हुअी हवाकी भयानक आवाज, कँटीले फलोंवाला रास्ता और घर पर क्या हो रहा होगा अिसकी चिन्ता — अिन सबके बीच हम बढ़े चले। हमने आधा रास्ता तै किया होगा कि बिलकुल अँधेरा छा गया। हम परेशान थे, लेकिन हममें से कोअी घबड़ाया हुआ न था। अैसे प्रसंगोंमें साहसका जो अद्भुत काव्य भरा होता है, अुसका रसास्वादन न कर सकें अितने अरसिक हम नहीं थे। हमने दूनी तेज़ीसे क़दम अुठाये और आख़िर सही सलामत म्युनिसिपल हदमें पहुँच गये।

अब कोअी दिक़्क़त नहीं थी। लेकिन रास्ते परकी म्युनिसि-पैलिटीकी लालटेनें मानों आँखोंमें चुभने लगीं। अैसा लगने लगा कि ये न होतीं तो अच्छा होता। घर पहुँचे तो वहाँ सभी हमारी राह देख रहे थे। भोजन ठंडा हो गया था। लेकिन हमें खोजनेके लिअे अब तक कोअी बाहर नहीं गया था। हम चोरकी तरह अन्दर जाकर चुपचाप हाथ-पैर धोकर भोजन करने बैठ गये।

यह तो अब याद नहीं कि अुस रात जंगलके सपने देखे या नहीं!।

४९

गणित-बुद्धि

पढ़ाअीके सभी विषयोंमें गणित कुछ खास बातोंमें सबसे भिन्न रहता है। हाअीस्कूल-कॉलेजमें मेरा गणित पहले नंबरका माना जाता था। अिस विषयके साथ मेरा प्रथम परिचय कैसे हुआ, अुसका स्मरण आज भी ताज़ा और स्पष्ट है।

सातारामें जब मैं मदरसे जाने लगा, तब सिर्फ़ सौ तक गिनती लिखनेका ही काम था। पहाड़े मैं कब सीखा अिसकी मुझे याद नहीं। लेकिन अितना याद है कि स्कूलमें रोज़ाना शामको छुट्टी होनेसे पहले हम सब लड़के ज़ोर-ज़ोरसे पहाड़े बोलते। जब स्कूल न रहता, तब शामको या सोनेसे पहले मुझे पिताजीके सामने बैठकर पहाड़े बोलने पड़ते थे। कअी बार पहाड़े बोलते-बोलते ही मुझे नींद आती और मुंहके शब्द मुंहमें ही रह जाते। लेकिन अंक और पहाड़ोंको तो गणित नहीं कहा जा सकता।

मेरे गणितका प्रारंभ कारवारकी मराठी पाठशालामें हुआ। सखाराम मास्टर नामक अेक असंस्कारी, अहंमन्य और आलसी बनिया हमें पढ़ाता था। वह खुद कुछ नहीं पढ़ाता था। तिमाप्पा नामक अेक होशियार लड़का हमारी क्लासमें था, वही हमें जोड़ सिखाता था। गणितकी बुद्धि मुझमें अुस वक़्त तक पैदा ही नहीं हुअी थी। अिसलिअे क्लासमें पढ़ाया जानेवाला कुछ भी मेरी समझमें नहीं आता था। हम सब लड़के अेक कतारमें खड़े हो जाते। मास्टर साहब या तिमाप्पा दो, तीन या चार जितनी भी संख्याअें लिखाते, हम लिख लेते। फिर जब हुक्म छूटता कि, 'बस, अब अिनका जोड़ लगाओ।' तब मैं सारी संख्याओंके नीचे अेक आड़ी लकीर खींचकर

अुसके नीचे जो भी और जितने भी अंक मनमें आते, लिख डालता। मेरे पास गिनती करनेका झगड़ा ही न था। अतः भूले-चूके भी जोड़ सही आनेकी गुंजाअिश न रहती। बेचारा तिमाप्पा मेरी ग़लती खोजकर मुझे बतलाने लगता, लेकिन जहाँ गिनती ही न की गयी हो, वहाँ गलती भी कहाँसे मिले?

तिमाप्पा अपनी शक्तिके मुताबिक मुझे सवाल समझानेका प्रयत्न करता, लेकिन मेरे दिमाग़में गणितकी खिड़की ही नहीं बनी थी, जो खुल जाती। अैसी हालतमें वह भी क्या करता और मैं भी क्या करता?

फिर भी अुसने हिम्मत नहीं छोड़ी। मैं जब सवाल हल (?) करने लगता, तब तिमाप्पा आकर मेरे पीछे खड़ा हो जाता। अुसे सबसे पहले यह पता चला कि मैं जोड़ लगाते समय दाहिनी ओरसे बाअीं ओर जानेके बजाय सीधा बाअीं ओरसे दाहिनी ओर आँकड़े लिख डालता हूँ। अुसने कहा, "यों नहीं। जोड़ लगाते समय दाहिनी ओरसे बाअीं ओर जाना चाहिये।" दूसरे सवालमें मैंने अिसके अनुसार सुधार किया। मैं अंक दाहिनी ओरसे बाअीं ओर लिखने लगा। अुसमें अपने रामका क्या बिगड़ता था? चाहे जैसे अंक ही तो लिख डालने थे! अिस काममें तो मैं आसानीसे सव्यसाची बन गया!

लेकिन अिससे तो झंझट और भी बढ़ गयी। मैं कोअी अंक लिखता तो तिमाप्पा मुझसे पूछता, "अँ, यह कहाँसे लाया? मुझे गिनकर बता तो!" मुसीबत आ पड़ने पर मनुष्यको युक्ति सूझ ही जाती है। मैंने तिमाप्पासे कहा, "तू मेरे पीछे खड़ा रहकर मुझ पर निगरानी रखता है, अिसलिअे मैं घबड़ा जाता हूँ और गिनती नहीं कर पाता।" यह अिलाज रामबाण सिद्ध हुआ। अुसने मेरा नाम लेना छोड़ दिया।

बाकी, गुणा और भाग मैंने पूनाके नूतन मराठी विद्यालयमें पढ़ा। वहाँ पर मेरे लगभग आधे सवाल सही निकलते थे। गणितकी चारों विधियोंकी रीतियाँ तो मैं सीख गया था, फिर भी अभी तक मुझमें गणित-बुद्धि पैदा नहीं हुअी थी। फिर आया लघुत्तमापवर्तक और महत्तमापवर्तक। यह बादमें कारवार जाने पर वहाँ घनश्याम मास्टरके पास सीखना पड़ा। घनश्याम मास्टर भी सखाराम मास्टरका ही भाअीबन्द था। वह भी बिलकुल असंस्कारी था। लेकिन आलस्यमें कुछ कच्चा था, अिसलिअे क्लासमें बहुत-कुछ सवाल हो जाते थे। भिन्न और त्रैराशिकके समय मैं शाहपुरकी पाठशालामें था। वहाँ माधवराव तिनअीकर मास्टर गणितमें बहुत प्रवीण थे। अुन्होंने मुझे बहुत हैरान किया। वे गणितमें तो अपना सानी नहीं रखते थे; लेकिन विद्यार्थी-मन जैसी भी कोअी चीज़ होती है, यह बात शायद अुनके स्वप्नमें भी नहीं आयी थी। अुन्हें विद्यार्थियोंसे बहुत प्रेम था। वे अिस बातके लिअे सदा अुत्सुक रहते कि विद्यार्थी खूब पढ़ें-लिखें। और अिसीलिअे मेरी शामत आयी। अगर वे लापरवाह होते तो मैं मज़ेमें रह जाता। लेकिन वे तो अेक भी लड़केको नहीं छोड़ते थे। कभी-कभी छुट्टीके दिन वे लड़कोंको घर पर भी बुलाते और अुनका घर हमारी ही गलीमें होनेसे वहाँ गये बग़ैर चारा न रहता।

थोड़ा-सा विषयान्तर करके मैं अिस ज़मानेका अेक दूसरा अनुभव यहाँ देता हूँ। माधवराव मास्टर सनातन शिक्षण-पद्धतिसे क्लासमें तरह-तरहके सवाल पूछते। अेकको नहीं आता तो दूसरे लड़केसे पूछते। जिसको सही जवाब आ जाता वह अूपर चढ़ जाता। यह अूपर चढ़ जानेका तरीक़ा अच्छा हो या बुरा, हम अुसके आदी बन गये थे। लेकिन माधवराव मास्टरका तरीक़ा अिससे भी आगे बढ़ गया था। सही जवाबवाला लड़का जितने लड़कों पर विजय प्राप्त करके अूपर जाता, अुतने लड़कोंको बायें हाथसे अुनकी नाक पकड़कर दाहिने हाथसे अेक-अेक तमाचा मारनेका हुक्म अुसे दिया

जाता। यह जंगली तरीक़ा हमारे मास्टर साहब जैसे ही चंद जंगली लड़कोंको ख़ूब पसन्द आता; लेकिन शेष सबको अुससे बड़ी तकलीफ़ होती। अगर विजयी लड़का दूसरोंको तमाचा न लगाता, तो जिस तरह रोमन लोग कुश्ती लड़नेवाले ग्लॉडिअेटरोंको सज़ा देते थे, अुसी तरह हमारे हेडमास्टर (माधवराव हमारे मदरसेके प्रधानाध्यापक भी थे।) नाराज़ होते और अुस विजयी लड़केको ही पीट देते।

अेक बार मैं और गोंदू अेक ही कक्षामें — मराठी चौथीमें — आ गये। गोंदू अूपरके नम्बर पर था, मैं नीचे था। माधवराव मास्टरने गोंदूको कोअी सवाल पूछा। अुसे वह नहीं आया। मैंने झटसे जवाब दिया और ख़ुशी-ख़ुशी गोंदूसे अूपर जा बैठा। अितनेमें माधवराव मास्टर बोले, 'ना! अैसे नहीं जा सकता। बड़ा भाअी हुआ तो क्या? अुसकी नाक पकड़कर तमाचा मार और फिर अूपर जा।" मैंने कहा, "जी नहीं, यह मुझसे न होगा।" माधवराव मास्टर ग़ुस्सा हुअे। कहने लगे, "बड़ा आया है रामका भाअी लक्ष्मण!" मैं तो खड़ा ही रहा। माधवराव मास्टरको अब धर्मचर्चा सूझी। कहने लगे, "बड़े भाअीका अपमान करनेमें अधर्म होता है, और गुरुकी आज्ञाका भंग करनेमें अधर्म नहीं होता?" अब क्या किया जाय? मनमें विचार आया — 'घरमें कअी बार गोंदूसे लड़ता हूँ और मारपीट करता हूँ। यहाँ अिसे अेक तमाचा लगा दूँ तो क्या हर्ज़ है? गुरु तो पिताके समान हैं। अुनकी आज्ञा कैसे टाली जा सकती है?' मैंने गोंदूकी नाक तो पकड़ी, लेकिन दाहिना हाथ चलता ही न था। गोंदूकी मुखमुद्रा देखकर मैं बेचैन हो गया। मैंने अुसकी नाक छोड़ दी और मास्टर साहबसे कहा — 'मुझे नंबर नहीं चाहिये। मैं नीचे बैठनेको तैयार हूँ।' मेरी दिक़्क़त, दुविधा और भावना समझने जितनी शक्ति अुनमें नहीं थी, अिसमें अुन बेचारोंका क्या दोष? अुन्होंने मुझे पास बुलाकर अेक गरम-गरम छड़ी चखा दी। छड़ी खाकर मैं रोता-रोता अपनी जगह पर जा बैठा। गोंदू पर

क्या बीत रही होगी, अिसकी मुझे कल्पना थी। अतः मैंने अुसकी तरफ़ देखा तक नहीं और मनमें निश्चय किया कि आअिंदा पाठशालामें रोज़ाना देरसे आअूँगा। मेरे लिअे वैसा करना बिलकुल कठिन नहीं था। अुसके कारण अेकाध घंटा खड़ा रहना पड़े तो भी आख़िरी नंबर तो मिल ही जायगा। फिर मैं अेक भी सवालका जवाब नहीं दूँगा। जिससे किसीके हाथों तमाचा भी नहीं खाना पड़ेगा और न किसीको मारना ही पड़ेगा। मैं यक़ीनके साथ नहीं कह सकता कि अिस निश्चयको मैं अंत तक निभा सका हूँगा। लेकिन अिसमें कोअी शक नहीं कि गोंदूका अपमान करनेकी नौबत फिर मुझ पर कभी नहीं आयी।

मुझमें गणित-बुद्धि अंग्रेज़ीकी पहली कक्षामें जाग्रत हुअी। हमारे अेक जोशी मास्टर थे। हम अुन्हें वाकसकर या अैसे ही किसी नामसे पहचानते थे। लेकिन वे अपने दस्तख़त करते वक़्त जोशी ही लिखते थे। अुन्होंने हमें त्रैराशिकका रहस्य अच्छी तरह समझाया। अुन्होंने बताया कि गणित तो दुनियाका रोज़मर्राका मामूली व्यवहार है। अिस व्यवहारको हम समझ गये कि फिर तो सब त्रैराशिक ही है। अिसी कक्षामें मेरी गणितकी नींव पक्की हुअी। गणितका स्वरूप मेरे ध्यानमें आ गया और तबसे सवाल हल करनेमें मिलनेवाले गणितानंदका रस मैं चखने लगा। मेरे सारे सवाल सही निकलने लगे। मुझमें आत्मविश्वास पैदा हो गया और तबसे मैं क्लासके दूसरे पिछड़े हुअे लड़कोंको गणित सीखने और सवाल हल करनेमें मदद करने लगा। फ़ुरसतके वक़्त क्लासके लड़कोंको केवल शौक़के तौर पर गणित पढ़ानेका मेरा यह काम कॉलेजमें अिन्टरकी परीक्षा तक चलता रहा। अुसके बाद गणितसे मेरा सम्बन्ध छूट गया।

५०

भाअूका अुपदेश

अंग्रेज़ी दूसरी कक्षामें मैं कारवारके हिन्दू स्कूलमें था। वहाँ हमारे अुत्साही शिक्षक दूसरी कक्षामें ही गणितका विषय अंग्रेज़ीमें पढ़ाते थे। मेरी समझमें कुछ भी नहीं आता था, क्योंकि मेरे लिअे वह ढंग बिलकुल ही नया था। दूसरे लड़कोंने भाषा समझे बग़ैर सवालका अर्थ अनुमानसे समझ लेनेकी कला प्राप्त कर ली थी। मेरा गणित अच्छा था। लेकिन भाषा समझमें न आनेके कारण मैं अपंग-सा बन गया था। हम लड़के जब घर पर सवाल छुड़ाने बैठते, तो मैं अुनसे सवालका अर्थ समझ लेता, और फिर अुन्हींको सवाल समझा देता।

स्कूलमें दाखिल हुअे कुछ ही दिन बीते होंगे कि हमारी सत्रान्त (terminal) परीक्षा आयी। मुझे आशा थी कि मैं गणितमें पहला रहूँगा। लेकिन हुआ अुससे अुलटा। गणितमें मुझे सात या दस ही नंबर मिले। दूसरे लड़कोंके परचे मैंने देखे। कअी लड़कोंके अुत्तर गलत थे, लेकिन सवालकी रीति सही थी, अिसलिअे शिक्षकने अुन्हें आधा सही मानकर कुछ नम्बर दिये थे। यह देखकर मुझे आशा हुअी कि मुझे भी अैसे नम्बर मिलेंगे। नापास होनेका आघात तो था ही, लेकिन निराशामें भी आशा तो मनुष्यको आखिर तक रहती ही है। मैं शिक्षकके पास गया। रोवा-सा तो हो ही गया था। मैंने अुनसे कहा, 'आपने कितने ही लड़कोंको आधे सही सवालोंके नम्बर दिये हैं। मुझे भी अैसे नम्बर मिल सकते हैं।' शिक्षक मेरी बात ठीक तरहसे न समझ पाये। वे नाराज़ होकर कहने लगे, 'मेरे निर्णय पर तुझे आपत्ति है? मुझ पर पक्षपातका आरोप रखता है? मैं तेरा

पर्चा नहीं देखता, जा।' मैंने दीन बनकर फिर कहा, 'मेरा यह सवाल तो फिरसे देखिये।' अुन्होंने मेरा पर्चा हाथमें लिया और गुस्सेसे दूर फेंक दिया।

मेरी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी। सवेरे ग्यारह बजेका समय होगा। बहती हुअी आँखोंके साथ ही मैं घर पहुँचा। नहाने-जीमनेका सूझता ही कैसे? अेक कोनेमें बैठकर सिसक-सिसककर रोने लगा। वहाँ भाअू आया। (केशूको हम अब भाअू कहने लगे थे।) अुसने मेरी बात पूछी। जैसे-जैसे बोलनेका प्रयत्न करता, वैसे-वैसे रोनेका अुबाल ज्यादा जोरसे अुठता। निचला ओंठ बिलकुल नीचे मुड़ गया था। भाअूने मुझे चुप करके फिरसे मेरी बात पूछी। मैंने अुसे सब कुछ कह सुनाया। वह बड़े प्यारसे मेरा पर्चा देख गया। फिर कहने लगा, 'तेरे शिक्षकने पक्षपात किया है या नहीं, अिस बातमें मैं नहीं अुतरना चाहता। लेकिन सवालको आधा सही माननेका रिवाज ही ग़लत है। अिस ग़लत रिवाज़से यदि दूसरे लड़कोंको ज्यादा नंबर मिले, तो अुससे क्या हुआ? तुझे अैसे भीखके नम्बरोंकी आशा रखनेमें शरम आनी चाहिये। और मान ले कि तेरे अेक-दो सवालोंको आधा सही मानकर नम्बर दिये भी जाते, तो अुससे तेरा जोड़ कितना बढ़नेवाला था? मैं नहीं मानता कि अितना करने पर भी पंद्रह या सत्रहसे ज्यादा नंबर तुझे मिलते। तो फिर दस नंबरसे फेल हुआ तो क्या और सत्रह नंबरसे फेल होता तो क्या? फेल होनेकी बदनामी तो समान ही है। तू फेल हुआ अिसका मुझे दुःख नहीं है, लेकिन मुझे शरम तो अिस बातकी आती है कि तूने दयाके नंबरोंकी आशा की।'

यह सुनकर मैं अितना झेंपा कि रोना भी भूल गया। भोजनके बाद भाअूने मुझे फिर बुलाया और पूछा, 'तेरा गणित तो अच्छा था। फिर अैसा क्यों हुआ?' मेरी आँखोंसे फिर गंगा-जमना बहने लगी। तब भाअू मुझे अपने पास बैठाकर मेरी कुछ तारीफ़ करते हुअे

सहलाने लगा, और फिर अुसने वही सवाल पूछा। मैंने रोते रोते कहा, 'यहाँ सब अंग्रेज़ीमें चलता है। वह मेरी समझमें नहीं आता। सवालका अर्थ ही जब ग़लत समझ लेता हूँ, तो गाड़ी आगे कैसे बढ़े?' भाअू कहने लगा, 'बस, अितनी ही बात है न? चल, मैं कलसे तुझे सवालोंका अर्थ बतलाता जाअूँगा। फिर तो कुछ मुश्किल नहीं है न?' भाअूने मेरे लिअे काफ़ी मेहनत की। मुझे तो सिर्फ़ अर्थके लिअे ही मदद चाहिये थी। और हिन्दू स्कूलके कारण थोड़े ही दिनोंमें मेरा अंग्रेज़ीका ज्ञान भी काफ़ी बढ़ गया। फिर तो मैं गणितमें पहला आने लगा। हरि मास्टरको आश्चर्य हुआ कि यह लड़का अेकाअेक गणितमें कैसे अितना तेज़ हो गया! लेकिन अुन्हें क्या मालूम कि गणित मेरा ख़ास विषय था और अंग्रेज़ी ही मेरे लिअे बाधक थी? गणितमें मेरी प्रगति देखकर वे प्रसन्न हुअे और मैं अपने हकका प्रथम स्थान पाकर प्रसन्न हुआ।

भाअूकी मदद क़ीमती साबित हुअी। लेकिन दयाका लोभ न रखनेकी अुसकी सीख ज़्यादा क़ीमती थी, यह बात मैं अुस वक़्त भी समझ गया था।

५१

जगन्नाथ बाबा

जगन्नाथ बाबा पुराने ज़मानेके संस्कारी हरिदासों (कथावाचकों) के अच्छे प्रतिनिधि थे। महाराष्ट्रमें हरिदास समाज-सेवकोंका अेक विशेष वर्ग है। मनोरंजन, धर्म-प्रवचन, कथा-प्रसंग और संगीत आदि तत्त्वोंका लोकभोग्य संमिश्रण करनेवाले हरिदासोंके अिस प्रयोगको महाराष्ट्रमें कीर्तन कहते हैं। ये कीर्तन सुननेके लिअे लोग हमेशा ही बड़ी संख्यामें अुपस्थित रहते आये हैं। रातको जल्दी भोजन करके लोग कीर्तन सुनने मंदिरोंमें जाते हैं। कीर्तनके पूर्वरंगमें किसी धार्मिक सिद्धान्तका प्रमाणसहित किन्तु दिलचस्प विवरण होता है। अुत्तररंगमें अुसी सिद्धान्तको स्पष्ट करनेवाला कोअी पौराणिक आख्यान रसयुक्त वाणी और काव्यमय पद्यगीतोंके साथ कहा जाता है। कभी वार्ता-कथनकी वर्णनात्मक शैली आती है, कभी संभाषणोंका अभिनय शुरू हो जाता है, कभी कुशल वार्तालाप और अुक्तियाँ छिड़ती हैं तथा चतुराअी अेवं हास्यरसकी झड़ी लग जाती है, तो कभी करुणाके अनिरुद्ध प्रवाहमें सारी सभा शराबोर होकर रोने लगती है। यह कीर्तन-संस्था लोकशिक्षणका क़ीमती कार्य बहुत अच्छी तरह करती थी। यों जनताको रातके फ़ुरसतके समय काव्य-शास्त्र-विनोदके साथ धर्मबोधकी क़ीमती शिक्षा सहज ही मिल जाती थी। अुसमें चारणोंका-सा जोश नहीं था सो बात नहीं, लेकिन संस्कारिता अधिक थी। पुराणिककी कथाकी अपेक्षा हरिदासका कीर्तन ज़्यादा लोकप्रिय था। अनपढ़ स्त्रियोंके लिअे तो वह बड़ी दावतका काम करता था। अैसे अुदाहरण भी हैं जिनमें भावुक किन्तु क्षीणबुद्धि बहनें धर्मावेशमें अिन हरिदासोंके पीछे पागल हो गयीं हैं।

कारवारमें जगन्नाथ बाबा हमारे पड़ोसमें आकर रहे थे। पूरा अेक महीना रहे होंगे। अुनका रहन-सहन और बर्ताव अत्यन्त ही निर्मल था, अैसी मुझ पर छाप है। हमारे यहाँ आकर वे घंटों बिताते। व्युत्पत्तिशास्त्रमें वे अपना सानी नहीं रखते थे। अुस समय मैं अंग्रेज़ी दूसरीमें था। हमारा गणित चलता रहता। जगन्नाथ बाबाको गणितका बड़ा शौक़ था। अेक दिन अेक सवालमें मुझे अुलझा हुआ देखकर अुन्हें जोश आया और अुन्होंने मेरा पीछा पकड़ा। सवेरे, दोपहरको, शामको, जब भी मुझे फ़ुरसत होती, वे मुझे पकड़कर बैठाते और गणितके तरह-तरहके सवाल समझाते, नअी-नअी रीतियाँ बतलाते। अुस वक़्त मैं गणितमें कुछ ज़्यादा होशियार माना जाता था। अिसी कारण जगन्नाथ बाबाने मुझे पकड़ लिया होगा। घड़ीकी सूअियाँ आमने सामने कब आती हैं, आमने सामने दौड़नेवाली रेल-गाड़ियोंके सवाल कैसे हल करने चाहियें, अिधर चरागाहकी घास बढ़ती जाय और अुधर गायें चरती रहें, तो अुसका हिसाब कैसे करना चाहिये, विद्यार्थियोंकी याददाश्तके समान टूटे-फूटे हौज़का पानी कितने समयमें भर जायेगा या बह जायेगा यह कैसे खोज निकालें आदि बातें अुन्होंने मुझे बतायीं। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि अेक वर्षका गणित अुन्होंने अेक महीनेमें ही पूरा कर दिया। मुझे भी अुनके तरीक़ेमें अितना मज़ा आने लगा कि दूसरे दिनसे ही अुनके हाथसे छूटनेका प्रयत्न मैंने छोड़ दिया। गणिती विचार किस प्रकार किया जाना चाहिये, अिसकी कुंजी अुन्होंने मुझे दे दी। मसलन् सवालमें कितनी चीज़ें दी हुअी हैं और कौन-कौनसी खोज निकालनी हैं, अिसका पृथक्करण करना अुन्होंने मुझे सिखाया; और दी हुअी चीज़ों परसे अज्ञात जवाबका अन्दाज़ा कैसे लगाया जाय, अिसका रहस्य ही मानो अुन्होंने मुझमें अुड़ेल दिया। यह बात मेरी समझमें आ गयी कि गणितका हर सवाल मानो अेक सीढ़ी है, जिसे हम स्वयं ही बनाते हैं और अुस पर चढ़कर हम जवाब तक पहुँच जाते हैं।

रातको जीम लेनेके बाद पेट पर हाथ फेरते हुअे और 'होअियाँ' करके ज़ोरसे डकारते हुअे वे हमारे यहाँ आसन जमाते और मोरोपंतकी आर्या छेड़ देते। मोरोपन्तकी आर्या कभी-कभी तो मराठी प्रत्ययोंवाला संस्कृत काव्य ही होता है। अिन आर्याओंका जिसने काफ़ी अध्ययन किया है, अुसे बिना पढ़े ही संस्कृतका बहुत-कुछ ज्ञान हो जाता है। महाराष्ट्रमें संस्कृतका अभ्यास अितना ज़्यादा है, अुसका कारण यह है कि वहाँ पर पुराने मराठी कवियोंका अध्ययन रसपूर्वक अेवं व्युत्पत्ति-सहित चलता आया है।

जगन्नाथ बाबा अितिहास-भूगोलकी भी काफ़ी जानकारी रखते थे। पतले काग़ज़ोंके पतंग और दीवालीके अकास-दीये वग़ैरा बनाना भी अुन्हें ख़ूब आता था। अिससे लड़कोंकी टोली अुन्हें सदा घेरे रहती थी। लेकिन आजकलके कुछ शिक्षकोंकी तरह वे बेढंगे या विद्यार्थियोंके पीछे दीवाने बने हुअे नहीं थे। कोअी विद्यार्थी बहुत चिकनी-चुपड़ी बातें करने लगता, तो वह अुनसे बर्दाश्त न होता। कोअी नाज़ुक लड़का बहुत पास आकर बैठता या गले पड़ता, तो अुसे तमाचा ही मिलता। कोअी लड़का ज़रा भी बनने-ठननेका प्रयत्न करता, तो दूसरे बालकोंके सामने अुसकी छीछालेदर होती। अेक लड़का बेहद नज़ाकत-पसन्द था। जब मामूली टीका-टिप्पणीका अुस पर कोअी असर न हुआ तो चिढ़कर बाबा बोले, "अरे, कोअी बाज़ार जाकर दो पैसेकी चूड़ियाँ तो ले आओ। अिस लड़कीको पहनानी चाहिये। घघरी तो अिसकी बहन अिसे मुफ्त दे देगी!"

अैसे शिक्षक आजकल दिखाअी नहीं देते। बाबा कहा करते, "शिक्षकोंका मर्दाना स्वभाव ही विद्यार्थियोंके चारित्र्यका बीमा है।"

अेक दिन मैंने स्कूलमें हरि मास्टर साहबको जगन्नाथ बाबाकी संस्कारिताकी बात कही। मुझे लगा कि हरि मास्टरको अुसमें कोअी ख़ास बात नहीं मालूम हुअी। लेकिन थोड़े ही दिनोंमें जब हमारे

स्कूलमें रविवारकी शामको जगन्नाथ बाबाका कीर्तन होनेकी बात ज़ाहिर हुअी, तब मुझे बहुत आनन्द हुआ। कारवारके हिन्दू समाजके सभी प्रतिष्ठित सज्जन और सरकारी अफ़सर अुस दिन कीर्तनमें आये थे। जगन्नाथ बाबाने सादी सफ़ेद धोती, अुस पर रामदासी पंथकी भगवी कफनी और सिर पर भगवा साफा — यह पोशाक पहनी थी। घण्टों तक अुनका कीर्तन अस्खलित वाणीमें चलता रहा। अुसके पूर्वरंगकी अेक ही बात अब मुझे याद है। षड्रिपुओंका आकर्षण कितना खतरनाक होता है और अुससे सच्चा सुख तो मिलता ही नहीं, अिसका विवेचन करते हुअे जब कामविकारका ज़िक्र आया तब वे कहने लगे, 'बिलकुल सूखी हुअी निर्मांस हड्डीको चबाते-चबाते अपने ही दाँतोंसे निकलनेवाले खूनको चाटकर खुश होनेवाले कुत्तेमें और कामी मनुष्यमें ज़रा भी अंतर नहीं है।'

जगन्नाथ बाबा कहाँसे आये थे, कहाँके रहनेवाले थे और कहाँ गये अिसका मुझे कुछ भी पता नहीं। अुनके पढ़ाये हुअे सवालोंको भी अब मैं भूल गया हूँ। लेकिन गणितमें दिलचस्पी पैदा करनेवाले चार व्यक्तियोंमें अुनका स्थान हमेशा रहा है। अुनकी याद करायी हुअी आर्याअें भी अब मैं भूल गया हूँ। लेकिन वह कुत्तेका दृष्टान्त मुझे आज भी याद है और वह आज भी अुपयुक्त है।

५२

कपाल-युद्ध

शरीरसे मैं बचपनसे दुर्बल था। घरेलू मामलोंमें तो सविनय आज्ञाभंग करके मैं अपने व्यक्तित्वकी रक्षा कर लेता था, लेकिन पाठ-शालामें यह बात कैसे चलती? अतः कअी बार खेल-क़वायदों, जलसों, और सैर-सफ़र जैसे सामुदायिक कार्यक्रमोंसे मैं खिसक जाता या अनुपस्थित रहता। अिस प्रकार जीवनको संकुचित करके ही मैं अपने स्कूलके दिनोंको अपने लिअे सुखपूर्ण बना सका था। लेकिन फिर भी कभी-कभी बड़ी आफत आ पड़ती। अिसके लिअे, अैसी ही अेक आपत्तिके समय मैंने अेक शस्त्र खोज लिया था, जो मेरे लिअे चार-पाँच भिन्न-भिन्न प्रसंगों पर संकटनिवारक साबित हुआ।

देवीदास पै मेरा जानी दोस्त था। हम दोनों सरकारी अधि-कारियोंके लड़के थे और दोनों बातूनी भी। अिसीलिअे शायद हमारी दोस्ती हो गयी थी। अेक दिन बरसातमें समुद्रमें बड़ा तूफ़ान अुठा था। बड़ी-बड़ी लहरें रास्तेके बाँध पर आकर टकरातीं और वापस लौटतीं। ये लौटती हुअी लहरें आनेवाली लहरोंसे टकरातीं। लेकिन चूँकि वे समानान्तर नहीं, बल्कि कुछ तिरछी होतीं, अिसलिअे आमने सामनेकी लहरोंकी कैंची बन जाती। और अुन दोनोंके मिलापसे फव्वारेकी तरह मजेदार मोटी धारा आकाशमें अुड़ती और अेक सिरेसे दूसरे सिरे तक दौड़ जाती। जिसने यह शोभा देखी हो, वही अिसका आनन्द समझ सकता है।

साँय-साँय हवा चल रही थी। बरसातकी झड़ी लगी हुअी थी; और हम दोनों भीगे हुअे कपड़ोंसे अुस शोभाको देख रहे थे। अिस हालतमें न जाने कितना समय बीता होगा। लेकिन आखिर अिस

डरसे कि घरके लोग नाराज़ होंगे, हमने होशमें आकर लौटनेका अिरादा किया। अितनेमें न जाने क्यों, हम दोनों लड़ पड़े। लड़ते-लड़ते हम दोनों (अितनी बारिशके होते हुअे भी) गर्म हो गये। देवीदास मेरी नसको बराबर जानता था। अुसने मेरे अेक-दो घूँसे खाये कि तुरन्त ही ज़ोरसे मेरी दोनों कलाअियाँ पकड़ लीं। मेरी सारी कमज़ोरी कलाअियोंमें ही थी। मैंने बहुत अुखाड़-पछाड़ की, फिर भी मेरे हाथ छूटते न थे और अिसलिअे अुसे पीटनेका मौक़ा मुझे नहीं मिल रहा था। हम दोनोंकी अुम्र वैसे तो समान थी, लेकिन वह ताक़तवर, मोटाताज़ा और मज़बूत था। अुसके आगे मेरा कुछ न चलता था। शर्मके मारे मेरा गुस्सा और भी भड़क अुठा।

अितनेमें मुझे अेक तरकीब सूझी और सूझते ही मैंने अुस पर अमल कर दिया। धड़ामसे मैंने अपना सिर अुसकी कनपटी पर हथौड़ेकी तरह दे मारा। बेचारा अेकदम लालसुर्ख हो गया। अुसे यह भी खयाल न रहा कि अुसके हाथोंकी पकड़ कब छूट गयी और वह ज़मीन पर गिर गया।

हमारा झगड़ा मामूली ही था और हमारा क्रोध भी क्षणिक ही था। अुसे नीचे गिरा हुआ देखकर मुझे दुःख हुआ। मैंने हाथ पकड़कर अुसे अुठाया, अुसके कपड़ों पर लगा हुआ कीचड़ झटक दिया और दोनों पहले जैसे ही दोस्त बनकर घर आये। रास्तेमें देवीदास कहने लगा — 'मुझे पता न था कि तू अितना जल्लाद होगा।' मैंने कहा — 'अुस बातको तू अब भूल जा। मुझे कहाँ पता था कि कनपटी पर अितनी ज़ोरसे चोट लगती है?'

अिसी शस्त्रका प्रयोग मैंने बादमें दो बार शाहपुरमें किया था। अेक बार तो अेक अत्यन्त प्रेमी मित्रके आग्रहसे छूटनेके लिअे। और दूसरी बार शाहपुरकी पाठशालाके अखाड़ेमें अेक कसरतबाज़ लड़केने मेरे सामने मुँहसे कोअी गन्दी बात निकाली थी तब अुसे सज़ा देनेके लिअे। दूसरी बार विरोधी भी काफ़ी मज़बूत था। अुसे जितना

लगा, अुससे ज्यादा मुझे ही लगा होगा। लेकिन मैंने अुसे प्रकट नहीं होने दिया। और मुझे कमज़ोर समझनेवाले अुस अखाड़ेबाज़ लड़केको हमेशाके लिअे सबक़ मिल गया। आख़िरी बार मैंने अिस शस्त्रका अुपयोग फर्ग्युसन कॉलेजमें जीवतराम (आचार्य जे० बी०) कृपालानीके ख़िलाफ़ किया था; लेकिन अिसका ज़िक्र तो फिर कभी आयेगा।

५३

प्रेमल बाळिगा

पिताजीका तबादला होनेके कारण हमें स्थायी रूपसे कारवार छोड़कर धारवाड़ जाना पड़ा। मुझे हिन्दू स्कूल छोड़ना अच्छा तो नहीं लग रहा था, लेकिन मुसाफ़िरी करनेको मिलेगी, अिस आनन्दका आकर्षण अुससे अधिक था। मैंने पाठशालाके सभी दोस्तोंसे जब कह दिया कि हम कारवार छोड़कर जानेवाले हैं, तो सब लोग मेरे साथ विशेष प्रेमसे बातें करने लगे।

देवीदास पै तो मेरा अभिन्नहृदय मित्र था। अुसको साथ लेकर मैं तीन-चार दिन तक लगातार समुद्र-किनारे टहलने गया। रामचंद्र अंगड़ी मुझसे अुम्रमें बड़ा था, लेकिन अुसके साथ भी गहरी दोस्ती थी। वह शहरके दूसरे सिरे पर बहुत दूर रहता था, अिसलिअे अुससे स्कूलमें ही मुलाक़ात हो सकती थी। हमारे वर्गमें जिनके साथ मेरा विचार-विनिमय होता था अैसे ये दो ही मित्र थे।

अिनके अलावा बाळिगा नामका अेक तीसरा लड़का था। अुसका और मेरा बौद्धिक स्तर समान न था। अुसे स्कूली किताबोंके अलावा अन्य चर्चामें कोअी दिलचस्पी नहीं थी; लेकिन हमारे बीच घनिष्ठ प्रेम था। सच कहा जाय तो जितना मैं अुसे चाहता था, अुससे

अधिक वही मुझे चाहता था। जब अुसे मालूम हुआ कि मैं हमेशाके लिअे कारवार छोड़कर जा रहा हूँ, तो अुसकी आँखें छलछला अुठीं।

बाळिगा किसी मालदार आदमीका लड़का नहीं था। अुसकी अेक चायकी होटल और अेक बासा (भोजनगृह) था। हिन्दू स्कूलके पवित्र वातावरणमें हम सामाजिक प्रतिष्ठा, जातिका अभिमान, बुद्धिमत्ताकी शान, धर्मभेदकी संकीर्णता आदि सब कुछ भूलकर चारित्र्य अेवं सद्भावनाको पहचानना सीख गये थे। आज भी मेरी दृष्टिमें सभी लोग समान हैं। पैसेसे, विद्वत्तासे, अितना ही नहीं बल्कि नीतिसे भी हलके माने जानेवाले लोगोंकी ओर मैं तुच्छताकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। मनुष्यकी परख अुसके हृदय परसे करनी चाहिये, अुसके सदाचार अेवं संस्कारिता पर से करनी चाहिये— अिसीमें सच्ची कुलीनता है, अैसी शिक्षा मुझे मिली है। अतः मैं अन्य दृष्टिसे देख ही नहीं सकता। यह बात नहीं कि दुन्यवी व्यवहारमें मैं अिस तरहका भेदभाव करता ही नहीं, लेकिन वह मुझसे ठीक तरह नहीं बनता। मैं जानता हूँ कि सबके साथ अेक-सा बर्ताव करनेका स्वभाव दुन्यवी मामलोंमें बाधा डालनेवाला होता है, लेकिन मुझे अुसका कुछ अफ़सोस नहीं है।

दुन्यवी मामलोंमें प्रतिष्ठित होनेका, बड़प्पन हासिल करनेका अेक ही मार्ग है। वह यह कि अपनी बराबरीके या अपनेसे छोटे लोगोंके प्रति तुच्छता अथवा लापरवाही बतलायी जाय, और बड़ी चालाकीके साथ अपनेसे श्रेष्ठ माने जानेवाले लोगोंकी ख़ुशामद करके अुनके साथ बराबरीका दिखावा किया जाय। सभामें सिर्फ़ आधा घण्टा ही क्यों न बैठना हो, तो भी यथासंभव अपनेसे बड़े लोगोंके पास ही बैठनेकी चेष्टा कअी लोग करते हैं। लेकिन अगर कोअी अुनसे छोटा आदमी अुनके पास आकर बैठ जाय, तो वह अुन्हें बिलकुल पसन्द नहीं आता। अैसे ये प्रतिष्ठाके भिखारी प्रतिष्ठाका

प्रतिग्रह तो खोजते रहते हैं, लेकिन प्रतिष्ठाका दान करनेकी नीयत अुनमें नहीं होती।

हिन्दू स्कूलकी तालीमके कारण हम सब विद्यार्थी भावनाकी कसौटीसे ही अेक-दूसरेको जाँचते। सुब्बराव दिवेकर नामक अेक लड़का था। अुसके पिता मेरे पिताके मातहत क्लर्क थे। शुरू-शुरूमें सुब्बराव मेरी कुछ ज्यादा अिज़्ज़त करता था। लेकिन जैसे हमारा परिचय बढ़ा, मैंने देखा कि अभ्यासकी नियमितता, स्कूलमें समय पर आनेका आग्रह, सबके साथ मिल-जुलकर रहनेकी कला और आम सहानुभूति आदि बातोंमें वह मुझसे बढ़कर था। अतः आगे चलकर मैं ही अुसका अधिक आदर करने लगा।

अिस दृष्टिसे बाळिगा भी अच्छे लड़कोंमें गिना जाता था। यात्रा पर निकलनेसे अेक दिन पहले बाळिगा आकर मुझसे कहने लगा, "क्या आज शामको तू मेरे साथ घूमने चलेगा?" यह सवाल अुसने अितनी नम्रतासे पूछा, मानो अुसके मनमें यह डर हो कि मैं अुसके साथ जानेसे अिनकार कर दूंगा। मुझे देवीदासके साथ बहुत बातें करनी थीं। अतः अुसके साथ घूमने जानेको मैं आतुर था, अिसलिअे बाळिगाको तो मैं अिनकार ही कर देता। लेकिन अुसकी आवाज़में अितना प्यार भरा हुआ था कि मेरी ना कहनेकी हिम्मत ही न हो सकी।

शामको हम समुद्र-किनारे बहुत दूर तक घूमने गये। वहाँ बैठकर कितनी ही बातें कीं। फिर बाळिगाने धीरेसे जेबमें से अेक बड़ा दोना निकाला। अुसमें गर्म-गर्म जलेबियाँ थीं। दोने पर दूसरा दोना ढाँककर अुसे स्वच्छ रूमालमें लपेटकर अुसने जलेबीको गर्म रखा था। मैं कुछ भी बोलता, अुससे पहले ही बाळिगाने कहा, "चुप, बोलें मत। तू ना कह ही नहीं सकता। यह तो सब खाना ही पड़ेगा। मैं तेरी अेक न सुनूंगा। मेरे गलेकी सौगन्द है, जो ना कहा तो।" समुद्रमें नहाते समय जैसे अेकके पीछे अेक आनेवाली लहरोंसे हमारा

दम घुटने लगता है, वैसा ही मेरा भी हाल हुआ। मैंने अेक जलेबी हाथमें ली और कहा—'अच्छा, तू भी खा और मैं भी खाअूं।' लेकिन वह थोड़े ही माननेवाला था। कहने लगा—'यह सब तुझीको खाना होगा।' मैंने भी ज़िद पकड़ी कि 'यदि तू नहीं खायेगा तो मैं भी नहीं खाअूंगा।' हम दोनों ज़िद्दी ठहरे। लेकिन आख़िर मैं हारा। बाळिगाने खुद तो आधी जलेबी खायी और शेष सबका भार मेरे सिर—अथवा गले—आ पड़ा।

खाते खाते मैंने अुससे पूछा, 'दूकानमें से तेरे घरवालोंने तुझे अितनी जलेबी कैसे लाने दी? तू पूछकर तो लाया है न?' दूसरा कोअी मौक़ा होता, तो वह अैसे सवालको अपना अपमान समझता और काफ़ी नाराज़ होता। लेकिन आज तो अुसके मनमें अैसी कोअी बात नहीं आ सकती थी। अुसने अितना ही कहा, 'अरे, यह क्या पूछता है? दूकानमें जाकर मैं खुद अपने हाथसे ये बनाकर लाया हूँ।' जितनी देर मैं खाता रहा, बाळिगा मेरी ओर टुकुर-टुकुर देखता रहा। मानो मैं ही अुसकी आँखोंसे खानेकी जलेबी था!

घर आकर मैंने माँसे कह दिया कि किस तरहसे मेरे मित्रन मुझे जलेबी खिलायी है, तो माँ बोली, "हाँ, अैसा ही होता है। कृष्ण और सुदामाके बीच भी अैसा ही स्नेह था। हम बड़े हो जायें, तो भी हमें अपने बचपनके मित्रोंको भूलना न चाहिये, समझा न?"

रातको फिर बाळिगा मुझसे मिलने आया। मैंने अुसे दीवालीके लिअे बनायी हुअी रंगीन कन्दील भेंट की। हम हमेशाके लिअे कारवार छोड़कर जानेवाले थे। कारवारमें पाँच-छः वर्ष रहनेके कारण घरमें बेहद सामान जमा हो गया था। अुसमें से कुछ तो हमने बेच दिया और कुछ मित्रोंके यहाँ भेज दिया। मेरे प्रति बाळिगाके प्रेमकी बात सुनकर माँके मनमें अुसके प्रति वात्सल्य पैदा हुआ था। अिसलिअे जो चीज़ बाळिगाके कामकी मालूम होती, वह माँ अुसे दे देती।

बाळिगाका भोजनालय हमारे घरसे ज्यादा दूर न था। वह दौड़ता हुआ जाकर दी हुआी चीज़ घर रख आता और फिर मुझसे बातें करने लग जाता। जब दो-तीन बार अैसा हुआ तो अुसके घरवालोंको शक हुआ कि कहीं वह ये चीज़ें बगैर पूछे तो नहीं ला रहा है! अिसलिअे अुनके घरका अेक आदमी हमारे यहाँ पूछने आया। बेचारे बाळिगा पर अेक ही दिनमें अिस प्रकार नाहक दो बार चोरीका झूठा अिल्ज़ाम लगा। भोले प्रेमकी यह क़द्र! अिस घटनाको लगभग ५० साल हो गये हैं, लेकिन बाळिगाका वह भोला प्रेम आज भी मेरे मनमें ताज़ा है।

५४

मीठी नींद

मैं सुबहकी मीठी नींदके घूंट पीता हुआ बिस्तरमें पड़ा था। घरके और सब लोग तो कभीके अुठकर प्रातर्विधिसे निबट चुके थे। न जाने कब माँ और मेरे बड़े भाअी बाबा मेरे बिस्तर पर आकर बैठ गये। आधी नींदमें मुझे ज़रा भी खयाल न था कि कितने बजे हैं, मैं कबसे सो रहा हूँ, मेरा सिर और पैर किस दिशामें हैं, बाहर रोशनी है या अँधेरा। बस, मेरे आसपास केवल मीठी नींदका आनन्द और ओढ़ी हुअी रजाअीकी गर्मी ही थी। अितनेमें माँ और बाबाकी बातचीत मेरे कानोंमें पड़ी।

"काय रे बाबा, तुला काय वाटतें? हा दत्तू कांहीं शिकतोय का?"*

---

* क्यों रे बाबा, तेरा क्या ख़याल है? यह दत्तू कुछ पढ़ता है या नहीं?

प्रश्न सुनते ही मेरे कान खड़े हो गये। अपने बारेमें जहाँ कुछ बात होती है, वहाँ ध्यान तो जाता ही है। अुसी क्षण मैंने विचार किया कि अगर मैं कुछ हरकत करूँगा, तो संभाषणका तार टूट जायेगा। मैं सो रहा हूँ, अैसा मानकर ही यह बातचीत चल रही थी। अतः मैं बिलकुल निश्चेष्ट पड़ा रहा; अितना ही नहीं, कुछ प्रयत्न करके यह भी सावधानी रखी कि साँसमें किसी तरहका परिवर्तन न होने पाये।

बाबाने जवाब दिया: 'हाँ, अिसकी शक्तिके मुताबिक पढ़ता अवश्य है।'

माँको अितनेसे ही सन्तोष न हुआ। कहने लगी, 'मैं अिसके हाथमें पुस्तक तो कभी देखती ही नहीं। सारा दिन फालतू बातोंमें गँवाता फिरता है। अेक दिन भी अैसा याद नहीं आता, जब यह समय पर पाठशाला गया हो; और रातको पहाड़े बोलते-बोलते ही सो जाता है। अिसका क्या होगा? अिसकी ज़बानमें विद्या लगेगी या नहीं?'

मेरी पढ़ाअीका अिस प्रकारका वर्णन तो मैं दिन-रात सुनता ही था। जो कोअी भी मुझ पर नाराज़ होता, वह अितने दोषोंकी नामावली तो कहता ही। पढ़ाअीके बारेमें यदि कोअी नाराज़ न होता, तो वह अकेला गोंदू था; क्योंकि वह अिन बातोंमें मुझसे भी बढ़कर था। अिससे माँके अिस सवालमें न तो मुझे कुछ नयापन लगा और न बुरा ही। मैं हूँ ही अैसा! काले आदमीको यदि कोअी काला कहे, तो वह नाराज़ क्यों हो? मुझे तनिक भी बुरा न लगा। मेरा सारा ध्यान तो बाबा क्या कहता है अुसी ओर लगा था।

बाबाने कहा, "माँ, तू व्यर्थ चिन्ता करती है। दत्तूकी बुद्धि अच्छी है। वह कोअी 'जड़' नहीं है। जब पढ़ता है तो ध्यान देकर पढ़ता है। शरीरसे कमज़ोर है, अिसलिअे दूसरे लड़कोंकी तरह लगातार घंटों तक नहीं पढ़ सकता। लेकिन अुसमें कुछ हर्ज़ नहीं। जब मैं अिसे समझाता हूँ, तब झट समझ लेता है। तू अिसकी कुछ भी फिकर मत कर।"

माँ कहने लगी: 'तू अितना यक़ीन दिलाता है, तब तो मुझे कोअी चिन्ता नहीं। पढ़ाअीके मामलोंमें मैं क्या जानूं? मैं तो अितना ही चाहती हूँ कि यह निरा बुद्धू न रह जाय। जब हम नहीं रहेंगे, तब तुम सब बड़े हो गये होगे। मेरा दत्तू सबमें छोटा है। पढ़ा-लिखा न होगा तो अिसकी बड़ी दुर्गति होगी। यह बड़ा होकर कमाने-खाने लगे, तब तक मेरी जीनेकी अिच्छा अवश्य है। दत्तूको जब मैं अच्छी तरह जमा हुआ देखूंगी, तब सुखसे आँखें मूँद लूंगी।'

अिस बातचीतको सुनते समय मेरे बालहृदयमें क्या चल रहा होगा, अिसकी कल्पना न तो माँको थी और न बड़े भाअीको ही। मेरे प्रति प्रेम और आस्था रखकर मेरे बारेमें की जानेवाली यह पहली ही बातचीत मैंने सुनी थी। डूबते हुअे मनुष्यको जब कोअी बचाकर जीवन-दान देता है, तब अुसको जैसा हर्ष होता है, वैसा ही हर्ष बड़े भाअीके शब्द सुनकर मुझे हुआ। मेरी आवारागर्दीसे माँको कितनी चिन्ता होती है, यह भी मुझे पहले-पहल ही मालूम हुआ। लेकिन अुसका मुझ पर अुस वक़्त ज़्यादा असर नहीं हुआ, और जो हुआ वह भी अधिक समय तक नहीं टिका। लेकिन बड़े भाअीके शब्दोंका असर तो स्थायी बना रहा।

बाबाकी शिक्षाकी कसौटी बहुत ही सख़्त थी। 'बाबा' की कहनेकी अपेक्षा 'अुस ज़मानेकी' कहना अधिक ठीक होगा। हमारे सामने हमारी तारीफ़ करना मानो महापाप था। सारे बुज़ुर्गोंका यह अेकमात्र कार्य होता कि वे हमारे दोषोंकी तरफ़ हमारा ध्यान आकर्षित करें। अुनमें भी बाबा तो मानो बहिश्चर कर्तव्यबुद्धि थे। क़दम-क़दम पर हमें टोकते, क़दम-क़दम पर नाराज़ होते और नाराज़ भी ज़बानकी अपेक्षा छड़ीके द्वारा ही अधिक होते। मारके डरसे मैं भाग रहा हूँ, और बाबा छड़ी लेकर मेरे पीछे दौड़ रहे हैं — अैसी दौड़के दो-चार दृश्य अभी भी मेरी दृष्टिके सामने मौजूद हैं। दौड़ते वक़्त हम दोनोंके बीचका अन्तर घटता है या बढ़ता है, यह देखनेके लिअे

में कअी बार पीछे नज़र फेंकता। यदि अुस वक़्त कोअी रसिक काव्यज्ञ खड़ा होता, तो अुसे कालिदासका 'ग्रीवाभंगाभिरामं' वाला श्लोक निश्चय ही याद आ जाता।

अिस तरहकी दौड़में कभी तो हम दोनोंके बीचका अन्तर घट जाता और कभी में सटक भी जाता। कभी-कभी किसी चीज़से ठोकर खाकर में गिर जाता और बाबाके हाथ पड़ जाता। फिर तो मुझे घंटों तक अुनके कमरेका क़ैदी बनकर रहना पड़ता। लेकिन जीवनकी दौड़में हम दोनोंके बीचका अन्तर दिन-प्रतिदिन घटता ही गया। यहाँ तक कि कभी-कभी में ही बाबाका परामर्शदाता बन जाता। हम दोनोंकी अुम्रके फ़र्क़को देखकर अपरिचित लोग हमें पिता-पुत्र समझते और दरअसल बाबाका प्रेम पिताके प्रेमके समान ही था। आगे चल कर जैसे-जैसे में अुम्रमें और विचारमें बढ़ता गया, वैसे-वैसे में बाबाके लिअे अुनके कोमल हृदयके भावों, आशा-निराशाओं, चिन्ताओं और महत्त्वाकांक्षाओंको प्रकट करनेका अेकमात्र स्थान बन गया। फिर तो हमारे सम्बन्धकी मिठास भाअी-भाअीके रिश्तेके अलावा मित्रताकी भी बन गयी। अिस मिठासका बीज अुस दिन मीठी नींदके समय सुने हुअे बाबाके वचनोंमें ही था, क्योंकि अुस दिन मुझे सचमुच 'श्रुतं श्रोतव्यम्' का अनुभव हुआ।

अभी अभी अेक मित्रसे सुना कि लोग औरोंकी त्रुटियाँ निकालने और अिलज़ाम लगानेमें अितने अुदार होते हैं, लेकिन अुचित अवसर पर किसीकी स्तुति करनेमें वे अितने कंजूस क्यों होते हैं? अेक विदेशी लेखकने कहा है कि "किसीकी स्तुति करनेसे सुननेवालोंमें ख़राबी पैदा हो जाती है, अिसलिअे किसीकी स्तुति नहीं करनी चाहिये — यह समझना वैसा ही है जैसा कि किसीका कर्ज़ अिस डरसे अदा न करना कि वह अुस पैसेका ग़लत अिस्तेमाल करेगा!"

अिस सवालका फ़ैसला कौन करे?

५५

मेरी योग्यता

स्कूल जानेवाले सभी विद्यार्थी वर्गमें प्रश्न पूछनेकी अेक रीतिसे बराबर परिचित होते हैं। सभी विद्यार्थियोंको क्रमसे बैठाया जाता है। फिर शिक्षक पहले क्रमांकसे प्रश्न पूछना शुरू करते हैं। पहला विद्यार्थी यदि प्रश्नका अुत्तर न दे सके, तो वही प्रश्न दूसरेको पूछा जाता है। दूसरा भी अुसका जवाब न दे सके तो तीसरेको। अिस तरह शिक्षक जल्दी-जल्दी हरअेकको वही सवाल पूछते हुअे आगे बढ़ते हैं। जिसका अुत्तर सही निकलता है, वह अपनी जगह परसे अुठकर सभी हारे हुअे विद्यार्थियोंसे अूपर पहले नंबर पर जा बैठता है। फिर अुसके बादके नम्बरवाले विद्यार्थीसे दूसरा कोअी प्रश्न पूछा जाता है। 'विजयी विद्यार्थी हारे हुअे सभी विद्यार्थियोंसे अूपर जा बैठे', यह अिस तरीक़ेका सर्वसाधारण नियम है। यह सही है कि अिस तरीकेसे सारे विद्यार्थी जागरूक रहते हैं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अिस तरीक़ेसे विद्यार्थियोंकी सच्ची परीक्षा होती ही है। अेक घण्टे तक अिस प्रकार प्रश्न पूछनेके बाद विद्यार्थियोंको जो क्रमांक मिलते हैं, वे कोअी अुनके अभ्यास या योग्यताके द्योतक नहीं होते। यह तो अेक प्रकारकी लॉटरी है। यदि शिक्षक पक्षपाती हो और विद्यार्थियोंको अच्छी तरह पहचानता हो, तो वह चाहे जिस विद्यार्थीको अपनी अिच्छाके अनुसार चाहे जो स्थान दिला सकता है।

प्रश्नोंकी यह लॉटरी मानव-समाजके विशाल जीवनका अेक प्रतिबिम्ब ही होता है। अिसमें सभी विद्यार्थी जाग्रत रहते हैं। चूंकि वे जानते हैं कि अुत्तर देनेमें ज्यादा समय नहीं मिलेगा, अिसलिअे वे शीघ्रमति बनते हैं, और शिक्षकका भी बहुतसा समय बच जाता

है। फिर अिससे शिक्षक और विद्यार्थियोंमें आलस्य आनेकी भी कम संभावना रहती है। आज मुझे यह पद्धति मंजूर नहीं है, क्योंकि अिसमें अनेकों दोष हैं। लेकिन छुटपनमें हमें यह तरीक़ा बहुत ही अच्छा लगता था। अिसमें यह मज़ा तो है ही कि देखते-देखते कोअी विद्यार्थी रंकसे राजा बन जाता है और राजासे रंक बननेके लिअे अुसे तैयार रहना पड़ता है। लेकिन साथ ही अुग्र तपश्चर्या करने-वाले प्रत्येक व्यक्तिसे डरते रहनेवाले स्वर्गाधिपति अिन्द्रकी तरह हमेशा सबसे डरते रहना पड़ता है; क्योंकि वर्गमें अुससे अूँचा स्थान दूसरे किसीका नहीं होता, अिसलिअे अुसे अूपर चढ़नेका आनन्द तो मिल ही नहीं सकता। अुसके सामने तो नीचे अुतरनेका ही सवाल रहता है। अिसमें खुद अुसे भले ही कोअी आनन्द न आता हो, लेकिन अुसे सदा अपने स्थानकी रक्षाके लिअे चिन्तित देखकर अन्य विद्यार्थियोंको तो अवश्य ही मजा आता है।

दूसरेकी फज़ीहतसे आनन्द प्राप्त करनेकी रजोगुणी वृत्तिवाले व्यक्तियोंको यह तरीक़ा भले ही पसन्द आये, लेकिन यह बात शायद अुस वक्तके शिक्षाशास्त्रियोंके ध्यानमें नहीं आयी थी कि अिसमें नीति-शिक्षाका नाश है।

अेक दिन हमारे वर्गमें अैसे ही प्रश्नोत्तर चल रहे थे। मैं अपने रोजानाके नियमके मुताबिक स्कूलमें देरसे गया था, और अिसलिअे अधिकारके साथ आख़िरी नंबर पर बैठा था। वहाँसे देखते-देखते मैं बीच तक तो पहुँच गया। अितनेमें वामन गुरुजीने पहले नम्बरके विद्यार्थीसे अेक कठिन प्रश्न पूछा। अुन्होंने पहलेसे मान लिया था कि अिसका जवाब किसीको नहीं आयेगा। अिसलिअे वे सभी विद्यार्थियोंसे झट-झट पूछते चले गये। मैंने बीचमें जवाब तो दे दिया, लेकिन अुस तरफ़ अुनका ध्यान ही नहीं गया। मुझे विश्वास था कि मेरा अुत्तर सही है। लेकिन अुनकी अँगुली तो तेज़ीसे आखिर तक घूम गयी। अिस तरीक़ेमें जब कोअी भी जवाब नहीं दे पाता, तब खुद शिक्षक

अपने सवालका जवाब बतला देते हैं। अिसलिअे मास्टर साहबने जवाब कह दिया। अुसे सुननेके बाद मुझसे कैसे चुप बैठा जाता? मैंने खड़े होकर कहा —'सर, यह अुत्तर तो मैंने दिया था।' मास्टर साहबको मेरी बातका विश्वास नहीं हुआ और अपना अविश्वास अुन्होंने अपनी आँखों द्वारा ज़ाहिर भी किया। मैंने फिर ज़ोर देकर कहा, 'मैं सच कहता हूँ सर, मैंने यही जवाब दिया था।' अब तो मास्टर साहबके सामने महान् धर्म-संकट आ खड़ा हुआ। अपने कान सच्चे हैं या सामनेका यह लड़का सच बोल रहा है? अुनकी अिस दिक्क़तको मैं महसूस कर रहा था। लेकिन मैं भी नाहक हार कैसे स्वीकार करता? मैं तो अपनी जगह पर ज्योंका त्यों खड़ा रहा। मास्टर साहब कुछ गुस्सा भी हुअे। अपनी कुर्सीसे अुठकर वे मेरे पास आये, और दोनों हाथोंसे मेरे कंधे पकड़कर मुझे ले जाकर पहले नंबर पर बैठाते हुअे सख्त आवाज़में बोले, 'ले बैठ यहाँ।' मैं बैठ तो गया, लेकिन अुनका वह व्यवहार देखकर बहुत बेचैन हो गया। बार-बार सारे विद्यार्थी मास्टर साहबकी तरफ़ और मेरी तरफ़ टकटकी लगाये देख रहे थे। वह भी अेक देखने जैसा दृश्य हो गया। मैं अितना परेशान हो गया कि समझमें न आता था कि क्या किया जाय। अैसा कुछ होगा अिसकी कल्पना यदि मुझे पहलेसे होती, तो मैं अिस झंझटमें पड़ता ही नहीं। पहले नम्बरका अितना मोह तो मुझे कभी था ही नहीं। कौन जाने मेरी अिस परेशानीका मास्टर साहबके दिल पर क्या असर पड़ा। अुन्होंने फिर मुझसे पूछा —'Do you think you deserve the first place?' (क्या तू मानता है कि तू पहले नंबरके योग्य है?)

अेक तो शिक्षककी नाराज़ी और अविश्वासके कारण मैं परेशान था ही; मैं तो सोच रहा था कि अिस सारी झंझटकी अपेक्षा यह अच्छा है कि भाड़में जाय वह पहला नम्बर! अुस पर मास्टर साहबके अिस प्रश्नने घाव किया। अपनी योग्यताका अुच्चारण अपने मुँहसे

करना हमारे हिन्दू सदाचारके विरुद्ध है। जो यह कहता है कि 'मैं सर्वोत्तम हूँ, मैं सुयोग्य हूँ, मैं बुद्धिमान हूँ,' वह कुलीन नहीं माना जाता। अितना शील मैं बचपनसे सीख चुका था। अतः मास्टर साहबके प्रश्नके जवाबमें मेरे मुँहसे तुरन्त ही 'हाँ' कैसे निकल सकता था? शरमके मारे मेरा मुँह लाल-सुर्ख हो गया। मैंने महसूस किया कि मेरे कान भी गरम हो गये हैं। सारे विद्यार्थी भी यह सुननेको अुत्सुक थे कि मैं क्या कहता हूँ। मेरी आँखोंके सामने अन्धकार छा गया। 'हाँ' कहता हूँ तो अशिष्टता होती है; और अितने सब नाटकके बाद 'ना' तो कह ही कैसे सकता था? फिर मैं यह भी देख रहा था कि जवाब देनेमें जितनी देर हो रही है, अुतना मेरे प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा है। आख़िर मैंने पूरी हिम्मतके साथ आवश्यकतासे अधिक ज़ोर देकर कहा — 'Yes, I do.' (जी हाँ, मैं अवश्य योग्य हूँ।) मास्टर साहब अेकदम चुप हो गये, और अुन्होंने अिस तरह पढ़ाअी शुरू कर दी मानो कुछ हुआ ही न हो। लेकिन जो वातावरण अेक बार अितना दूषित हो गया था, वह अिस तरह थोड़े ही साफ़ हो सकता था? वह सारा दिन अिसी बेचैनीमें बीत गया। अुसके बाद मास्टर साहबने या किसी दूसरेने अिस प्रसंगका तनिक भी अुल्लेख नहीं किया। सबको लगा होगा कि अैसे नाज़ुक प्रश्नको न छेड़ना ही अच्छा है। अथवा हो सकता है कि सब अुसे भूल भी गये हों। लेकिन मैं अुसे कैसे भूलता?

बचपनमें और बड़े होने पर भी अैसे कअी प्रसंग आते हैं। बचपनकी मुख्य कठिनाअी यह होती है कि अुस वक़्त भावनाअें कोमल और अुम्दा होती हैं; लेकिन अनुपातमें परिस्थितिका पृथक्करण करनेकी शक्ति या भाषा हमारे पास नहीं होती। बड़े लोग तो अपना बचपन भूल जाते हैं, और बालकोंके बारेमें मानते हैं कि वे आख़िर तो बालक ही हैं; अुनके जीवनको अितना महत्त्व देनेकी क्या आवश्यकता है? हो सकता है कि यह सब अनिवार्य हो। लेकिन अुससे बालजीवन तो सरल

नहीं बन जाता। बचपनमें लड़कोंको जो भला या बुरा, मीठा या कड़ुवा अनुभव आता है, अुसीसे अुनके स्वभावको खास आकार प्राप्त होता है और अुसीमें से चरित्रका निर्माण हुआ करता है। बड़े व्यक्तियोंके ध्यानमें यह बात शायद ही आती है कि बच्चोंके स्वभाव-निर्माणके लिअे बहुत बड़ी हद तक वे ही जिम्मेवार होते हैं। अच्छा हुआ कि अुपरोक्त प्रसंगमें मेरे शिक्षक संस्कारी और धीरजवान थे। शकका फ़ायदा अभि-युक्तको देनेकी अुदारता अुनमें थी। यदि अुनकी जगह कोअी सामान्य शिक्षक होता और वह मुझे झूठा और बदमाश ठहराकर सज़ा देता, मुझे धिक्कारता, तो अुस सबका मुझ पर न जाने क्या असर पड़ता! मनुष्य-स्वभावके बारेमें मेरे मनमें कुछ न कुछ नास्तिकता अवश्य पैदा हो जाती। वामन गुरुजी मेरे साथ ही नहीं, बल्कि सभी विद्यार्थियोंके साथ बहुत अच्छी तरह पेश आते थे। असलिअे अुनके प्रति मेरे मनमें हमेशा पूज्यभाव रहता था। लेकिन अुस दिनके अुनके बर्तावका मुझ पर विशेष प्रभाव पड़ा। अुपरोक्त प्रसंगके समय, काफ़ी संशय-ग्रस्त होते हुअे भी, अुन्होंने मेरे प्रति जो अुदारता बतलायी और मेरी बाल-आत्माकी जो क़द्र की, अुससे मैं अुनका भक्त बन गया। अुन्होंने नीति-शिक्षाके कअी सबक़ हमें सिखाये होंगे, लेकिन यह सबक़ सबसे निराला था। चरित्रगठनमें अैसे सबक़ोंका ही गहरा और चिरस्थायी परिणाम होता है।

५६

शनिवारकी तोप

कारवारका बंदरगाह दोनों ओर फैले हुअे पहाड़के बीचमें है। अिसलिअे बाहरसे आनेवाले जहाज़ किनारे परसे अच्छी तरह दिखाअी नहीं देते। अिस असुविधाको दूर करनेके लिअे वहाँसे कअी मील दूर देवगढ़के प्रकाश-स्तंभ पर अेक झंडा लगाया जाता। दूरबीनसे यह झंडा दिखाअी देते ही कारवारके डाकखानेके पास अेक टीले पर वैसा ही झंडा चढ़ा दिया जाता। अिस झंडेको देखनेके बाद ही लोग घरसे बन्दरगाहको रवाना होते। कभी-कभी तो हम लोग झंडा देखनेके बाद खाना खाने बैठते और भोजन समाप्त करके समय पर बन्दरगाह पहुँच जाते। जहाज़ बन्दरगाहसे दूर खड़ा रहता और लोग किश्तियोंमें बैठकर वहाँ तक पहुँच जाते। जब दरियामें बड़ा तूफ़ान होनेवाला होता, तब अिन दोनों प्रकाश-स्तभों पर अेक ख़ास किस्मके काले झंडे चढ़ाये जाते। जहाज़के आगमनकी सूचना देनेवाला झंडा लाल कपड़ेका होता। तूफ़ानकी अित्तला देनेवाले झंडे गोल, तिकोनिया या चौकोर पिटारेके समान होते थे। मेरा ख़याल है कि लकड़ीके विभिन्न आकारोंके चौखटों पर बाँसके टट्टर बिठाकर, अुन पर तारकोल लगाकर ये पिटारे बनाये जाते थे। अुनकी शक्लें तिकोनी, चौकोर या हंडियोंकी तरह गोल रहती थीं। हर शक्ल तूफ़ानकी हालतकी द्योतक होगी। ये पोले पिटारे जब आसमानमें लटकने लगते, तो सब तरफ़से अेकसे ही लगते थे। अिनकी वजहसे किश्तियों और जहाज़ोंको समय पर अित्तला मिल जाती थी।

शहरके पासके झंडेवालेके पास अेक मज़ेदार दूरबीन थी, क्योंकि अुसे हमेशा ही देवगढ़के प्रकाश-स्तम्भ पर नज़र रखनी पड़ती थी। अुसी आदमीको हर शनिवारको दोपहरके ठीक बारह बजे अेक तोप छोड़नेका काम सौंपा गया था। कारवारमें अुस सारे स्थानको ही 'झंडा' कहते थे।

अेक शनिवारको हम वह स्थान देखने गये। झंडेका दफ़्तर जिस चट्टान पर है वह चट्टान समुद्रमें काफ़ी दूर तक चली गयी थी, अिसलिअे अुसके आसपास रेतका किनारा नहीं था। लहरें सीधी चट्टानसे टकरातीं और पानीका फेन तथा छींटे बहुत ही अूपर तक अुड़ते। झंडेवाला अेक बूढ़ा मुसलमान था। मुसलमान व्यक्तियोंमें अपनी प्रतिष्ठाका ख़याल बहुत रहता है। हम जैसे लड़के जब वहाँ जाते, तो वह बन्दर-घुड़की दिखाये बिना नहीं रहता था। हम भी अुसकी अिस सलामीके लिअे तैयार थे। अक्खड़ सवाल-जवाबकी परिचय-विधि पूरी हो जानेके बाद हमने अुससे कहा, "हमें देवगढ़का प्रकाश-स्तम्भ दूरबीनमें से देखना है। ज़रा देखने दीजिये न मियाँ साहब!" अुसने बंगलेकी अलमारीमें से दूरबीन निकाली और बोला, "नीचे आओ, मैं बतलाता हूँ।" बंगलेके नीचे तोपके पास ही हमारे सीनेके बराबर अूँचा खंभा था। अुस पर चिकने पत्थरका फर्श था, जिसके बीचोंबीच दक्षिणोत्तर दिशामें अेक रेखा खोदी हुअी थी। फर्शके चारों ओर अेक-अेक बालिश्त अूँचे चार खंभे खड़े करके अुन पर ढलवाँ छप्परके समान टिनकी अेक चद्दर बिठायी गयी थी। लेकिन अुस फर्शमें तनिक भी ढाल न था; वह बिलकुल समतल था — मानो पानीके स्तर पर बिठाया गया हो। अुसने अुस फर्श पर दूरबीन रख दी और हमसे देखनेको कहा।

दोपहरका समय होनेसे समुद्रकी लहरें ख़ूब चमक रही थीं। दूरके देवगढ़ पर जब झंडा चढ़ जाता, तो मामूली आँखोंसे बहुत

कम लोग अुसे देख पाते थे। मुझे अिस बात पर बड़ा गर्व था कि मेरी काकदृष्टि अुसे देख सकती थी। अुस दिन दूरबीनमें सारा देवगढ़, अुस परका प्रकाश-स्तम्भ अेवं झंडा सब कुछ स्पष्ट और पास आया हुआ दिखाअी देने लगा। प्रकाश-स्तंभका स्वरूप सबसे पहले किसने निश्चित किया होगा? शतरंजके प्यादेकी तरह वह कितना आकर्षक दिखाअी देता है! नीचेकी तरफ़ चौड़ा और अूपर पतला।

दूरबीनको अिधर-अुधर घुमाकर मैंने मच्छिंदर गढ़ आदि आसपासके दूसरे पहाड़ भी देख लिये। दूर क्षितिज परसे गुज़रती हुअी कअी छोटी-छोटी नावें देखीं। अुनके सफ़ेद बादबानोंको देखकर मुर्ग़ाबियोंकी याद आ गयी। समुद्र शान्त होता है तब भी लहरोंका तालबद्ध नृत्य तो चलता ही रहता है। पाँच-छः मीलका समुद्रका विस्तार दृष्टिके सामने हो, तब पासकी लहरें बड़ी दिखाअी देती हैं और जैसे-जैसे हमारी नज़र दूर तक पहुँचती है वैसे-वैसे वे छोटी होती दिखाअी देती हैं। अैसा दृश्य किसको मोहित नहीं करेगा? दूरबीनमें यही दृश्य और भी स्पष्ट व सुंदर दिखाअी देता है। अतः दिल पर अुसकी छाप बहुत अच्छी पड़ती है।

वह सब देखकर तृप्त हो जानेके बाद मेरा ध्यान फर्श परके छोटेसे छप्परकी ओर गया। मैंने झंडेवालेसे पूछा, "क्या यह छप्पर अिसलिअे बनाया है कि धूपसे यह फर्श गर्म न हो जाय? या दूरबीन पर धूप न आये अिसलिअे यह अिन्तज़ाम किया गया है?"

"अभी यह नहीं बताअूँगा। तुम्हें दूरबीनमें से जितना देखना हो अुतना अेक साथ देख लो, फिर दूसरी बात। दूरबीनको अेक बार अन्दर रखनेके बाद फिर नहीं निकालूँगा।"

अुसकी सूचनाका आदर करनेके लिअे मैं दूरबीनमें से फिर देखने लगा। पहले देवगढ़ देख लिया। फिर मच्छिदर गढ़ और अुसके बाद काली नदीके मुहाने परका सरोका अुपवन — सब कुछ

आँखें भरकर देख डाला। झंडेवालेने दूरबीन अन्दर रख दी और वह बोला, "अब बारह बजनेका समय हो रहा है। मुझे तोप छोड़नेकी तैयारी करनी चाहिये।"

अिस बीचका समय हमने चट्टानों और लहरोंका सनातन झगड़ा देखनेमें बितानेका विचार किया। सिर पर धूप अंगार बरसा रही थी। पर अुन चट्टानोंको अिसकी तनिक भी परवाह नहीं थी। अुनका तो अखंड स्नान चल रहा था। जहाँ लहर आकर टकराती कि पानी फटकर चट्टानोंके सिर पर चढ़ जाता और वहाँसे चट्टानोंकी टेढ़ी-मेढ़ी दरारों और गड्ढ़ोंमें अुतर जाता। ये चट्टानें भी लहरोंकी चपेटें खा-खाकर अितनी बेहया बन गयी थीं कि अुनमें कहीं भी नोंक या नुकीला किनारा नहीं बचा था। वे बिलकुल चिकनी, गोलमटोल और फिसलने लायक़ हो गयी थीं। बड़ी-बड़ी चट्टानोंकी दरारोंमें मज़ेसे सैर करनेवाले केकड़े दिखाअी दे रहे थे — अितने बड़े-बड़े और डरावने कि देखकर डर लगता था। जलचर प्राणी अपने शरीरसे अेक प्रकारका चिकना गोंद या लासा निकालकर अपनी सीपोंको चट्टानों पर चिपका देते हैं। लहरोंसे चट्टानें भले ही घिस जायँ, लेकिन सीप अेक दफ़ा चिपकी तो फिर चिपक ही गयी समझिये। अिन लहरोंको दिन-रात, बारहों महीने और अनन्त वर्षों तक यों चट्टानोंके साथ टकरानेमें क्या मिलता होगा? आती हैं और चली जाती हैं; आती हैं और चली जाती हैं। लहरें पानीकी होनेसे चाहे जितनी बार टकरायें और फट जायँ तो भी अुनका कुछ नहीं बिगड़ता। ये लहरें भी अुन चट्टानोंकी तरह ही बेहया और निठल्ली होती हैं। चट्टानोंके साथ झगड़नेमें खुद हारती हैं या जीतती हैं, अिसका विचार तक वे नहीं करतीं। जहाँ निष्काम कर्म ही करना हो वहाँ क्या सोचना? स्थिर पाषाण और चंचल पानीका यह मिलाप जिन्हें सोचनेकी आदत न हो अुन मनुष्योंमें भी तरह-तरहकी भावनाअें पैदा करता है।

पास ही अेक मछुवा मछलियाँ पकड़नेका अेक लम्बा चाबुक हाथमें लेकर मछली पकड़नेके लिअे निश्चेष्ट बैठा था। मानो बड़ा तप कर रहा हो। शायद सिर परकी धूपकी अपेक्षा अुसके पेटकी आग अुसे ज्यादा सता रही थी। अिसीलिअे वह अुस तरह पंचाग्निसाधन कर रहा था। अेकाअेक काँटेकी डोरी अन्दर खिंच गयी, तड़ाकसे वह अुठा। काँटेकी डोरी कोअी मामूली नहीं थी — छिंगुनी जितनी मोटी होगी। वह तेज़ीसे खींचने लगा। अन्दरकी मछलीका ज़ोर भी कुछ कम न था। जब खींचते खींचते वह कुछ थक गया, तो मददकी याचना करनेवाली दृष्टिसे हमारी तरफ़ देखने लगा। मददके लिअे हमें बुलानेकी हिम्मत अुसमें कैसे होती? और अुसकी मदद करनेकी हमारी अिच्छा भी नहीं थी। कुछ देर तो अुसे लगा कि अब डोरी अुसके हाथसे छूट जायेगी। अुसने तुरन्त ही अुस डोरीको थोड़ा ढीला छोड़ दिया और फिर ज़ोरसे खींचा। अिसमें अुसे काफ़ी सफलता मिली। डोरी हाथसे छूट न जाय अिसलिअे अुसने अुसे कलाअी पर लपेट लिया और फिर खींचने लगा। मछलीके सामने तो जीवन-मरणका सवाल था। वह अैसे थोड़े ही हारनेवाली थी? हमें लगा कि अब डोरी टूट जायगी, क्योंकि मछलीने पत्थरकी खोहमें अपना अड्डा जमा लिया था। अब मेरे साथीसे न रहा गया। अुसने दौड़कर मछुवेको डोरी खींचनेमें मदद दी। अेकसे दो हुअे तो घायल मछली पानीके बाहर आ पड़ी। मेरे मुँहसे यह पंक्ति निकल पड़ी :—

तों अशरीरिणी वदली अुत्तर, धर्मयुद्ध नव्हे हें।

(अितनेमें आकाशवाणी हुअी कि यह धर्मयुद्ध नहीं है!)

मछली ताड़पत्रके पंखेके समान गोल और खूब मोटी थी। अुसकी पीठ पर आरे जैसे दाँते थे। कितने बड़े और कितने नुकीले! आरेके दन्दाने पैने होते हुअे भी स्थिर होते हैं। लेकिन वह मछली अपने पीठ परका आरा तेज़ीसे चला सकती थी। मेरे मनमें आया

कि यदि अिस समय अिसकी पीठके पास लकड़ीका पटिया रखा जाय तो अुसे भी यह काट सकती है।

शत्रुके दरबारमें जैसे बृहस्पतिकी भी अक्ल काम नहीं आती, अुसी प्रकार पानीके बाहर मछलीका ज़ोर नहीं चलता। मछली तड़फड़ायी, पानीकी तरफ़ जानेकी चेष्टा की, दो-चार हिचकियाँ लीं और सचेतन रूप छोड़कर अुसने मनुष्यके आहारका रूप धारण कर लिया। मैं चिन्तामग्न होकर अुसकी तरफ़ देखता ही रहा। अितनेमें मेरा साथी कहने लगा, "चलो, तोप छूटनेका समय हो गया होगा।"

हम दौड़ते-दौड़ते अूपर गये। वहाँ तोप छोड़नेकी तैयारी हो रही थी। अेक लम्बे बाँसमें बहुत-सा टूटा हुआ सूत बाँधा गया था। अुस कूँची (ब्रश) को थोड़ा-सा गीला करके झंडेवालेने तोपको दातुन कराया। फिर दो सेर बारूद भरी हुअी अेक पूरी थैली तोपके मुँहमें ठूँस दी। अिसके बाद अुसने कटे हुअे काग़ज़ोंका अेक बड़ा-सा गोला बाँसकी मददसे ठोंक-पीटकर बैठा दिया। अिसमें अुसे बहुत मेहनत करनी पड़ी। फिर अुसने अेक हाथ लम्बा सूआ लेकर तोपके पिछले छेदमें से भीतरकी थैलीमें छेद किया। फिर दाहिने हाथमें महीन बारूद लेकर अुस छेदमें डाल दी। यह बारूद अंदरकी थैलीकी बारूद तक जा पहुँची और तोपका सूराख भर गया। तब वह हाथमें अेक जलता हुआ पलीता लेकर तैयार हुआ।

फिर वह मुझसे बोला, "अब अिधर आ। तू पूछता था न कि फर्श परका वह छोटा-सा छप्पर किस लिअे बनाया गया है? देख, अुसके बीचोंबीच अेक छेद है। अुसमें से सूर्यकी अेक किरण नीचेके फर्श पर पड़ती है। अुस फर्श पर अुत्तर-दक्षिण अेक रेखा खींची हुअी है। सूर्यकी किरण जब अुस रेखा परसे गुज़रती है, अुस वक़्त कारवारके बारह बजते हैं और यही ज़ाहिर करनेके लिअे मैं तोप दागता हूँ।"

यह सब देखकर मुझे बहुत ही मज़ा आया। मनमें सोचा कि यह फर्श समतल रखा गया है यह तो ठीक है, लेकिन अूपरकी टिनकी चद्दर तो छप्परकी तरह ढलवाँ बिठायी गयी है। क्या अिससे बारह बजनेका समय निश्चित करनेमें कभी भूल नहीं होती होगी? फिर विचार आया कि शायद अूपर पानी जमकर टिनकी चद्दरमें ज़ंग न लग जाय अिसीलिअे वह अैसी बिठायी गयी होगी।

अितनेमें झंडेवालेने कहा, "अब देखना, यह किरण रेखाके पास आ रही है, ठीक बारह बजनेका समय हो गया है।" मैंने कहा, "हाँ, हाँ, सुमुहूर्त सावधान!"

झंडेवालेने लम्बी लकड़ीके सिरे पर पलीता बाँध रखा था और वह फर्श परकी सूर्यकी किरणकी ओर देख रहा था। अब क्या होगा, कैसी आवाज़ होगी, अिसकी कल्पना करता हुआ मैं खड़ा रहा। अितनेमें तोपकी अेक तरफ़ पिरामिडके आकारमें जमाये हुअे तोपके गोलोंके ढेरकी ओर मेरी नज़र गयी। शत्रुका जहाज़ आने पर तोपके मुँहमें अिन्हीं गोलोंको भरकर तोप दागते होंगे। फिर जहाज़की अेक तरफ़का भाग फूट जाता होगा और अन्दर पानी घुस जानेसे जहाज़ डूब जाता होगा। मैं अैसी कल्पना कर ही रहा था कि अितनेमें झंडेवालेका पलीता तोपके सूराख तक पहुँच गया। वहाँकी बारूद भकभक करने लगी। अितनेमें तोपके मुँहसे अेकदम फाड्-ड से अितने ज़ोरका धड़ाका हुआ कि मेरे कान बहरे हो गये, सीना धड़कने लगा। मैं कहाँ हूँ अिसका भान भी अुस क्षणके लिअे नहीं रहा। आँखोंके सामने धुअेंका बादल छा गया। तोपमें ठूँसे हुअे काग़ज़ोंकी धज्जियाँ कहाँ और कैसी अुड़ गयीं अिसका पता भी न चला। सिर्फ़ बारूदकी बू नाकमें घुस गयी। तोपका धड़ाका अितने नज़दीकसे कभी सुना न था; और अुस वक़्त जो अनुभव हुआ वह अितना आकस्मिक और क्षणिक था कि

मेरे अुस अनुभवका पृथक्करण करनेका विचार भी बादमें ही मनमें पैदा हुआ।

लेकिन अुसी क्षण, यानी धड़ाकेके दूसरे ही क्षण, अेकदम पीछेके पहाड़ोंमें से बादलोंकी गड़गड़ाहट जैसी कड़ड़-कड़ड़ प्रतिध्वनि सुनाअी पड़ने लगी। मानो सभी पहाड़ियाँ यह देखनेके लिअे दौड़ी चली आ रही हों कि क्या अुत्पात मचा है। आवाज़ अितने ज़ोरकी हुअी थी कि आसपासके नारियलके पेड़ भी काँपने लगे थे। तोपकी आवाज़की अपेक्षा वह पहाड़ोंकी प्रतिध्वनि मुझे ज्यादा अद्‌भुत और आकर्षक लगी थी। मेरी साँस रुक गयी थी। बिना किसी कारणके परेशान होकर मैं चारों ओर टुकुर-टुकुर देखने लगा। प्रतिध्वनि समुद्र परके विस्तीर्ण आकाशमें लीन हो गयी। फिर भी मेरे कानमें तो वह गूँजती ही रही। आज भी अुसका स्मरण करते ही वह जैसीकी तैसी सुनाअी पड़ती है।

मैंने समुद्रकी ओर नीचे झुक कर देखा, तो लहरें हँसते हुअे कह रही थीं, 'अरे देखता क्या है? कहाँ है वह तोपकी आवाज़? जो हुआ सो हुआ। असलमें कुछ हुआ ही नहीं। दुनिया जैसी थी वैसी ही है, और वैसी ही रहनेवाली है।'

लेकिन लहरोंका सत्य तो मेरा सत्य नहीं था!

५७

अिन्साफ़का अत्याचार

अब चूंकि ज़्यादा किराया मिलने लगा था, अिसलिअे रामजी सेठने अपनी 'वखार' (कोठी)के चार हिस्से कर दिये थे। अेक हिस्सेमें कुप्पीकर तहसीलदार रहते थे। दूसरे हिस्सेमें हम थे। हमसे पहले अुस हिस्सेमें साठे नामके अेक ओवरसियर रहते थे। अुन्होंने बाहरके बरामदेमें बाँसकी चटाअियोंसे अेक बहुत ही बढ़िया कमरा बना लिया था। अुसका दरवाज़ा, दो खिड़कियाँ वगैरा सब सुन्दर था। अिन्जीनियरके हाथकी बनी हुअी चीज़! फिर पूछना ही क्या? अुस कमरेमें हम पढ़नेको बैठते। बाबासे कोअी मिलने आते, तो वे भी हमारे कमरेमें ही बैठना पसन्द करते। मुझे तो अुस कमरेका अितना मोह था कि मैं रातको सोता भी वहीं था। अिस प्रकार घरके बाहर सोनेसे मैं सवेरे साढ़े चार बजे अुठ सकता था, यह भी अेक बड़ा लाभ था।

हमारे पड़ोसके लड़के बाहरके बरामदेमें खेलते-कूदते और शोर मचाते थे। वह हमें बिलकुल अच्छा न लगता था। लेकिन अुसे सहन करनेमें हमें असुविधा नहीं होती, क्योंकि हम भी जब चर्चा करने बैठते तो सारी 'वखार' गूंज अुठती थी। शान्तिका आधुनिक शौक़ हमने अुस वक़्त नहीं सीखा था।

लेकिन जब पड़ोसके लड़के अपने बरामदेमें से दौड़ते हुअे हमारी चटाअीकी दीवार पर ज़ोरसे हाथ मारते, तब मेरा धैर्य टूट जाता। अुन शैतानोंको मैंने कअी बार मना किया, अुन पर नाराज़ भी हुआ, लेकिन अुसका अुन पर कुछ भी असर न हुआ। लड़कोंके अुत्पातोंसे बाँसका टट्टर दब गया और अुसका आकार चौकोर तवेकी

तरह हो गया। दीवारकी शोभा भी चली गयी और चटाअी अंदर दब जानेसे कमरेकी अुतनी जगह कम हो गयी। मैंने चटाअीको अन्दरसे दबाकर बाहरका हिस्सा फुलाया। लेकिन अुससे तो अुलटा ही परिणाम निकला। बालकोंका अुस पर हाथ मारनेका शौक़ और बढ़ गया। वे बाहरसे कसकर हाथ मारते तो चटाअी फिर अन्दरके भागमें फूल जाती।

अब क्या किया जाय? मैंने जाकर बालकोंकी माँसे शिकायत की। वे लोग कोंकणी भाषा बोलते थे और मेरी भाषा मराठी थी, अिससे समझनेकी कठिनाअी तो थी ही। लेकिन असलमें वे लोग अितने लापरवाह थे कि अुन्होंने मेरी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। 'होगा! होगा! देखा जायगा!' कहकर अुन्होंने मुझे टाल दिया।

मुझे बहुत ग़ुस्सा आया। बालकोंका अुत्पात कम नहीं होता था। आख़िर हारकर मैंने अेक आसुरी अुपाय आज़मानेका निश्चय किया। अिसी अरसेमें गोंदूको लकड़ीमें तरह तरहके अक्षर खोदनेका बहुत ही शौक़ चर्राया था। अिसके लिअे वह सूअे जैसा अेक औज़ार कहींसे लाया था। फ़ौलादकी अेक तिकोनी या चौकोर सलाअीको घिसकर अुसकी धारको बहुत ही तेज़ बनाया गया था। मैंने वह औज़ार हाथमें लिया और अन्दरकी तरफ़से अुसकी नोकको चटाअीमें से घुसेड़कर मैं तैयार खड़ा रहा। हमेशाकी तरह पड़ोसका शरारती लड़का दौड़ता हुआ आया और अुसने ज़ोरसे दोनों हथेलियाँ चटाअी पर दे मारीं। अुसने जितने ज़ोरसे मारा था, अुतने ही ज़ोरसे मेरे अुस औज़ारकी नोक अुसकी हथेलीमें घुस गयी! लड़का अेकदम चीख पड़ा। अुसके हाथसे खूनकी धारा बहने लगी। अितनी तो मेरी अपेक्षा थी ही कि लड़केके हाथमें सूअेकी नोक तनिक चुभेगी और वह चिल्लायेगा। मैं आनन्दके साथ अुस मौक़ेकी प्रतीक्षा भी कर रहा था। लेकिन लड़केको मेरी अपेक्षासे ज्यादा चोट आयी, अतः वह चीख

मेरे चिढ़े हुअे हृदयको शान्ति देनेके बजाय अुस औज़ारकी तरह मेरे हृदयमें घुस गयी। मुझे तो अैसा लग रहा था, मानो मेरे हृदय पर कोअी पत्थर आ लगा हो। मैंने वह औज़ार मेज़के नीचे छिपा दिया और क्या होता है अिसका अिन्तज़ार करने लगा।

लड़केकी चीख सुनकर अुसकी माँ दौड़ती हुअी आयी। अुनके घरका रसोअिया भी आया। मैं सोच रहा था कि अब ये लोग मेरे साथ लड़ने आयेंगे। लेकिन अुन्हें लड़केके घावकी मरहमपट्टी करनेकी गड़बड़ीमें लड़नेकी बात सूझ ही कैसे पड़ती? अुनकी बातें मैं सुन रहा था। अुसमें क्रोध या चिढ़ नहीं, बल्कि केवल दुःख ही था। यह सब मेरी अपेक्षासे बिलकुल विपरीत था, अिससे मेरा जी बहुत कसमसाया। मैं झेंप गया। वे लोग अगर मुझसे लड़ने आते, तो मुझे यह कहकर लड़नेकी हिम्मत आती कि 'न्यायका पक्ष मेरा है।' पर अुन्होंने तो मेरा नाम तक नहीं लिया। अिसलिअे मुझे यही न सूझता था कि अब कौनसी वृत्ति धारण करनी चाहिये। अिन्साफ़को अपने हाथमें लेकर मैं बदला लेने गया। लेकिन क्रोधसे अन्धा बना हुआ मनुष्य जब अिन्साफ़ करने जाता है, तो अत्याचार ही कर बैठता है। अपने अिस कृत्यके सामने अब खुद मुझे ही लड़कोंका अुत्पात हेच-सा मालूम होने लगा। अपनी ही दृष्टिमें मैं गुनहगार साबित हो गया।

लड़का रो रहा था। रसोअिया अुसके हाथ पर पानी डाल रहा था। मेरे मनमें आया, देखूँ तो सही कि लड़केको कितना लगा है। सीधे अुनके बरामदेमें जानेकी तो हिम्मत थी ही नहीं, अिसलिअे टेबल पर चढ़कर हमारी चटाअीकी दीवारके अूपरसे चोरकी तरह देखने लगा। वास्तवमें मुझे अिस प्रकार देखनेकी कोअी आवश्यकता नहीं थी। लेकिन मुझसे रहा न गया। अूपर चढ़कर देख ही रहा था कि दुर्भाग्यसे लड़केकी माँकी नज़र मुझ पर पड़ी। अुस समय माँने मुझे कुछ गालियाँ दी होतीं या कोअी शाप दे दिया

होता, तो अुसका भी मैं स्वागत करता। लेकिन अुसकी आँखोंमें केवल अुद्वेग ही था। अुसने सिर्फ़ अितना ही कहा कि, 'देख, यह तूने क्या किया!' माँके ये शब्द किसी तेज़ शस्त्रकी तरह मेरे हृदयमें घुस गये। मेरा मुँह अुतर गया। मैं बोला तो सही कि 'मैंने कुछ नहीं किया'; लेकिन मेरी आवाज़ ही कह रही थी कि मेरे शब्दोंका कोअी अर्थ नहीं है।

बेचारी माँको अितना अधिक दुःख हो गया था कि अुसने घरके अन्य लोगोंको वह बात कभी नहीं बतायी। अति दुःख और अति अुद्वेगसे वह शान्त ही रही। लेकिन अुसने मेरी शान्तिको बिलकुल नष्ट कर दिया। कअी दिनों तक मैंने अपने पड़ोसियोंसे मुँह छिपाया। जब भी मैं अुस लड़केकी माँको सामनेसे आते देखता, तो सिर नीचा करके वहाँसे खिसक जाता। लड़कोंका अूधम तो बन्द हुआ, लेकिन वह जीत मुझे बहुत ही महँगी पड़ी।

कअी दिन बीत गये। अुन लोगोंकी भाषा मैं ज्यादा समझने लगा। परिचय बढ़ने पर मैं अुनमें घुलमिल गया। अितना ही नहीं, बल्कि अुस लड़केको भी खेलाने लगा। लेकिन न तो अुसकी माँने कभी वह बात छेड़ी, और न मैंने ही कभी अुसका अुल्लेख किया। वह लड़का तो अपना दुःख भूल गया होगा, पर मैं अपनी अुस दिनकी दुष्टताके विषादको अभी तक नहीं भूल पाया हूँ।

५८

हिन्दू स्कूलमें

नीति या सदाचारके बारेमें मुझे सबसे पहले प्रत्यक्ष भान करानेवाले थे मेरे बड़े भाओी बाबा। धर्मनिष्ठाकी कल्पना पिताजी अेवं माताजीके आचरणसे मेरे मन पर अच्छी तरह अंकित हो गयी; लेकिन योग्य समय पर नीति और धर्मके तात्त्विक स्वरूप अेवं गंभीरताको हृदय पर अंकित करानेवाले तो मेरे पूज्य शिक्षक वामनराव दुभाषी ही कहे जा सकते हैं।

कारवारमें अुन्होंने 'हिन्दू स्कूल' नामकी अेक खानगी संस्था खोली थी। अुसमें शुरुआतमें अंग्रेज़ीकी प्राथमिक तीन कक्षाअें ही थीं। अुसमें तीन शिक्षक काम करते थे। महाराष्ट्रमें हम शिक्षकोंको अुनके अुपनामसे ही पहचानते हैं। आश्रम जैसी संस्थाओंमें या शिक्षकोंके साथ विद्यार्थियोंका निकटका सम्बन्ध हो तो अण्णा, नाना, तात्या, काका वगैरा रिश्तेका सम्बन्ध बतानेवाले नामोंसे शिक्षकोंको पुकारा जाता है। मसलन् प्रोफेसर विजापुरकरको 'अण्णा', प्रोफेसर ओकको 'नाना' और श्री नारायण शास्त्री मराठेको 'मामा' कहा जाता था। लेकिन कारवारमें तो विद्यार्थी शिक्षकोंको अुनके नामसे ही संबोधित करते। 'हिन्दू स्कूल' में तीन शिक्षक थे: वामन मास्टर, हरि मास्टर और विट्ठल मास्टर। अिनमें विट्ठल मास्टर बहुत प्रभावशाली शिक्षक न थे। लेकिन खेल-कूदमें हमारे साथ खूब घुल-मिल जाते थे। अिससे वे काफ़ी विद्यार्थी-प्रिय बन गये थे।

मेरा सबसे प्रथम परिचय हरि मास्टरसे हुआ। क्योंकि वे अंग्रेज़ीकी दूसरी कक्षाको पढ़ाते थे। मराठी चौथी और अंग्रेज़ी पहली

अिन दो कक्षाओंमें मैंने अपने गणित विषयको काफ़ी सुधार लिया था। लेकिन यहाँ तो गणित अंग्रेज़ीमें करना पड़ता था। दूसरी कक्षाके विद्यार्थियोंको गणितकी पढ़ाअी अंग्रेज़ीमें करनी पड़े, यह अत्याचार है, अैसा अुस वक़्त नहीं माना जाता था। पहले-पहल गणितका घण्टा आते ही मैं घबड़ा जाता। हरि मास्टर स्वभावसे रजोगुणी थे। छोटी-सी बात पर नाराज़ हो जाते और मामूली हालतमें भी शक कर लेते; हालाँकि अुन्हें विद्यार्थियोंमें बहुत दिलचस्पी थी। अुन्हें व्याख्यान देनेका शौक़ भी बहुत था, और कुछ न कुछ काम हाथमें होता तभी अुन्हें शान्ति मिलती। थोड़ेमें कहें तो अशान्तिकी शान्तिके वे शौक़ीन थे।

लड़कोंकी अंग्रेज़ी भाषा अच्छी कर देना अुस वक़्त अुत्तम शिक्षाकी कसौटी मानी जाती थी और नैतिक शिक्षण देनेमें शिक्षकोंको आत्मसन्तोष मिलता था। मुझे याद है कि हरि मास्टरकी क्लासमें हमने बहुतसी आसान अंग्रेज़ी कविताअें याद की थीं, और जब तीसरी कक्षामें गये तो खानगी तौर पर पढ़ाअी करके अुन्होंने 'लेडी ऑफ दि लेक' काव्यकी लगभग दो सौ पंक्तियाँ हमसे याद करा ली थीं। हिन्दू स्कूलमें डेढ़ साल तक रहनेके बाद मेरी अंग्रेज़ी भाषाकी बुनियाद अितनी पक्की हो गयी कि मैट्रिक तक अंग्रेज़ीमें मैं हमेशा अव्वल रहता। आगे चलकर अंग्रेज़ीकी पाँचवीं कक्षामें मैंने अंग्रेज़ीका व्याकरण अेवं वाक्यपृथक्करण आदि बातें सीख लीं। बस, अितना ही अध्ययन मैंने किया था। कॉलेजमें भी अंग्रेज़ीमें मुझे बहुत नम्बर मिलते। लेकिन सौभाग्यसे मुझे भाषाकी अपेक्षा ज्ञानमें अधिक दिलचस्पी थी, अिसलिअे मैंने किसी भी भाषामें प्रवीण बननेकी चेष्टा नहीं की। अुस अुस भाषाके सबसे कठिन ग्रन्थ भी मेरी समझमें अच्छी तरह आ जायँ, भाषा और अर्थकी ख़ूबियाँ झटसे मालूम हो जायँ तथा अपने विचारोंको आसान भाषामें प्रकट करनेकी क्षमता अपनेमें हो, अिससे अधिक महत्त्वाकांक्षाने मुझे कभी स्पर्श नहीं किया।

हरि मास्टरको नास सूँघनेकी लत थी। अिस बातका अुन्हें अपने मनमें बुरा लगता और वे विशुद्ध भावसे वर्गमें कहते भी कि 'यह बहुत खराब व्यसन है। मैंने बहुत कोशिश की, मगर यह नहीं छूटता।' अपने भोले स्वभावके अनुसार मैं अुनकी बात सच मानता। फिर भी अुस वक़्त मुझे अपने दिलमें अैसा ही लगता था कि नासके प्रति अिनके मनमें सच्ची नफ़रत नहीं है। ये अंतःकरणसे मानते होंगे कि यह अेक व्यसन है, बुरी चीज़ है, अितना तत्त्वतः स्वीकार करना और अपनी अशक्तिका खुले दिलसे अिकरार करना काफ़ी है — अैसी अस्पष्ट छाप अुस वक़्तके मेरे बालमानस पर भी पड़े बिना नहीं रही।

अुस ज़मानेके कोंकणके फैशनके मुताबिक़ हरि मास्टरकी चोटीका घेरा बहुत बड़ा था। अुनके बाल भी बहुत लम्बे थे। कक्षामें वे ज़्यादातर खुले सिर ही बैठते। जब वे पढ़ानेमें मशग़ूल हो जाते तब अनजानमें अुनका हाथ अेकाध लम्बा बाल पकड़कर जीभकी ओर लाता और फिर जीभ तथा अुँगलियोंके बीच बालकी मददसे गजग्राह (रस्साकशी) चलने लगता। चूँकि मुझ पर बचपनसे घरका यह संस्कार जम गया था कि बाल मुँहमें डालना गन्दा काम है, अिसलिअे हरि मास्टरकी यह लत मुझे बड़ी घिनौनी लगती और अुसके कारण कक्षामें मेरी अेकाग्रतामें भी बाधा पड़ जाती। मैं लगभग छः माह अुनके पास पढ़ता रहा। लेकिन हर रोज़ देखते रहने पर भी मेरी यह घिन ज़रा भी कम नहीं हुअी।

हरि मास्टर पढ़ानेमें तो कुशल थे। अंग्रेज़ीके शुद्ध अुच्चारणकी ओर वे ख़ास ध्यान देते थे। यद्यपि वे स्वयं संस्कृत नहीं जानते थे, फिर भी अुन्होंने हमसे कुछ संस्कृतके सुभाषित कंठस्थ करा लिये थे। भाषान्तरकी ओर भी अुनका ख़ास ध्यान रहता था। अुनकी जन्मभाषा कोंकणी थी, अिसलिअे अुन्हें मराठी भाषा अच्छी तरह नहीं आती थी। हमारी क्लासमें शुद्ध मराठी जाननेवाला मैं अकेला

ही था। शेष सभी विद्यार्थी घरमें या घरसे बाहर भी कोंकणी बोलते और पाठशालामें कन्नड़ या मराठी सीखते। हमारी कक्षामें भाषान्तर दोनों भाषाओंमें चलता। अिसलिअे कन्नड़ भाषाके साथ मेरा प्रथम परिचय यहाँ हुआ। अुस वक़्त मैंने विशेष ध्यान दिया होता, तो अेक द्राविड़ी भाषा मुझे आसानीसे आ गयी होती।

खुदको मराठी भाषा कम आती है, अिस बातको छिपाकर रखनेका प्रयत्न हरि मास्टरने कभी नहीं किया। मुझे याद है कि अेक-दो बार आम सभामें जब अुन्हें अुचित शब्द नहीं सूझा, तब मुझे अपने पास बुलाकर अुन्होंने मुझसे वह पूछ लिया था।

हरि मास्टरकी कक्षामें पढ़ते समय मुझे अुनका डर लगा रहता था। लेकिन साथ ही साथ मैं अुन्हींसे अिस चीज़का महत्त्व भी सीख गया कि हर हालतमें सच ही बोलना चाहिये। मुझे अैसा अेक भी प्रसंग याद नहीं आता जब मैं हिन्दू स्कूलमें पढ़ते समय झूठ बोला होअूं। पहले पहले तो यदि हम झूठका मोह छोड़कर सच कह देते, तो हरि मास्टर हमें माफ़ कर देते थे। लेकिन आगे चलकर सत्य बोलनेके लिअे अितना लालच देना अुन्हें ठीक नहीं जँचा, अिसलिअे कअी बार हम सच बोलकर भी अच्छी तरह पिट जाते। लेकिन झूठ बोलकर पिटाअीसे छूट जाना बहुत आसान होते हुअे भी झूठ बोलनेमें हीनता है, अिस खयालसे सच बोलनेकी हिम्मत हममें आ गयी।

हम दिल लगाकर पढ़ते रहें, अिसके वास्ते हरि मास्टरने अेक मज़ेदार तरकीब खोज निकाली थी। शिक्षणशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करते हुअे आज मुझे अुसका महत्त्व असाधारण जान पड़ता है। बचपनसे हमें नंबरोंकी, प्रतिस्पर्धाकी और ब्लैक बेंचकी (जिन्होंने अभ्यास न किया हो अुनको क्लासमें से निकाल बाहर करनेके बजाय क्लासमें ही अेक अलग बेंच पर बिठाया जाता। मानो यह बहिष्कारका ही अेक तरीक़ा था; अिसे ब्लैक बेंच कहते थे।) आदत थी। होड़के कारण सौम्य स्वरूपमें ही क्यों न हो, प्रत्येक विद्यार्थीको अैसा लगता है कि

अन्य सभी विद्यार्थी मेरे शत्रु हैं और अुनका मुक़ाबला करके, अुनके साथ लड़कर, अुन्हें हराकर मुझे आगे बढ़ना है। मुझ जैसे पहले नंबरके प्रति अुदासीन रहनेवाले विद्यार्थी स्पर्धाके ज़हरसे बच जाते थे। लेकिन पहले नंबरके लोभी विद्यार्थी अुससे ज़्यादा अीर्ष्यालु, स्वार्थी और चुगलखोर बनते थे। अैसे विद्यार्थी ज्ञान-चोर तो होते ही थे। (ज्ञानचोरीके लिअे हमारा प्राचीन शब्द है 'चित्तशाठ्य'। अगर कोअी कुछ जानकारी पूछ ले या पढ़ाअीमें मदद माँगे, तो वह सीधी तरह न बताकर या बतानेसे साफ़ अिन्कार करनेके बजाय अूपरी तौर पर बताना, महत्त्वकी बातोंको छिपाना और टालमटोल करना — अिसका नाम है चित्तशाठ्य!) अैसी हालतमें अगर शिक्षक असंस्कारी या कानका कच्चा हो, तो होड़के चंगुलमें फँसे हुअे विद्यार्थी चुगलखोर भी बन जाते हैं। अैसे विद्यार्थियोंको तीन प्रकारकी सावधानी रखनी पड़ती है — अपने विषयको अच्छी तरह सीखना; अपने प्रतिस्पर्धीकी शक्ति-अशक्ति क्या है, वह किन मामलोंमें ग़ाफ़िल है आदि बातों पर कड़ी निगरानी रखना और शिक्षककी खुशामद करनेकी तरकीबें खोज निकालना। प्राचीन कालसे मानवसमाजमें वाग्युद्धोंका प्रचार हुआ है, अिसलिअे ये सारे दुर्गुण हमें अपने विद्वानों, पंडितों और गायक, चित्रकार आदि गुणीजनोंमें कमोबेश मात्रामें दिखाअी पड़ते हैं। समाजमें गुलामी बढ़नेके अनेक कारणोंमें हलके दर्जेकी स्पर्धा भी अेक बलवान कारण है।

हरि मास्टरने प्रतिस्पर्धाके अिस तत्त्वको थोड़ा व्यापक करके अुसके अंदर सहकारका तत्त्व दाखिल किया। (मैं नहीं समझता कि अुस वक़्त यह गहरा दर्शन अुनके ध्यानमें होगा।) अुन्होंने हमारी कक्षाको दो टुकड़ियोंमें बाँट दिया। अथवा सच कहा जाय तो अुन्होंने कक्षाको दो टुकड़ियोंमें विभक्त होनेका स्वराज्य दिया। हमने अपने लिअे दो नेताओंको चुन लिया। फिर जैसा कि खेलमें हुआ करता है, प्रत्येक नेताने अपने साथियोंका चुनाव किया और अिस तरह दो

टुकड़ियाँ हो गयीं। हर सप्ताह प्रत्येक टुकड़ीके तमाम विद्यार्थियोंके नंबरोंको जोड़ा जाता। जिस टुकड़ीके नंबर ज़्यादा होते, वह पहले नंबरकी टुकड़ी मानी जाती, और अुसे पूरे अेक सप्ताह तक शिक्षकके दाहिनी ओर बैठनेका हक़ मिलता। अिस योजनाके कार्यान्वित होनेके पहले प्रथम क्रमांकके भूखे चार-पाँच विद्यार्थियोंमें ही प्रतियोगिता चलती रहती और वे ही पढ़ाअीमें विशेष ध्यान देते। अुनके अलावा, मुझ जैसा कोअी विरला ही स्पर्धाके बिना पढ़नेमें दिलचस्पी रखता। शेष निचले सभी विद्यार्थी महिषवृत्ति धारण करके बैठ जाते। 'हमें कहाँ पहला नंबर हासिल करना है?' अिस प्रकारके दक़ियानूसी संतोषकी प्राप्तिमें ही वे अपनी श्रेष्ठता समझते थे।

लेकिन अिस नअी व्यवस्थाके बाद बुद्धिमान् और मन्दबुद्धि सभी तरहके विद्यार्थियोंमें यथाशक्ति प्रयत्न करनेका अुत्साह पैदा हुआ। खुद अपनेको पहला नम्बर भले ही हासिल न करना हो, लेकिन अपनी टुकड़ीको पहला नंबर दिलानेमें हम ज़रूर कुछ-न-कुछ मदद कर सकते हैं, बल्कि वैसा करना हमारा धर्म है, अुसीमें संघनिष्ठा है — अिस खयालसे सभी विद्यार्थी जी लगाकर पढ़ने लगे। आगे चलकर हम अपनी टुकड़ीके कच्चे और मन्द विद्यार्थियोंको घर बुलाकर भी पढ़ाअीमें मदद देने लगे। अेक-दूसरेको पुस्तकें देते, जिसकी समझमें कोअी विषय न आता अुसे दूसरे विद्यार्थी समझाते, खास ध्यानमें रखने योग्य बातें कौन-सी हैं यह बतलाकर अुस पर निशान लगा देते, और कुछ नहीं तो हर हालतमें अपनी टुकड़ीके विद्यार्थियोंको सहानुभूतिकी खुराक तो ज़रूर देते। अेक महीनेके अन्दर अिस व्यवस्थाका लाभ हमें प्रत्यक्ष हुआ। हमारा भ्रातृभाव बढ़ा, संघवृत्ति पैदा हुअी, हम अेक-दूसरेके घर जाने लगे, और पढ़ाअीके अलावा और कामोंमें भी अेक-दूसरेकी मदद करने लगे।

यह था भीतरी लाभ। लेकिन अब दो टुकड़ियोंके बीचकी स्पर्धा अधिक तीव्र होने लगी। हमारे दिलमें यह वृत्ति पैदा हुअी कि

विरोधी टुकड़ीके लड़कोंको मदद नहीं करनी चाहिये। जैसे-जैसे अुन लड़कोंकी खामियाँ हमारे ध्यानमें आतीं, वैसे-वैसे हमें खुशी होती। 'हिन्दू स्कूल' में मिलनेवाली नैतिक तालीमके परिणाम-स्वरूप यह दोष मेरे ध्यानमें आया। मैंने अपने स्वभावके अनुसार अपनी टुकड़ीके विद्यार्थियोंसे अुदारताकी नहीं, सद्भावनाकी नहीं, बल्कि बड़प्पनकी अपील की। मैंने अपनी टुकड़ीवालोंको सीना फुलाकर समझाया कि दूसरे पक्षका कोअी भी विद्यार्थी यदि हमसे मदद माँगे, तो हम अपनी टुकड़ीके विद्यार्थीकी जितनी मदद करते हैं, अुससे भी ज़्यादा हमें अुसकी मदद करनी चाहिये, अिसीमें हमारा बड़प्पन है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अिसका नतीजा अच्छा ही हुआ।

थोड़े दिन बाद तो दोनों टुकड़ियोंके दो राज्य माने जाने लगे। टुकड़ीका नायक राजा बन गया। फिर मंत्री, सेनापति वगैरा सभी ओहदेदार क़ायम हुअे। अिस राज्य-व्यवस्थामें मुझे दोनों राज्योंके बीच होनेवाले झगड़ोंका निबटारा करनेवाला न्यायाधीश नियुक्त किया गया। कक्षामें मैं अेक टुकड़ीकी प्रजा माना जाता, लेकिन कक्षाके बाहर दोनों टुकड़ियोंका न्यायाधीश था। मैं देखता हूँ कि मेरे लेखोंमें, भाषणोंमें तथा चर्चाओंमें मूलभूत नैतिक बातोंका जो विवेचन बार-बार आ जाया करता है, अुसका कारण मेरा 'हिन्दू स्कूल' में बिताया हुआ यह ख़ास जीवन ही होगा। (आचार्य) जीवतराम कृपालानी मुझसे अकसर कहा करते थे कि 'समय-असमय पर नीति-चर्चा करनेकी आदत तुममें है, अिसलिअे स्वाभाविक रूपसे ही लोग तुमसे दूर हो जाते हैं।' अगर यह बात सही हो, तो अिसका कारण भी अुसी परिस्थितिमें ढूँढ़ना चाहिये।

न्यायाधीश बननेके बाद मैं चौबीसों घण्टे नीति और अिन्साफ़का ही विचार करने लगा। मेरी बालोचित सहजता नष्ट हो गयी। न्यायाधीशकी तरह मैं विद्यार्थियोंको हुक्म फ़रमाने लगा। कोअी अुत्पाती लड़का यदि मेरा हुक्म नहीं मानता, तो मैं अुससे बहुत

नाराज हो अुठता। लेकिन मेरा क्रोध थोड़ी देरके लिअे ही रहता। मनमें किसी तरहका कीना नहीं रहता। अितना ही नहीं, बल्कि यदि वह लड़का कभी गुनहगार बनकर मेरी अदालतके समक्ष हाज़िर होता, तो अपनी न्यायपरायणता सिद्ध करनेके लिअे मैं जान-बूझकर अुसकी ओर ही ज़्यादा झुकता। अिससे मेरी प्रतिष्ठा तो बढ़ी, लेकिन स्वाभाविकता चली गयी -- और यह नुक़सान कोअी मामूली नहीं था।

५९

वामन मास्टर

हिन्दू स्कूलमें जब मैं दूसरीसे तीसरी कक्षामें गया, तब वामन मास्टरके साथ मेरा अधिक परिचय हुआ। अुनका असर तो मुझ पर अुससे पहले ही पड़ना शुरू हो गया था। हर रविवारको वामन मास्टर और हरि मास्टर मिलकर अेक धार्मिक शिक्षाका वर्ग चलाते थे। अुसमें सरकारी हाअीस्कूलके विद्यार्थी भी शामिल होते। अुसमें किसी न किसी नैतिक या धार्मिक विषय पर प्रवचन होता। आगे चलकर अुन्होंने हरिश्चन्द्राख्यान शुरू किया। ओवी* पढ़ते जाते और अुसका अर्थ बतलाते जाते। हरि मास्टरका बोलने और अर्थ करनेका ढंग बहुत ही सुन्दर था। लेकिन वामन मास्टरमें लगन और गंभीरता अधिक थी। अुनमें यह भाव स्पष्ट दिखाअी देता था कि जीवन जैसे पवित्र विषय पर वे बोल रहे हैं। लेकिन फिर भी अुनके प्रवचनमें कृत्रिमता छू तक न जाती थी। मैं जैसे-जैसे अुनके प्रवचन सुनता गया, वैसे-वैसे मुझे विश्वास होता गया कि ये मामूली मास्टर नहीं, बल्कि कोअी चरित्रसंपन्न भव्य पुरुष हैं, और अनजानमें मैं अुनका भक्त बनने लगा।

* दोहे जैसा अेक मराठी छंद।

वामन मास्टरको अपनी वासरी (डायरी) लिखनेकी आदत थी। अुन्होंने किताबकी तरह अेक मोटीसी कापी बनवा ली थी। अुसमें रोज़ाना लिखा ही करते, लिखा ही करते। लेकिन वह सब अंग्रेज़ीमें लिखा होता। वे हर रोज़ वर्गमें अपनी वासरी ले आते, और जब हम सवाल हल करने लगते अुस वक़्त वे अुसमें कुछ न कुछ लिखते ही रहते। बालोचित जिज्ञासासे यदि कभी हम अुसे हाथमें लेकर अुसके पन्नों पर नज़र डालते, तो वे न तो नाराज़ होते, और न रोकते ही। मुझे जहाँ तक याद है, मैंने अेक ही दफ़ा अुस डायरीको हाथमें लिया था। मैंने अुसका जो पन्ना खोला था, अुसमें ग्रहणका चित्र था और ग्रहणके बारेमें ही कुछ लिखा था।

वामन मास्टर अंग्रेज़ी भाषा बहुत ही अच्छी तरह पढ़ाते थे। अुनके साथ कविता पढ़नेमें भी हमें खूब आनन्द आता था। हमारे यहाँ तीसरी न्यू रॉयल रीडर चलती थी। अुसमें दूसरा ही पाठ माताके वात्सल्य पर लिखी हुअी कविताका था। अेक दिन वामन मास्टर क्लासमें आये। अुनके हाथमें पुस्तक नहीं थी। कुर्सी पर बैठनेके बजाय वे कमरेमें चक्कर लगाने लगे, और अेकाअेक अुन्होंने अेक सुंदर वर्णन शुरू किया।

"अेक घना जंगल है; लगातार वर्षा हो रही है; वर्षाके साथ हिम भी गिर रहा है। अैसे समय पर अेक स्त्री अपने बच्चेको छातीसे लगाये जल्दी-जल्दी जंगलमें से जा रही है। आहिस्ता-आहिस्ता अँधेरा बढ़ चला है। बरफ़ भी ज्यादा गिरने लगी है। चलना दूभर हो गया है। अब क्या किया जाय? रात कैसे बीतेगी?

"जाड़ा बढ़ता ही जा रहा था। माँको डर लगा कि बच्चेसे अितनी ठंडक बर्दाश्त नहीं होगी। अितनेमें अुसे अेक तरकीब सूझी। अुसने अपने मनमें कोअी निश्चय किया और झटसे अपना बड़ा लबादा (ओवर कोट) अुतारकर अुसमें बच्चेको लपेट लिया। फिर अुसने ज़मीन पर बैठकर बच्चेको गोदमें लिया और अुस पर हिम-वर्षा न

हो अिसलिअे अुस पर अपनी पीठकी कमान बना दी। बस! जो होना था सो हो गया। सुबह कोअी मुसाफ़िर अुस रास्तेसे निकला, तो अुसने देखा कि बरफ़के नीचे कोअी कपड़ा दब गया है। अतः अुसने बरफ़ खोदकर देखा। माताकी लाशको दूर हटाते ही गर्म लबादेमें लिपटे हुअे बालकने रोशनी देखी और वह मुस्करा अुठा।"

वामन मास्टरने अैसा काव्यमय और अंतःकरणको पिघलानेवाला दृश्य हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया कि हममें से हरअेकका हृदय द्रवीभूत हो अुठा। और फिर तो हमारी साँस भी रुक गयी। अितना होनेके बाद अुन्होंने हमारी समझमें आये अैसी अत्यन्त सरल अंग्रेज़ीमें वही कहानी कह सुनायी। अुसमें जो दो-चार नये शब्द आये, अुनका अर्थ अुसी वक़्त बता दिया। अितना हो जानेके बाद वे कुर्सी पर बैठ गये और बोले, "चलो, अब हम अपना पाठ शुरू करें।" नये पाठमें क्या है, यह देखनेकी तकलीफ़ हमने अुठायी ही नहीं थी। कविताके पाठको छोड़ देना मानो आम रिवाज था। लेकिन वामन मास्टरने तो A Mother's Love (माँका प्यार) नामक पाठ ही शुरू कर दिया। वे कविता पढ़ने लगे, तो वह हमें बिलकुल ही आसान जान पड़ी। देखते-देखते हम अुस कविताके प्रवाह पर तैरने और बहने लगे। और जब बीचमें ही,

"Oh God!" She cried in accents wild,
"If I must perish, save my child."

ये पंक्तियाँ आयीं तब तो सारा वर्ग करुण-रसमें शराबोर हो गया। किसीको अिसका भान ही न रहा कि यह वर्ग चल रहा है और हम पढ़ रहे हैं!

अिसी प्रकार 'The Blind Boy' नामक कविता भी अुन्होंने हमें अनुरूप पद्धतिसे पढ़ाअी थी। अंग्रेज़ी पढ़नेका अुनका ढंग अितना स्पष्ट, सरल, प्रभावपूर्ण अेवं भाववाही था कि बीचके कुछ शब्द न मालूम हों, तो भी निश्चित अर्थ मनमें अंकित हो ही जाता।

अितना होने पर भी अुनके वाचनमें कोअी नाटकीय हावभाव नहीं रहते थे ।

कविता या अन्य पाठ पढ़ाते समय वे हमें अुनके अंदरकी नीतिका बोध भी समझा देते थे। आजकलके शिक्षकों और साहित्य-सेवकोंमें नीति-बोधको प्रकट करनेके प्रति कुछ अरुचि-सी दिखाअी देती है। आजकी सार्वत्रिक मान्यता तो यह है कि प्रत्यक्ष बोध नीरस अेवं परिणाम-हीन वस्तु है । अेक विदेशी साहित्यकारने कहा है कि लेखन बोधगर्भ हो तो कोअी हर्ज़ नहीं, लेकिन लेखक धाअीका काम करनेकी झंझटमें न पड़े । साहित्यकी दृष्टिसे यह कलाबोध यथोचित है। लेकिन साहित्यके प्राथमिक पाठ पढ़ानेवाले शिक्षक अगर यह काम न करें, तो साहित्य अेवं नीति दोनोंका दम घुटने लगेगा।

आजकलके शिक्षक नीति-चर्चासे घबड़ा जाते हैं, अिसका कारण मेरे खयालसे बोध देनेवालोंकी निष्ठाका छिछलापन है। वामन मास्टरके नैतिक अुत्साह अेवं लगनका हम पर अैसा प्रभाव पड़ा कि हममें सतयुगके क्षात्र धुरंधरों (Knights) के समान अुत्साह अेवं पुरुषार्थका सोता फूट निकला ।

अेक दिन निचली कक्षाका अेक लड़का किसी कारणसे हमारी कक्षामें आया। वह बिलकुल देहाती था। अुसके कपड़े बिलकुल बेढंगे थे। अुसने बगैर कुरतेके ही कोट पहन रखा था; और अुस कोटके अन्दर अुसका सीना समा नहीं रहा था, अिससे अुसके बटन भी खुले थे। अुसकी वह शकल-सूरत देखकर हमको बड़ी हँसी आयी, लेकिन अुस लड़केको मानो अिसकी कोअी परवाह ही नहीं थी। वह प्रसन्नतापूर्वक हँसते-हँसते ही हमारी कक्षामें आया। वामन मास्टरने अुसे कोटका बटन लगानेको कहा। मास्टर साहबकी बात रखनेके लिअे अुसने बटन लगानेकी कुछ चेष्टा की। लेकिन वह जानता ही था कि चाहे जितना प्रयत्न किया जाय, बटन काज़ों तक नहीं पहुँचेंगे। यह देखकर हम सब हँसने लगे।

काम पूरा करके जब लड़का लौट गया, तो वामन मास्टरने हम सबको फटकारते हुअे कहा, "अुस लड़केकी तन्दुरुस्ती कैसी थी यह 'देखा तुमने? कैसा हट्टा-कट्टा लड़का है! क्या अुसके जैसा निर्दोष और आरोग्यवान तथा अुछलते हुअे खूनवाला तुममें कोअी है? अुसके अुस खुले सीनेको देखकर तो हरअेकको अीर्ष्या होनी चाहिये। यही भावना मनमें पैदा होनी चाहिये कि हमारा सीना भी अैसा हो। घरमें वह सख्त मेहनत करता होगा और ग़रीबीका अेवं सादा जीवन बिताता होगा। कैसी मासूम हँसी वह हँस रहा था! अुस लड़केके मनमें तो आज भी सतयुग ही चल रहा है। आरोग्य और शक्ति घी-दूध या बादाम-पिस्तेमें नहीं, बल्कि अैसे शुद्ध, स्वतंत्र, परिश्रमी अेवं मुक्त जीवनमें ही है।" हमें वस्तुका सच्चा महत्त्व जाननेकी नअी दृष्टि मिली।

हमारी क्लासमें हम तीन-चार विद्यार्थी सरकारी अधिकारियोंके लड़के थे। पढ़ने-लिखनेमें भी हम तीनों विशेष होशियार थे। अिस तरह बुद्धिमत्ता और सामाजिक प्रतिष्ठामें श्रेष्ठ होनेसे हममें अनजानमें और अस्पष्ट रूपसे अैसा कुछ भाव पैदा हो गया था कि हमीं सबसे अच्छे हैं; यद्यपि यह भाव अितना स्पष्ट नहीं था कि हममें अहंकार पैदा होता, क्योंकि आखिर हम अनजान तो थे ही। फिर सबके साथ हम समानताका ही व्यवहार करते थे। लेकिन आज जब अेक शिष्टाचार-शून्य बिलकुल देहाती लड़का हमसे श्रेष्ठ साबित हुआ, तब अच्छे-बुरेकी अेक नअी ही कसौटी हमारे हाथमें आयी। हमने 'डेमॉक्रेसी'-का पाठ सीखा।

६०

सिंहनाद

"कअी वर्ष हो गये; हम अपने कुलदेवताके दर्शनको नहीं गये। कितनी ही मानतायें पूरी करना बाकी हैं। अगर हम अैसे ही बैठ रहे तो क्या कुलस्वामीका कोप नहीं होगा?" अिस प्रकार माँको पिताजीसे कहते हुअे मैंने कअी बार सुना था, और हर बार पिताजी कहते कि, "क्या करें? छुट्टी ही नहीं मिलती। छुट्टी मिली कि तुरन्त ही 'घाटाखालीं' जायेंगे।" 'घाटाखालीं' यानी घाटके नीचे, कोंकणमें। वहाँ गोवामें हमारे कुलदेवता मंगेशका पवित्र स्थान है। [मुझे लगता है कि 'मंगलेश' से मंगेश शब्द बना होगा या शायद 'महान् गिरीश' से मंगेश बना होगा।]

गोवामें जब पोर्तुगीज़ लोगोंका राज क़ायम हुआ, तो धर्मके नाम पर बेहद ज़ुल्म ढाया जाता था। अुन धर्मांध अीसाअियोंने असंख्य ब्राह्मणों और दीगर हिन्दुओंको अीसाअी बना दिया। मंदिरोंको तोड़कर या भ्रष्ट करके गिरजाघर बनवाये। गोवाकी पुरानी बस्तीमें गिरजा-घरके सिवा दूसरा कोअी मन्दिर रह ही नहीं सकता था, और यदि कोअी बनाता तो वह गुनहगार माना जाता था। धार्मिक जुलूस तो निकाले ही नहीं जा सकते थे। अैसे-अैसे क़ानून बनाये गये थे! अुनमें से बहुतेरे तो अभी-अभी तक अमलमें लाये जाते थे। आगे चलकर जब पुर्तगालमें राज्यक्रान्ति हुअी और जनतंत्र क़ायम हुआ, तबसे धार्मिक ज़ुल्म और मुसीबतें बन्द हुअीं। मौजूदा सरकार धर्मशून्य बुद्धिवादी है। अुसकी दृष्टिमें सभी धर्म वहमके स्वरूप

हैं। सभी धर्मोंके प्रति वहाँकी सरकार आज तो समान रूपसे अुपेक्षा-भाव रखती है।*

धार्मिक जुल्मोंके अुस ज़मानेमें हमारी जातिके कुछ गोमंतकीय नेताओंने सोचा कि ये ऒसाऒ हमें तो भ्रष्ट करके ही छोड़ेंगे, लेकिन कुलदेवताकी मूर्तिको हरगिज़ भ्रष्ट नहीं होने देना चाहिये। अतः रात ही रातमें अुन्होंने मंदिरसे कुलदेवताको निकाला और पुरानी वस्तीकी सीमाओंसे बाहर अुनकी स्थापना की। यह नया स्थान आज मंगेशीके नामसे प्रसिद्ध है। महादेवको तो वे लोग बचा सके, लेकिन भगवानको बचानेवाले वे खुद नहीं बच सके। ज़मीन-जायदाद, सगे-संबंधी सबको छोड़कर वे कहाँ जाते? अिससे अुन्होंने लाचारीसे तथा जलते दिलसे ऒसाऒ धर्मका स्वीकार किया; हर अितवारको नियमित रूपसे चर्चमें जाने लगे; लेकिन घर पर तो सोमवार, अेकादशी, शिवरात्रि आदि सभी व्रतोत्सव बाक़ायदा करते रहते। हाँ, अितनी सावधानी अवश्य रखते कि पादरियोंको अिसका पता न चलने पाये। लड़कियोंकी शादियाँ करनी होतीं, तो वे भी अपनी जातिमें से ऒसाऒ बने हुअे लोगोंके गोत्र वगैरा देखकर ही की जातीं।

आखिरकार सन् १८९९ में हम मंगेशी गये। कोंकण और गोवाके कअी मन्दिर अमुक जातिके अथवा अमुक कुटुम्बके ही होते हैं; यानी अुस कुटुम्बके लोग ही वहाँ पूजा और सेवा करने जाते हैं। अैसे मंदिरोंकी आय बहुत होती है और आयकी व्यवस्था अुन अुन जातियोंके पंचोंके हाथमें ही रहती है। गोवामें हमारी जातिके अैसे पाँच-छः मंदिर अलग-अलग जगहों पर हैं। हम मंगेशी जाकर लगभग अेक महीना रहे। यह स्थान बड़ा रमणीय है। चारों ओर अूँची-

---

* यह हालत तबकी है जब 'स्मरणयात्रा' पहले-पहल गुजरातीमें लिखी गयी थी। आज तो यह हालत भी बदल गयी है और गोवामें अशिष्ट साम्राज्यशाहीका दौरदौरा है।

अूंची पहाड़ियाँ हैं और जगह-जगह नारियल, सुपारी तथा काजूके पेड़ हैं। खेती ज़्यादातर चावलकी ही होती है। केलेके पेड़ और अरबी तो हर घरके आँगनमें होनी ही चाहिये। जंगलमें जहाँ देखें वहाँ पिटकुलीके लाल सुन्दर किन्तु ग़रीब फूल नज़र आते हैं। जब हम लोग वहाँ जाते हैं, तब अपने पुरोहितोंके बड़े बड़े घरोंमें ही ठहरते हैं। मंगेशीमें हमें लघुरुद्र, महारुद्र वग़ैरा कअी अभिषेक करवाने थे।

मंगेशीका मंदिर देखने लायक़ है। अुसमें मंदिर, मस्जिद और चर्च तीनोंकी शोभा अिकट्ठी हो गयी है। और मंदिरका वैभव तो छोटे-से देशी राज्य जैसा है। मन्दिरके सामने मीनार जैसी अेक अूंची दीपमाला और अुसके अन्दरसे अूपर जानेकी सीढ़ियाँ हैं। रोज़ाना रातको दीपमालाके शिखर पर प्रकाश-स्तम्भकी तरह अेक बड़ा-सा दीपक जलता रहता है, जिससे अँधेरी रातमें भी मुसाफ़िरोंको मालूम हो जाता है कि यहाँ मंगेशीका मंदिर है। मंदिरके सामने चारों ओर घाट बनाया हुआ सुन्दर तालाब है। अुसे तालाब नहीं बल्कि आअीना ही कहना चाहिये, जो अिस तरह गहराअीमें जड़ दिया गया है कि चारों ओरके नारियलके पेड़ अुसमें अपना चेहरा देख सकें। मंदिरके महाद्वार पर आठों पहर बाजे और शहनाअियाँ बजती हैं और पूजाके समय तो मंदिरके अन्दर भी नगाड़े बजते हैं। महादेवके दोनों ओर कअी नंदादीप हमेशा जला करते हैं और रह रहकर पुजारी तथा भक्तोंके मुंहसे शंभु महादेवकी जयध्वनि निकला करती है।

मेरी अुम्र छोटी होनेसे मुझे कोअी पूजामें नहीं बैठने देता था। मैंने संकल्प किया कि 'मंगेशी' में हूँ तब तक महादेव पर रोज़ाना सौ घड़े पानीका अभिषेक करूँगा। कुअेंसे सौ घड़े पानी खींचना मेरी अुम्रमें कोअी आसान बात नहीं थी। लेकिन संकल्प किया सो किया। थोड़े दिन बाद मेरी कमरमें दर्द शुरू हुआ। बैठने और अुठनेके समय बड़ी पीड़ा होती। मैंने अेक तरकीब निकाली। मैंने दीवालकी खूंटीमें अेक रस्सी बाँधी और अुसे पकड़कर अुठता और वैसे ही बैठता। फिर भी पानी

खींचना तो चालू ही रखा। वे दिन मेरी कर्मकाण्डी मुग्ध भक्तिके थे। सारा दिन और रातके भी कअी घण्टे मैं मन्दिरमें ही बिताता।

अेक दिन हमारे पुरोहित भिक्कम् भटजीने मुझसे कहा, 'अभिषेक चल रहा हो और यदि महादेवजी सेवासे प्रसन्न हो जायँ, तो महादेवके लिंगमें से सिंहनाद सुनाअी पड़ता है।' मैंने कुतूहलके साथ पूछा, 'सिंहनाद यानी क्या?' भटजीने कहा, "भौंरा गूँजता है या बड़े लट्टूके घूमनेसे जैसी आवाज़ निकलती है, वैसी ही घोर गंभीर घुङ...ङ...ङ...ङ जैसी आवाज़ महादेवकी 'पिण्डी'में से निकलती है।" पहले तो मुझे अुस पर विश्वास ही नहीं हुआ। कलियुगमें अैसी दैवी बात हो ही कैसे सकती है? लेकिन भटजीने कअी मिसालें देकर मुझे विश्वास दिलाया।

अुस दिन रातको मुझे नींद नहीं आयी। क्या सौ घड़े पानी डालनेके संकल्पसे महादेव मुझ पर प्रसन्न न होंगे? मैंने अैसे कितने पाप किये होंगे कि मेरी सेवा बिलकुल ही व्यर्थ जायगी? मैं कितनी बार झूठ बोला था, मैंने घरमें चोरी करके खाया था, जानवरों, पंछियों और कीटाणुओंको तकलीफ़ दी थी, अुस सबको याद कर-करके मैंने मंगेश महारुद्रसे क्षमा माँगना शुरू किया। 'अेक बार भी यदि मुझे सिंहनाद सुनाअी पड़ेगा, तो मैं आमरण तेरा भक्त बनकर रहूँगा। अिसके बाद अेक भी अैसा कर्म नहीं करूँगा, जो तुझे पसन्द न हो।' मैं महादेवको वचन देने लगा। लेकिन फिर भी मनको किसी भी तरह विश्वास नहीं होता था कि मुझे सिंहनाद सुननेका सौभाग्य मिलेगा। अपनी भक्ति ही कमजोर है; अपनी श्रद्धा ही कच्ची है। सिंहनाद सुनना ध्रुव, प्रह्लाद या चिलया जैसे किसी भाग्यवानके नसीबमें ही लिखा रहता है। अिस प्रकार विचार करके मैं अपने आपको निराशाका आश्वासन देता था। अिस प्रकार कअी दिन बीत गये।

अेक दिन मैं अपना सौवाँ घड़ा जलाधारीमें डालकर बाहर निकल ही रहा था कि मुझे घुङ...ङ...ङ...की आवाज़ सुनाअी पड़ी।

पहले तो मुझे अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। मैंने माना कि 'मनीं वसे तें स्वप्नीं दिसे' (जो मनमें होता है वही स्वप्नमें दिखाअी देता है।) लेकिन वह भ्रम होता तो कितनी देर टिक सकता था? सिंहनाद बढ़ने लगा और स्पष्ट सुनाअी देने लगा। मैंने गोंदूको बुलाकर कहा, 'नाना, सुन; तुझे सिंहनाद सुनाअी पड़ता है?' विस्मयसे आँखें फाड़कर वह खुले मुँह सुनता रहा। आखिर बोला, 'दत्तू, सचमुच तुझ पर भगवान प्रसन्न हुअे हैं।'

मैं धन्य-धन्य हो गया। मैंने सोचा, 'छुटपनसे जो भक्ति की थी, पूजा-सेवा की थी, नामस्मरण किया था, अुसका फल मुझे मिल गया! अब तो मैं सारी ज़िन्दगी ओीश्वरकी सेवामें ही बिताअूँगा। आग लगे सारे दुन्यवी व्यवहारको। महादेव प्रसन्न हुअे! सिंहनाद सुनाअी पड़ा! अब अिससे ज़्यादा और क्या चाहिये? ओीश्वरका वरद हस्त मेरे सिर पर है।'

भोज़नके समय गोंदूने सबको सिंहनादकी बात कह सुनायी। माँ बहुत खुश हुअी। पिताजी कुछ बोले तो नहीं, लेकिन अुनका भी आनन्द स्पष्ट रूपसे दिखाअी पड़ता था। अुन्होंने वात्सल्ययुक्त दृष्टिसे मेरी ओर देखा। मैं तो विजयी मुद्रासे हरअेकके मुँहकी ओर देखने लगा और हरअेकसे मूक अभिनन्दनका कर अुगाहने लगा। अुस दिन रातको तथा दूसरे दिन सवेरे मैंने नामस्मरणका समय दूना कर दिया। आसपास सोये हुअे लोगोंकी नींदका तनिक भी ख़याल किये बिना मैंने ज़ोर-ज़ोरसे धुन गाना शुरू कर दिया —

'सांब सदाशिव, सांब सदाशिव, जय हर शंकर, जय हर शंकर।'

अिस तरह कितने ही दिन बीत गये। अिस बीच फिर दो बार सिंहनाद सुनाअी दिया। अगर मेरी वही स्थिति क़ायम रहती, तो कितना अच्छा होता!

हमारे गोंदूमें बचपनसे ही प्रयोग करनेकी वैज्ञानिक दृष्टि कुछ विशेष थी। अनेक चीज़ें लेकर अुनको तोड़ने-जोड़नेमें वह हमेशा

मग्न रहता। किसीसे कुछ कहे बिना ही वह अुस सिंहनादका अुद्‌गम खोजने लगा। अुसने मन ही मन तय किया कि अिसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। वह रोज़ाना गर्भागारमें जाकर घण्टों तक वहाँकी अभिषेक-पूजा देखता रहता। अेक दिन वह मेरे पास आकर कहने लगा, 'दत्तू, चल तुझे अेक मज़ेकी बात बतलाअूँ।' मैं अुसके साथ मंदिरमें गया। मंगेशी महादेव कोअी हमेशाकी तरहका लिंग नहीं, बल्कि अेक पुराण-प्रसिद्ध अूबड़-खाबड़ शिला है। प्राचीन कालमें अेक गाय अुस शिला पर आकर अपने दुग्धकी धारा छोड़कर अुसे पयस्नान कराती थी। तबसे अुस शिलाका माहात्म्य प्रकट हुआ। अुस शिला पर जहाँ जलाधारीमें से पानी गिरता कि शिला परके फूल अिधर-अुधर खिसक जाते। शिला अितनी अूबड़-खाबड़ है कि अुसमें कहीं-कहीं अेक-अेक बालिश्त गहरे गड्ढे भी हैं। शिलाके थालेमें से, जहाँसे पानी जा रहा था, गोंदूने हाथ लगाकर अुस पानीको रोक दिया और दूसरे हाथसे जलाधारीको तनिक खींच लिया। पानीकी धारा ठीक अमुक स्थान पर ही गिरने लगी और तुरन्त सिंहनाद शुरू हुआ!

मुझे ज्ञानानन्द होनेके बदले बड़ा दुःख हुआ। मेरी अेक समूची सृष्टि नष्ट हो गयी। गोंदूने कहा, 'आज सवेरे बहुतसे फूल थालेके अिस सिरे पर अिकट्ठे हो गये और अुन्होंने पानीका प्रवाह रोक दिया; अुस समय जलाधारी झोंके खा रही थी, तब भी मैंने सिंहनाद सुना। बराबर अुसी जगह पानीकी धार पड़ती तो आवाज़ होती; धार खिसक जाती तो आवाज़ बन्द हो जाती। यह बात समझमें आते ही मैंने अुसी वक़्त अपना प्रयोग शुरू किया और अेक घण्टेके अन्दर ही सिंहनाद क़ाबूमें आ गया। अब तू कहे तब और कहे अुतनी देर तक मैं तुझे सिंहनाद सुना सकता हूँ।

गोंदूके हाथसे जलाधारी लेकर मैंने भी वह प्रयोग अनेक बार किया। हर बार सिंहनाद बराबर सुनाअी पड़ा। मनको विश्वास हो

गया कि अिसमें दैवी चमत्कार नहीं, बल्कि सृष्टिके भौतिक नियमोंका ही खेल है।

अिसका असर मेरे जीवन पर क्या हुआ, वह मैं यहाँ न लिखूँ यही अच्छा है। कुछ साल पहले मेरे अेक बुजुर्ग मित्रने मेरी अिस बातको सुनकर कहा, "तुम्हारा यह अनुभव श्री दयानन्द सरस्वतीके अनुभव जैसा ही जान पड़ता है।" अुनके मुँहसे दयानन्द सरस्वतीकी बात सुननेके बाद ही मैंने अुस सुधारक संन्यासीकी जीवनी पढ़ी। अिसमें क्या आश्चर्य कि अुनके प्रति मेरे मनमें सहानुभूति अेवं आदरभावका निर्माण हुआ हो!

६१

शिक्षकसे ओीर्ष्या

छुटपनसे मुझे 'कॉपी' (नक़ल) करनेके बारेमें बहुत ही चिढ़ थी। दूसरे लड़केकी पट्टी या पुस्तकमें चोरीसे देखकर मैंने अुत्तर लिखा हो, अैसी अेक भी घटना मेरे जीवनमें नहीं है। परीक्षाके समय पासमें बैठे हुअे लड़केसे पूछना या अपने पास पुस्तक छिपाकर अुसमें से चोरीसे अुत्तर देख लेना, कुरतेकी बाँह पर पेन्सिलसे अुपयुक्त जानकारी लिखकर परीक्षामें अुसका अुपयोग करना, स्याहीचूसकी तह करके अुसके अंदर अितिहासके सन् लिख रखना, पासमें बैठे हुअे लड़केसे काग़ज़की अदला-बदली करना वगैरा चौर्यशास्त्रके अनेकानेक प्रयोग अेवं तरकीबें तो मैं ख़ूब जानता था, लेकिन अेक दिन भी मैंने अिनका प्रयोग नहीं किया। जिस जिस स्कूलमें मैं गया (और मैंने कोअी कम स्कूल नहीं देखे! किसी भी स्कूलमें मैंने लगातार अेक साल तक पढ़ाअी की ही नहीं!) अुस अुस स्कूलमें शिक्षकों और विद्यार्थियोंमें मेरी प्रामाणिकता पर किसीको शंका नहीं हुअी। शिक्षककी

गैरहाज़िरीमें कक्षामें यदि कोअी बात होती और अुसकी शिकायत शिक्षक तक पहुँचती, तो अुसमें दोनों पक्षके विद्यार्थी मेरी गवाही लेनेको शिक्षकोंसे कहते। कअी बार मैं गवाही देनेसे ही अिनकार करता, लेकिन जब कभी कहता सच ही कहता।

अेक बार कारवारमें मेरे अेक जिगरी दोस्तके बारेमें — बाळिगाके विषयमें — कुछ कहनेका मौक़ा आया। हरि मास्टरने मुझसे ठीक मार्केकी बात पूछी। मुझे यह मोह हुआ कि अब मैं अपनी साखका अिस्तेमाल करके झूठ बोल दूँ और अपने मित्रको बचा लूँ। मनमें जवाबका वाक्य भी तैयार हो गया। हिम्मत करके जहाँ बोलना शुरू किया कि हिम्मतने जवाब दे दिया। अेकाध क्षण तो मनके साथ लड़ता रहा, लेकिन फिर सच-सच ही कह दिया। भले मास्टर साहबकी नटखट आँखोंने मेरा सारा मनोमंथन देख लिया। वे हँस पड़े। मेरा मानसिक अपराध खुल गया। मैं झेंपा। लेकिन आख़िर मेरी भावनाकी क़द्र करके शिक्षकने मेरे मित्रको बिलकुल मामूली सौम्य सज़ा दी। बादमें मुझे पता चला कि अिससे हरि मास्टरकी नज़रमें मेरी साख गिरी नहीं, बल्कि बढ़ी ही है।

नक़ल करनेमें पामरता है, हलकापन है, यह बात स्वभावसे ही मेरी रग-रगमें समायी हुअी थी। लेकिन अुस वक़्त मैं मानता था कि नक़ल करनेके लिअे अपनी कॉपी देनेमें बहादुरी और दानशूरता है। और अिससे भी विशेष बात यह थी कि अुसे मैं परीक्षाके समय चौकीदारकी तरह काकदृष्टिसे घूमनेवाले शिक्षकसे बदला लेनेका अेक अच्छा मौक़ा मानता था। लेकिन यह भी बहुत ही बचपनकी बात है। कुछ बड़ा होने पर मैंने अैसा करना भी छोड़ दिया। कोअी भी लड़का यदि मेरी कॉपी माँगता, तो मैं बड़ी मधुरतासे अिनकार कर देता। जब कोअी बार-बार और आजिज़ीके साथ पीछे पड़ता, तो मैं अुसे शिक्षकसे कह देनेकी धमकी देता। लेकिन मुझे याद नहीं कि अिस प्रकार मैंने कभी किसीका नाम शिक्षकको बतलाया हो। अैसे अवसरों

पर मेरे मनमें यही अेक विचार आता कि विद्यार्थियोंका द्रोह करके शिक्षकोंकी मदद करना मुझे शोभा नहीं देगा।

लेकिन अेक बार बड़ी चालाकीके साथ नक़ल करनेके लिअे कॉपी देनेकी अेक घटना मुझे अच्छी तरह याद है। अुन दिनों मैं शाहपुरके स्कूलमें अंग्रेज़ी दूसरी कक्षामें पढ़ता था। गोखले नामके अेक शिक्षक बी० अे० पास करके नये-नये हमारे स्कूलमें आये थे। अुनका फुटबालकी तरह गोल सिर, नीबू जैसी कान्ति, धूर्त आँखें, ठिंगना कद — सभी कुछ आकर्षक था। अुनके अंग्रेज़ीके अत्यन्त नखरेबाज़ अुच्चारण और लड़कोंके साथ शिष्टाचारसे पेश आना अुनकी विशेषता थी। 'अिंडिया' का अुच्चारण वे 'अिंडिय' करते। 'आयडिया' के बजाय वे 'आयडिय' कहते। वे बार-बार हँसते-हँसते लड़कोंसे कहते, "तुम लोगोंकी सभी चालाकियाँ मैं जानता हूँ। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते। अिस संबंधमें मैं भी तुममें से ही अेक हूँ।"

गोखले मास्टरके प्रति हम सबके मनमें सद्भाव तो था। मीठे स्वभावका शिक्षक हमेशा विद्यार्थियोंमें प्रिय होता ही है। लेकिन वे हमसे धोखा नहीं खा सकते अिसका क्या अर्थ ? यह तो विद्यार्थियोंका सरासर अपमान है ! क्या हम अितने गये-गुज़रे हो गये ? शिक्षकोंमें यदि अिस तरहके आत्मविश्वासको बढ़ने दिया गया, तो वे देखते-देखते हम पर क़ाबू पा लेंगे और फिर अुन्हींका राज्य बेखटके चलता रहेगा। ना, अिन मास्टरोंका तो मुक़ाबला करना ही होगा।

हमारी सत्रांत (छः माही) या वार्षिक परीक्षा चल रही थी। गोखले मास्टर भूगोलकी परीक्षा लेनेवाले थे। मुझे तो विश्वास था कि हमेशाकी तरह मुझे पचासमें से पचास नंबर मिलेंगे। लेकिन मैंने हृदयमें संकल्प किया कि आज गोखले मास्टरको धोखा अवश्य देना चाहिये। लिखित परीक्षाके प्रति शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनोंमें अरुचि होती है, लेकिन जबानी परीक्षामें सभीको अेक-से कठिन सवाल नहीं पूछे

जा सकते। अिस असुविधाको दूर करनेके लिअे गोखले मास्टरने अेक युक्ति ढूँढ़ निकाली। अुन्होंने परीक्षा देनेवाले सभी विद्यार्थियोंको बाहर निकालकर अेक कमरेमें बैठनेको कहा और परीक्षाके कमरेमें अेक-अेक विद्यार्थीको बुलाकर अुससे नियत प्रश्न पूछनेका अिन्तज़ाम किया। परीक्षाके कमरेसे लगा हुआ छोटा कमरा खाली रखा गया था। जब अेक लड़केकी परीक्षा शुरू हो जाती, तब अुससे दूसरे नंबरका विद्यार्थी अुस छोटे कमरेमें जाकर बैठ जाता। पहले नंबरकी परीक्षा पूरी होते ही वह कमरेका दरवाज़ा खोलकर दूसरे नंबरवाले लड़केको बुलाता। दूसरे नंबरका लड़का अंदर जानेके पहले बाहरके कमरेमें बैठे हुअे तीसरे नंबरके लड़केको आवाज़ देकर बीचके कमरेमें बैठनेको कहता, और फिर खुद क़त्लखानेमें दाखिल होता। जिनकी परीक्षा हो जाती, अुनको परीक्षाके कमरेमें ही अन्त तक बैठे रहना पड़ता। गोखले मास्टरके हाथमें अेक काग़ज़ था, जिस पर पच्चीस सवाल लिखे हुअे थे। वे हरअेकको वे ही सवाल पूछते और नंबर देते जाते।

अैसे मजबूत क़िलेसे चोरी करके परीक्षाके सवाल बाहर लाना संभव नहीं था। वर्गके विद्यार्थी कहने लगे कि "आज तो हम हार गये।" मैंने कहा, "क्या अिस तरह आबरूसे हाथ धोये जा सकते हैं? मैं अंदर जाते ही तुम्हें सवाल लिख भेजूँगा।" परीक्षाका कमरा दूसरी मंज़िल पर था। मैंने अेक विद्यार्थीसे कहा, 'तू खिड़कीके नीचे जाकर बैठ। मैं अूपरसे प्रश्नोंका काग़ज़ नीचे फेंक दूँगा। तू झटसे वह लेकर चम्पत हो जाना। यदि तू तनिक भी वहाँ खड़ा रहा, तो समझ लेना हम दोनोंकी शामत आ जायगी।'

मेरी बारी आयी। मैंने जल्दी-जल्दी जवाब दिये और पचासमें से अड़तालीस नंबर पानेका संतोष लेकर अेक कोनेमें डेक्सके पास जाकर बैठ गया। फिर जेबमें से तीन काग़ज़ निकाले। अेक काग़ज़ पर कुछ मराठी कविताअें लिखीं, दूसरे पर भूगोलके सवाल और तीसरे पर कुछ मज़ेदार चुटकुले। कविताका काग़ज़ तो डेस्क पर ही छोड़ दिया। भूगोलके

प्रश्नपत्रको मोड़कर अुसके अन्दर दो कंकर रखे और अुसे बिलकुल तैयार रखा।' फिर चुटकुलेवाले काग़ज़को फाड़कर अुसके दस-बारह छोटे-छोटे टुकड़े किये। और फिर अुस कंकरवाले काग़ज़को तथा छोटे-छोटे टुकड़ोंको हाथमें लेकर सीधा खिड़की तक गया और खिड़कीसे बाहर फेंक दिया। यह तो संभव ही न था कि शिक्षकका ध्यान मेरी ओर न जाता। मैंने तो भोलपनसे खिड़की तक जाकर काग़ज़ फेंके थे। कंकरवाला काग़ज़ तो तुरन्त नीचे गिर गया; गिरा काहेका? मेरे मित्रने अूपरसे ही अुसे लोक लिया था और फिर वह वहाँसे चम्पत हो गया था।

मेरी हिम्मत देखकर ही शायद शिक्षकको मुझ पर शक करना अच्छा न लगा होगा। अुनका अेक ही क्षण अनिश्चिततामें बीता और वे अुठे। दौड़ते हुअे खिड़कीके पास गये और देखने लगे। खिड़कीमें से काग़ज़के टुकड़े अुड़ रहे थे। मुझसे पूछने लगे, 'तुमने नीचे क्या फेंका?' मैंने कहा, 'बेकार काग़ज़के टुकड़े।' खिड़कीसे बाहर देखते हुअे अुन्होंने डेस्क पर रखा हुआ मेरा काग़ज़ मँगाकर देखा। अुस पर क्या था? अुस पर तो मराठी कविताकी कुछ पंक्तियाँ लिखी हुअी थीं। अुसे देखकर अुनकी शंका दूर हो गयी। लेकिन फिर भी क्या औरंगजेब कभी किसी पर भरोसा करके चल सकता है? वे खुद खिड़कीमें खड़े रहे और कक्षाके मॉनिटरको नीचे भेजकर काग़ज़के सारे टुकड़े चुन लानेको कहा। अुसे वे यह भी कहना न भूले थे कि दौड़ते हुअे जाओ और भागते हुअे आओ। क्योंकि यह डर था कि कहीं वह रास्तेमें प्रश्न न कह दे।

मॉनिटर गया। सभी टुकड़े चुन लाया। शिक्षकने बड़ी कोशिश करके सारे टुकड़ोंके आकार देख-देखकर अुन्हें मेज पर जमाया और पढ़कर देखा, तो अुन पर चुटकुलोंके सिवा कुछ न था! वे मुझसे बोले, 'फिर अिस तरह काग़ज़ मत फेंकना। देख, कितना समय बेकार चला गया!' मैंने भी समझदार बनकर कहा, 'जी हाँ।'

फिर तो आनेवाले सभी विद्यार्थियोंके अुत्तर सही निकलने लगे। शिक्षकको शक हुआ। वे अंदर आनेवाले हर नये विद्यार्थीसे पूछने लगे, 'क्यों भाअी, तुम लोगोंको प्रश्नपत्र पहलेसे मालूम हो गया है क्या?' लेकिन अिसे कौन स्वीकार करता? आखिर अेक लड़का आया। वह हमारी कक्षामें सबसे बुद्धू लड़का था। अुसके तो अेक भी विषयमें अुत्तीर्ण होनेकी संभावना नहीं थी। अिसलिअे किसीने अुसे प्रश्न नहीं बताये थे। अपना अिस तरहका बहिष्कार अुसे बहुत अखरा था। अतः शिक्षकने जब अुससे पूछा कि, 'क्यों नारायण, क्या सवाल सबको मालूम हो गये हैं?' तो अुसने कहा, 'जी हाँ।' अुसका जवाब सुनकर मैं तो अपनी जगह पर ही पानी-पानी हो गया। पैरमें पहने हुअे बूट भी भारी लगने लगे। छाती धड़कने लगी। अब तककी सारी साख धूलमें मिल जायेगी। ग़ोखले मास्टर अकसर मेरे बड़े भाअीसे मिला-जुला करते थे। अिससे अब तो सिर्फ़ स्कूलमें ही नहीं, घरमें भी आबरूका दिवाला निकल जायेगा। मुझे कहाँसे यह दुर्बुद्धि सूझी! गया, सब कुछ चला गया। अब तो कितनी भी सचाअीसे बरताव करूँ, तो भी यह कलंकका टीका हमेशाके लिअे लगा ही रहेगा। अिस शिक्षकसे अीर्ष्या करनेकी बात मुझे कहाँसे सूझी?

अीश्वरके घरका कायदा किसीकी समझमें नहीं आता। कभी कभी तो बहुतसे अपराध करने पर भी मनुष्यको सज़ा नहीं मिलती। अुसके अपराध बढ़ते ही जाते हैं और आखिरी घड़ीमें अुसे अपने सारे अपराधोंकी सज़ा अेक साथ भुगतनी पड़ती है। कभी कभी पहली बार ही अितनी सख्त सज़ा मिलती है कि वह फिरसे अपराध करना ही भूल जाता है। अिसे मैं अीश्वरकी कठोर कृपा कहता हूँ। कभी-कभी मनुष्यके पश्चात्तापको ही काफ़ी सज़ा मानकर शायद अीश्वर अुसे बचा लेता होगा। यह अंतिम हालत सचमुच बड़ी कठिन होती है। अपने बच जानेमें यदि मनुष्य अीश्वरकी दयाको पहचान ले, तो फिर वह कभी गुनाह नहीं करेगा। लेकिन यदि बचनेमें वह अपने भाग्यकी महत्ता समझे

अथवा यह नतीजा निकाले कि कर्मफलका नियम धर्मकारोंके कहनेके मुताबिक अटल नहीं है, तो वह अधिकाधिक गड्ढेमें गिरता जायगा और अन्तमें अंधेरेमें डूब जायगा। अीश्वर चाहे जो नीति अख्तियार करे, फिर भी वह न्यायी है, अिसीलिअे दयालु है और सदाचारको प्यार करता है। यदि अितनी बात हम ध्यानमें रखें और अिन्हीं विचारोंको दृढ़तापूर्वक पकड़े रहें, तो ही हम अपराध करनेसे बच सकेंगे और हमारा अुद्धार होगा।

शिक्षकने पूछा, 'प्रश्न कहाँसे फूटे?' नारायणने कहा, 'मॉनिटर पटवेकरने फलाँ लड़केको बताया, फलाँ लड़केने फलाँ लड़केको बताया, अिस प्रकार सारे प्रश्न सबको मालूम हो गये। लेकिन मुझे किसीने नहीं बताया; सबने मेरा बहिष्कार किया है।'

बात यह हुअी थी कि मॉनिटरने हर लड़केको परीक्षाके कमरेमें लेनेके लिअे दरवाज़ा खोलते वक़्त अेक-दो सवाल धीरेसे कह दिये थे और नीचेसे मेरे काग़ज़के टुकड़े लाने जब वह गया था, तब भी जाते-जाते अुसने अेक-दो सवाल लड़कोंको बता दिये थे। बस, अुसकी अिस दुर्बुद्धिकी ढालके पीछे मैं बच गया। अिसका मतलब अितना ही था कि शिक्षकको मेरी चालाकीका पता न चला। वर्गमें किसीके साथ मेरी दुश्मनी नहीं थी, अिसलिअे मेरा नाम ज़ाहिर न हुआ।

वर्गके अन्य लड़के तो यह प्रसंग भूल गये होंगे। लेकिन अुन अन्तिम चार-पाँच क्षणोंमें मैंने जिस मानसिक वेदनाका अनुभव किया था, और अपने आपको जो अुपदेश दिया था, वह मेरे जीवनके अेक क़ीमती प्रसंगके तौर पर मुझे याद रहेगा। मैं अुसे कभी नहीं भूल सकता।

मैंने जिसे प्रश्नोंका काग़ज़ पहुँचा दिया था, वह अेक सूतके व्यापारीका लड़का था। अुसने मुझे सूतकी लच्छियोंके दोनों ओर लगाया जानेवाला अेक बढ़िया मोटा गत्ता भेंटमें दिया था। कअी दिनों तक वह गत्ता मेरे पास था। जब जब अुसकी ओर मेरा ध्यान जाता, तब तब मुझे अुल्लिखित सारी घटनाका स्मरण हो आता।

६२

नशीला वाचन

अरेबियन नाअिट्स अथवा सहस्र रजनी चरित्र (आलिफ लैला) दुनियाके साहित्यकी अेक मशहूर चीज़ है। जिसने अिन अेक हज़ार अेक रातोंकी कहानियाँ न पढ़ी हों, अैसा पढ़ा-लिखा आदमी शायद ही कोअी होगा। हरअेकके जीवनमें अेक अैसी अुम्र होती है, जब अैसी काल्पनिक बातें पढ़नेका और अुनका चिन्तन करनेका बहुत शौक़ रहता है। अिस ग्रंथसे मेरा परिचय किस प्रकार हुआ, अुसका स्मरण लिखने जैसा है।

मेरे बड़े भाअी पढ़नेके लिअे पूना गये थे। शायद अुसी जमानेमें प्रख्यात मराठी साहित्यिक विष्णुशास्त्री चिपळूणकरके पिता कृष्ण-शास्त्रीने अरेबियन नाअिट्सका मराठी अनुवाद किया था। (या बड़े भाअीको पहले-पहल अुसके बारेमें अुसी वक्त मालूम हुआ होगा।) वह अनुवाद अनुवाद-कलाका अप्रतिम नमूना माना जाता है। वह अनुवाद जैसा कतअी नहीं लगता; और अुसकी भाषा अितनी सुंदर है कि यह पुस्तक मराठी भाषाका अेक आभूषण मानी जाती है।

बड़े भाअीके मनमें यह अभिलाषा पैदा हुअी कि यह पुस्तक अपने पास हो तो अच्छा रहे। लेकिन अितनी बड़ी पुस्तक खरीदनेके लिअे पैसे कहाँसे लायें? हर माह पिताजीके पाससे जो पैसे आते, अुनका तो पाअी-पाअीका हिसाब देना पड़ता। [यह भी अेक आश्चर्यकी बात है। आगे चलकर जब मैं पढ़नेके लिअे पूना गया, तब किसी भी समय पिताजीने मुझसे हिसाब नहीं माँगा। मैं अपने आप ही हिसाब भेजता, तो अुसे भी वे नहीं देखते थे। अिसका कारण यह हो सकता है कि बड़े भाअीके विद्यार्थीकाल और मेरे

विद्यार्थीकालमें अेक पीढ़ीका अंतर पड़ गया था; अुसका यह असर होगा या फिर बचपनसे मैं पिताजीके साथ रहकर अुनकी निगरानीमें जो घरका प्रबंध देखता था, अुससे अुन्हें मेरी विवेक-बुद्धि पर विश्वास हो गया होगा कि कहाँ खर्च करना और कहाँ न करना यह अच्छी तरह जानता है। मुझसे यदि वे बराबर हिसाब माँगते रहते, तो मुझे हिसाब लिखनेकी आदत पड़ जाती। हिसाब लिखनेकी आदतके अभावमें मैंने अपनी ज़िन्दगीके आर्थिक व्यवहारको बहुत ही संकुचित कर दिया। मैंने तो अपनी ज़िन्दगीके लिअे यही सिद्धान्त बना रखा है कि चाहे जो हो, कितनी भी असुविधाअें अुठानी पड़ें, लेकिन किसी भी हालतमें किसीसे अुधार पैसे नहीं लेने चाहियें; कर्ज़का तो नाम भी नहीं लेना चाहिये। कभी किसीको पैसे अुधार न दिये जायँ, और जब दिये जायँ तो यही समझकर दिये जायँ कि वे फिर वापस मिलनेवाले नहीं हैं। अिससे मुझे हमेशा संतोष ही रहा है। सार्वजनिक जीवनमें आनेके बाद भी मैंने कभी पैसेकी ज़िम्मेदारी अपने सिर नहीं ली। अैसा करनेसे संतोष तो मिला, लेकिन मेरे जीवनका अेक महत्त्वपूर्ण अंग विकसित नहीं हो पाया। ख़ैर!]

न जाने किस तरह, लेकिन किसी न किसी तरह बड़े भाअीने (शायद किताबों और खाने-पीनेके खर्चमें काट-छाँट करके) वह पुस्तक खरीद ली। जो चीज़ बड़ी मुश्किलसे मिलती है, अुसकी क़ीमत और अुसकी मिठास असाधारण होना स्वाभाविक है। हमारे घरमें और बड़े भाअीके मित्रोंमें बार-बार अिस अरेबियन नाअिट्सका ज़िक्र आता। मैं अुस वक़्त भी बहुत छोटा था। मुझे तो अुस समय यही लगता था कि जैसे समुद्र-मन्थन करके देवताओंने अमृत प्राप्त किया था, वैसा ही कुछ असाधारण पराक्रम करके बड़े भाअीने यह किताब प्राप्त की है।

फिर मैं बड़ा हुआ। बड़े भाअीकी गिनती प्रौढ़ पुरुषोंमें होने लगी। अब वे समझ गये कि अरेबियन नाअिट्स अमृत नहीं, बल्कि

मदिरा है। अिसलिअे अुन्होंने वह पुस्तक तालेमें बन्द करके रख दी। वे अिस बातकी बहुत सावधानी रखते कि वह हमारे हाथ न लगे।

लेकिन अेक दिन गोंदूने मौक़ा पाकर अुसे अुड़ाया और अुसमें से अेक-दो कहानियाँ पढ़कर अपने पराक्रमकी प्रसादीके रूपमें अुसी रातको मुझे कह सुनायीं। फिर तो मेरा भी कुतूहल जागा। मैंने बाबा (बड़े भाअी) के सारे दिनके कार्यक्रमकी छान-बीन की, कौन कौनसे घण्टे सुरक्षित हैं यह निश्चित किया, और निश्चित समय पर अुनके कमरेमें घुसकर अुस पुस्तकको पढ़ने लगा। जिस तरह जनक राजाके दरबारमें शुक मुनि दूधसे लबालब भरा हुआ प्याला हाथमें लेकर योगयुक्तकी तरह सर्वत्र घूमे थे, अुसी तरह मुझे भी वह पुस्तक पढ़नी पड़ी। कहानियोंका अैसा रस जमता था, मानो हम जादूकी दुनियामें ही सैर कर रहे हों। अभी चीन देशमें, तो अभी ख़लीफ़ा हारून अल रशीदके दरबारमें; अभी सिंदबादके साथ, तो अभी अलीबाबा और चालीस चोरोंका ख़ात्मा करनेवाली अुस मरजीनाके साथ; अिस तरह राक्षसों, परियों, जादुअी लालटेनों और जादुअी घोड़ोंकी दुनियामें मेरी कल्पनाके घोड़े दौड़ते फिरते। लेकिन बाबाके लौटनेका समय बराबर ध्यानमें रखना पड़ता। क्योंकि ज़रा भी गाफ़िल रहने पर पकड़े जानेका डर था।

कअी दिनों तक अिस तरहका वाचन चलता रहा। लेकिन आख़िर अेक दिन मैं पकड़ा गया। मैंने सोचा था कि बाबा यदि ग़ुस्सा होकर पीटेंगे नहीं तो आड़े हाथों ज़रूर लेंगे। मेरा मुँह बिलकुल अुतर गया था। अद्‌भुत कहानीके कुशल राजपुत्रके बदले वाचन-चोर बनकर मैं बाबाके सामने खड़ा था। लेकिन बाबा नाराज़ नहीं हुअे। शायद अुन्हें अपना बचपन याद आ गया हो। दुःखी हृदयसे तथा गंभीर आवाज़में अुन्होंने अितना ही कहा कि, 'दत्तू, तू अपना ही नुक़सान कर रहा है। यह वाचन तो ज़हर है; ज़हरसे भी ज़्यादा बुरी शराब

है। अिसे छूना मत।' बाबाकी अिस दर्दभरी सलाहका मुझ पर असर होना चाहिये था, लेकिन मुझ पर तो कहानियोंका नशा सवार था। मैं अितना ही देख पाया कि बाबा गुस्सा नहीं हुअे अिसलिअे नाराज़ नहीं होंगे। जिस प्रकार कामी व्यक्ति निर्लज्ज बन जाता है, अुसी प्रकार क़िस्सोंके चस्केने मुझे बेहया बना दिया। मैं अब कोअी अनजान बच्चा नहीं हूँ, अैसी आवाज़में मैंने बाबासे कहा, 'बाबा, आप कह रहे हैं वह सच है। लेकिन मैंने तो क़रीब तीन-चौथाअी पुस्तक पढ़ डाली है। अब यदि आप मुझे शेष अेक चौथाअी हिस्सा और पढ़ लेने देंगे, तो अुसमें क्या ज़्यादा नुक़सान होगा?' बाबा पिघले या निराश हुअे यह तो कौन जाने, लेकिन अुन्होंने कहा, "तब तो ले जा यह पुस्तक, और अिसे पूरा कर ले।" अुस मौक़े पर बाबाको क्या करना चाहिये था, अिसका निर्णय मैं आज भी नहीं कर सकता। लेकिन मुझे अैसा ज़रूर लगता है कि अगर अुस किताबके बारेमें बाबाकी अितनी प्रतिकूल राय थी, तो अुन्हें चाहिये था कि वे अुसे नष्ट ही कर देते। ख़ैर! मैंने पूरी पुस्तक पढ़ ही डाली। बहुत दिनों तक अुन कहानियोंका असर मेरे दिमाग़ पर रहा।

लेकिन चूँकि अिस पुस्तकको मैंने अपेक्षाकृत बहुत ही छोटी और निर्दोष अुम्रमें पढ़ा था, या फिर मैंने झट-झट अेक ही बैठकमें सारी किताब पढ़ डाली थी, अिसलिअे जैसे मनुष्य ग़श आनेके बाद सब कुछ भूल जाता है, अुसी तरह मैं अुस सारी पुस्तकको लगभग भूल ही गया। बिजलीकी तेज़ीसे लम्बा सफ़र करके हर रोज़ दो-दो तीन-तीन शहरोंमें चार-चार छः-छः व्याख्यान देने पड़ें, तो जिस तरह हम यह भूल जाते हैं कि किस जगह हमने क्या देखा, किस-किससे मिले और क्या कहा, वैसा ही कुछ हुआ होगा। आगे चलकर कअी साल बाद अलीबाबाकी कहानी और सिंदबादकी यात्राअें फिर अेक दफ़ा संक्षिप्त रूपमें अंग्रेज़ीमें पढ़नी पड़ी थीं, अिसलिअे वे कहानियाँ कुछ कुछ दिमाग़में जम गयी हैं। शेष तो सब शून्यवत् ही है।

अरेबियन नाअिट्सकी कहानियाँ तो मैं भूल गया। लेकिन अुनके वाचनसे कल्पनामें विहार और विलास करनेकी गन्दी आदत बहुत लम्बे अरसे तक बनी रही। कल्पनाको अितनी ज़बरदस्त विकृत शिक्षा मिली थी कि अुसका असर सारे जीवन पर पड़ा। और वह बहुत ही बुरा था। यदि मैं अरेबियन नाअिट्स न पढ़ता, तो मैं समझता हूँ कि मैं कल्पनाकी कितनी ही अशुद्धियोंसे बच जाता। दुःखमें सुख अितना ही है कि अिस पुस्तकको मैंने बचपनमें पढ़ा था, अिसलिअे अिसका बहुत-सा शृंगार दिमाग़में घुसनेके बदले सिरके अूपरसे गुज़र गया।

बहुतेरे शिक्षक और माँ-बाप मानते हैं कि अरेबियन नाअिट्सका शृंगार ही अुसका सबसे भयानक ज़हर है। मैं मानता हूँ कि अुस प्रकारका शृंगार तो जीवनको बिगाड़ता ही है; लेकिन अुससे भी ज्यादा खतरनाक बात तो यह है कि अैसी पुस्तकें पढ़नेसे सद्‌गुण अेवं पुरुषार्थके प्रति मनुष्यकी श्रद्धा मन्द पड़ जाती है और अुसे दैव, दुर्घटना, अेवं अद्‌भुत संयोग आदिका आश्रय लेनेकी आदत पड़ जाती है और अुसकी अभिरुचि भी विकृत बन जाती है। यह चीज़ मनुष्यको खतम ही कर देती है। अिससे मनुष्य निर्वीर्य दैववादी बन जाता है; बिना योग्यताके, बिना मेहनतके, दुनियाके सारे अुपभोग प्राप्त करनेकी अिच्छा करने लगता है; और मैंने देखा है कि कोअी-कोअी तो अुस प्रकारकी आशाओं पर भरोसा रखकर बैठ जाते हैं। दिमाग़की कमज़ोरी और थोड़ा-सा प्रयत्न करने पर थक जाना — अिसका पहला परिणाम है।

अिसके बाद मैंने फिर कभी 'अरेबियन नाअिट्स' नहीं पढ़ी। अतः यह कहना कठिन है कि अुसके बारेमें मेरी क्या राय है। लेकिन अुस वक़्तके वाचनसे मेरे दिल पर जो असर हुआ अुससे मैंने यही नतीजा निकाला कि अैसी पुस्तकें मनुष्य-जाति पर हमला करनेवाली प्लेग (ताअून) और अिन्फ्लुअेंजा जैसी छूतकी बीमारियाँ

हैं। घरकी वह पुस्तक आज यदि मेरे हाथ पड़े और वह वैसी ही हो, जैसा कि मेरा खयाल है, तो मैं अुसे जला ही दूं। लेकिन कौन जाने आज वह किसके हाथमें होगी। अैसा साहित्य खेतके घासकी तरह जीनेकी ज़बरदस्त शक्ति रखता है। अच्छी-अच्छी पुस्तकें अलमारियों और पुस्तकालयोंमें धूल खाती पड़ी रहती हैं, लेकिन अैसी पुस्तकोंको अेक दिनकी भी फुरसत या छुट्टी नहीं मिलती होगी। जिस तरह रोगके कीटाणु सब जगह पहुँच जाते हैं, अुसी तरह अैसा साहित्य समाजमें आसानीसे फैल जाता है। रसास्वादके दीवाने लोग अुसका प्रचार करते हैं और ग़ैरज़िम्मेदार अुन्मत्त साहित्यिक लोग अैसी किताबोंका बचाव भी करते हैं। सचमुच,

'पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरां अुन्मत्तभूतं जगत्।'

६३

धारवाड़की सब्ज़ी-मंडी

कारवारमें रहकर मैं कन्नड़ भाषा कुछ-कुछ समझने लग गया था; लेकिन वह तो ठहरी सभ्य पुस्तकी भाषा। वहाँ अंग्रेज़ी भाषाका अनुवाद मराठीमें भी कराया जाता और कन्नड़में भी। पाठ्य-पुस्तकें पढ़ाते समय लड़कोंकी समझमें अंग्रेजी, मराठी या कन्नड़में भी किसी शब्दका अर्थ न आता, तो शिक्षक कोंकणीका शब्द बताकर काम चला लेते। अिस तरह तीनों-चारों भाषाओंके शब्दोंसे मेरा परिचय होने लगा। लेकिन कभी अैसा नहीं लगा कि अंग्रेज़ीके अलावा अन्य भाषाओंकी तरफ़ भी ध्यान देना चाहिये। चुनाँचे अन्य भाषाअें सीखनेका मौक़ा पाकर भी मैं अछूता ही रह गया।

अितनेमें हम धारवाड़ चले गये। वहाँ मुझे और भाअूको रोज़ाना बाज़ार जाना पड़ता। शहरमें प्लेग शुरू हो जानेके कारण

जब शहरसे बाहर दूर झोंपड़ी बनाकर रहनेका निश्चय हुआ तो अुसमें मदद देनेके लिअे बेलगाँवसे विष्णु आया, लेकिन अुसीको प्लेग हुआ और वह चल बसा। अुसके बाद हमने किसी तरह झोंपड़ी बनायी और वहाँ रहने लगे। अब बाज़ार करनेके लिअे हम दोपहरको खाना खाकर जाते और रातको वापस आते। हमें अपनी आवश्यक चीज़ोंके कन्नड़ नाम कहाँ मालूम थे? अिससे सौदा करनेमें बड़ी कठिनाअी पड़ती। सारे बाज़ारमें अेक ही दूकानदार अैसा था, जो हमसे मराठीमें बोल सकता था। अतः हम पहले अुसके यहाँ जाकर अुससे पूछते कि, 'चनेकी दालको कन्नड़में क्या कहते हैं?' वह कहता, 'कडली ब्याळी।' बस, 'कडली ब्याळी', 'कडली ब्याळी' की रट लगाते हुअे हम सारा बाज़ार घूम डालते। जब तक अच्छा माल पसन्द करके ख़रीद न लेते, तब तक खाये बिना ही कडली ब्याळी हमारे मुँहमें भरी रहती।

फिर लौटकर अुस दूकान पर जाते और पूछते कि, 'मिर्चको कन्नड़में क्या कहते हैं?' वह कहता, 'मेनशिनकाअी'। हम मेन-शिनकाअीकी खोजमें निकलते। मेनशिनकाअी खरीदनेके पहले कअी बार छींकना पड़ता। कर्णाटकके लोग मिर्च खानेमें बड़े बहादुर होते हैं। यहाँ तक कि किसी किसीका तो अुपनाम भी मेनशिनकाअी होता है! फिर बारी आती नारियल की। कन्नड़में अिसे कहते हैं 'तेंगिनकाअी'। तेंगिनकाअीके बोझके साथ हम अिस शब्दको भी लेकर आगे बढ़ते।

संगीतमें जैसे गवैया चाहे जितना आलाप लेने पर भी ठीक समयसे सम पर आ जाता है, अुसी प्रकार हमें बार-बार अुस दूकानदारके पास जाना पड़ता था। अेक काग़ज़के टुकड़े पर सारे नाम लिखकर याद कर लेनेका आसान रास्ता न जाने हमें क्यों नहीं सूझा। हम तो किसी अनपढ़ व्यक्तिकी तरह हर बार अुस ज़िन्दा कोषके पास जाते। वह भला आदमी भी कुछ मुस्कराकर हमारे पूछे हुअे प्रश्नका जवाब आहिस्तासे स्पष्ट अुच्चारणके साथ कह देता।

कभी-कभी साथमें यह भी बतला देता कि यदि 'काअी' कहोगे तो कच्चा फल मिलेगा और 'हण्णु' कहोगे तो पक्का मिलेगा।

सब्जी-मंडी अिस दूकानसे बहुत दूर थी। वहाँ पर हमें अपनी ही अक़ल चलानी पड़ती। शाक बेचनेवाली ज़्यादातर तो स्त्रियाँ (कुँजड़िनें) ही होतीं। अुनके अुच्चारण बिलकुल देहाती होते। कअी बार सुनने पर भी शब्द समझमें न आता। बार-बार पूछते तो सारी औरतें मज़ाकिया तौर पर हँसने लगतीं। वे हँसतीं तो पके तरबूजेके काले बीजों जैसे अुनके दाँतोंको देखकर मुझे भी हँसी आ जाती। अिस अिलाक़ेमें अेक क़िस्मकी मिस्सी लगानेकी प्रथा है। सफ़ेद दाँत स्त्रियोंको शोभा नहीं देते। काली स्त्रियोंके रूपको हड्डीके समान दाँत कैसे फब सकते हैं? नाखूनों पर मेहँदी, दाँतमें 'दाँतवण' (अुस मिस्सीका वहाँका नाम) और गालों पर हल्दी, यह कर्णाटकी रमणीकी ख़ास शोभा है। कोअी महिला जब किसीके यहाँ बैठने जाती है, तो हल्दीका चूर्ण अुसके सामने ज़रूर रखा जाता है। अुस चूर्णको वह दोनों हाथों पर चुपड़कर दोनों गालों पर मलती है। मुँहकी अुस सुवर्ण जैसी कान्तिकी वहाँ ख़ूब तारीफ़ होती है।

कुँजड़िनोंके साथ सौदा तय करना हमारा सबसे मुश्किल काम होता। अेक बार भाअू बदनीकाअी (कच्चा बैंगन) के बजाय 'बदनी हण्णु' (पक्का बैंगन) कह गया। सारा बाज़ार हँस पड़ा। भाअू झेंपा और अुस झेंपकी परेशानीमें अुस औरतको बदनीकाअीके पैसे देना भूल गया। हम तो भूले ही, लेकिन वह औरत भी हास्यरसके प्रवाहमें पैसे लेना भूल गयी।

हम वहाँसे पासके दूसरे बाज़ारमें चले गये। वहाँ हम 'बेल्ला' (गुड़) ख़रीद रहे थे। अितनेमें अचानक वह औरत दौड़ती हुअी आयी। अुसने भाअूकी धोती पकड़ी और कन्नड़में गाली देना शुरू किया। भाअूका मिज़ाज भी तेज़ था। लेकिन वहाँ वह क्या करता? ख़ैरियत यह थी कि हम अुन गालियोंका मतलब नहीं समझते थे!

वह औरत फ़ी मिनट डेढ़ सौ शब्दोंकी रफ़्तारसे गालियाँ दे रही थी, और भाअू मराठीमें पूछ रहा था, 'अरे, पर हुआ क्या?' अुसे अिस बातका खयाल ही न था कि हमने पैसे नहीं दिये हैं। भाअूकी अपेक्षा मुझे कन्नड़ ज़्यादा आती थी, क्योंकि मैं कारवारमें ज़्यादा रहा था। मैंने भाअूसे कहा, "यह बैंगनके पैसे माँगती है; अुसे दे दे।" भाअू याद करने लगा कि अुसने पैसे दिये हैं या नहीं। मुझे अुस पर बहुत ग़ुस्सा आया। खुले बाज़ारमें हमारी अैसी बेअिज्ज़ती हो रही है! लोग हमारी तरफ़ टकटकी लगाकर देख रहे हैं। यह दृश्य अेक क्षणके लिअे भी कैसे बरदाश्त किया जाय? मैंने भाअूसे कहा, 'अभी तो अिसे पैसे दे दे; फ़िर भले ही हम पहले भी अिसे पैसे दे चुके हों।' लेकिन अैसे मामलोंमें भाअूकी भावना कुछ भोथरी थी या न्यायबुद्धि विशेष तीव्र थी। वह मेरी बात क्यों मानने लगा? वह तो याद करके हिसाब ही लगाता रहा। आखिर मैंने अुसकी जेबमें हाथ डाला और दस पैसे निकालकर अुस औरतके सामने फेंक दिये। हम दोनोंका छुटकारा हो गया।

लौटते समय हमारे बीच विवाद छिड़ा कि अैसे मौक़ों पर क्या करना चाहिये। भाअूने कहा, 'यह दस पैसेका सवाल नहीं, सिद्धान्तका सवाल है। मान ले कि दस पैसेकी जगह सौ रुपयोंका सवाल होता, तो क्या तूने डरकर अिस तरह दे दिये होते?' मैंने कहा, 'जैसी परिस्थिति वैसा सिद्धान्त।' लेकिन भाअू बोला, 'सिद्धान्त तो सिद्धान्त ही है। वहाँ रक़मका सवाल नहीं रहता।' मैंने अुससे कहा, 'परिस्थितिसे अलिप्त, परिस्थिति निरपेक्ष नंगा सिद्धान्त हो ही नहीं सकता। सौ रुपयोंका सवाल होता है, तब हम आसानीसे नहीं भूलते; व्यवहारका कोअी न कोअी सबूत ज़रूर रहता है; और अुस समय अैसी कुँजड़िनोंसे व्यवहार करनेका मौक़ा भी नहीं आता।' हमारा यह मतभेद और अिसकी चर्चा दस दिन तक चलती रही।

आज जैसे संक्षिप्त और स्पष्ट शब्दोंमें मैंने दोनों पक्षोंकी दलीलें पेश की हैं, वैसा अुस वक्त करनेकी शक्ति कहाँसे होती? हमारे सिद्धान्तोंमें भी दृढ़ता नहीं थी और भाषा भी स्पष्ट नहीं थी। हमें अिसका भी भान नहीं था कि हम परस्पर-विरुद्ध विचार पेश कर रहे हैं। सारा गड़बड़झाला था। अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिअे कोअी दलील पेश करने जाते या अुपमा देते, तो वही विवादका विषय बन जाती। अुसका खण्डन-मण्डन करने जाते, तो अुसीमें से नया झगड़ा अुठ खड़ा होता। आगे जाकर हम यह भी भूल जाते कि किसने क्या कहा था। मैं भाअूसे कहता, 'तूने यह कहा था।' भाअू कहता, 'नहीं, मैंने अैसा कभी नहीं कहा।' मैं कहता, 'कहा था।' वह कहता, 'नहीं कहा।'

हमारा यह वाग्युद्ध कअी दिनों तक चलता रहा। पिताजी भोजन करके दफ्तर चले जाते कि हमारे युद्धके नगाड़े बजने लगते। शाम तक चलता रहता। बीच बीचमें गोंदू भी हमारी चर्चामें भाग लेता, लेकिन अुससे किसी भी अेक पक्षका समर्थन न होता और फिर हम दोनोंको मिलकर अुसे शुरूसे सारी बातें समझानी पड़तीं। मुझे विश्वास है कि हमारा युद्ध बराबर शास्त्रोक्त अठारह दिन तक चलता। लेकिन हमें यों लड़ते देखकर माँको बहुत ही दुःख हुआ। हम किस लिअे लड़ते हैं, अिसका खुद हमें ही खयाल नहीं था, तो फिर वह माँको कहाँसे होता? हमें रोज़ाना ज़ोरें-ज़ोरसे लड़ते देखकर माँ बड़ी चिंतित होती। जब अुससे यह दुःख बरदाश्त नहीं हुआ, तो अुसने हमारे पास आकर अत्यन्त ही भरे हुअे गलेसे कहा, 'अरे दत्तू, केशू, तुम्हें यह कैसी दुर्बुद्धि सूझी है। तुम अपने जन्ममें कभी नहीं लड़े। कोअी अच्छी चीज़ खानेको मिलती, तो अपने मुँहमें डाला हुआ कौर भी बाहर निकालकर तुम बाँटकर खाया करते थे। अब तुम्हीं अिस तरह लड़ते रहोगे, तो मैं क्या करूँगी? कहाँ जाअूंगी? मैं आज शामको अुनसे सब बात कह दूंगी।' अुसकी बात सुनकर हम दोनों हँस पड़े। भाअू कहने लगा,

'माँ हम लड़ नहीं रहे हैं, हमारी तात्त्विक चर्चा चल रही है। हम द्वेषसे नहीं बोल रहे हैं, हमें तो तत्त्वोंका निर्णय करना है।'

अिस स्पष्टीकरणसे माँको संतोष न हुआ। माँका वह रुद्ध स्वर मेरे हृदयमें चुभ गया था। मैंने भाअूसे कहा, 'जा, तेरी सभी बातें सही हैं। मुझे चर्चा नहीं करनी है।' भाअू मनमें समझ गया। लेकिन गोंदू अेकदम बोल अुठा, 'कैसे हारा! कैसे हारा! मैं कह रहा था न?'

६४

गुप्त मंडली

डेढ़ वर्षके कारावासके बाद लोकमान्य तिलक महाराज जेलसे छूटे। जेल जानेसे पहलेके हृष्ट-पुष्ट शरीरका फोटो और जेलसे छूटनेके बाद तुरन्त ही लिया हुआ निर्बल शरीरका फोटो, अिस तरह तिलक महाराजकी दोनों तस्वीरें अेक साथ छापी गयी थीं। ये छपे हुअे चित्र घर-घर चिपकाये गये। सब जगह आनन्द ही आनन्द हो गया। अुन दिनों हम मराठी मासिक 'बाळबोध' पढ़ते थे। अुसमें तिलकजीके स्वागतके बारेमें जो लेख प्रकाशित हुआ था, अुसके प्रारंभमें ही कवि मोरोपन्तकी आर्याकी यह पंक्ति शीर्षककी जगह छापी गयी थी:

तेव्हां गंधर्वमुखीं जिकडे तिकडे हि तननम् तननम्।

अुस वक्त सचमुच सारे महाराष्ट्रमें बड़ा अुत्सव मनाया गया। जिस तरह आजकल बढ़ती हुअी आबादीके लिअे शहरके बाहर अुपनगर (मुफ़स्सल-अेक्स्टेन्शन्स) बसाये जा रहे हैं, अुसी तरह बेलगाँवके कुछ लोगोंने रेलवे लाअिनके पास नये मकान बनाये थे। अिस नयी बस्तीका प्रवेश-समारंभ अिसी अरसेमें हुआ। अतः लोगोंने

अिस बस्तीका नाम 'टिळकवाडी' (तिलकवाड़ी) रखा। लेकिन अिस बस्तीमें बहुत-से सरकारी नौकर रहनेवाले थें। वे लोग अिस राजद्रोही राष्ट्रपुरुषका नाम ले भी नहीं सकते थे और छोड़ भी नहीं सकते थे। अुन्होंने अिस बस्तीका नाम अन्तमें 'ठळकवाडी' रखा। मनमें समझना टिळकवाडी और बाहर बोलते समय ठळकवाडी कहना! अगर कोअी अिस नये शब्दका मतलब पूछ बैठता, तो कह देते कि शहरके 'ठळक'—खास खास—लोग यहाँ रहते हैं अिसलिअे यह नाम दिया गया है। हृदयमें तो देशभक्ति रहे, लेकिन बाहरसे राजनिष्ठा प्रतीत हो, अिसलिअे अुस ज़मानेके ये चतुर लोग अंदर देशी मिलके कपड़ेकी क़मीज़ पहनते और अूपरसे विलायती सर्ज (कपड़े) का कोट पहनते। पासमें कोअी चुग़लखोर नहीं है अितना विश्वास कर लेनेके बाद कोटके नीचे छिपी हुअी देशी क़मीज़ दिखाकर अपने देशभक्त होनेका वे सबूत पेश करते। क्या हमारे धर्ममें नहीं कहा है कि मुक्त पुरुषको 'अन्तर्बोधो बहिर्जड़ः' की तरह बर्ताव करना चाहिये? आखिरकार बेलगांवकी अिस नयी बस्तीका नाम 'ठळकवाडी' ही प्रचलित हुआ। मालूम होता है, भगवानको खुला व्यवहार ही पसन्द आता है!

तिलकजीकी रिहाअीके अुत्सवके बाद हम तीनों भाअी देशका विचार करने लगे। तिलक जैसे देशभक्तोंको सरकार जेलमें रखती है, अिसका कारण यही है कि वे खुले आम भाषण देते हैं और अखबारोंमें लेख लिखते हैं। अतः सभी काम यदि गुप्त रीतिसे किये जायें, तो सरकारको पता ही कैसे चल सकता है? क्या शिवाजी महाराज कहीं भाषण करने गये थे? अतः हम तीनोंने निर्णय किया कि अेक गुप्त मंडली बना ली जाय।

अिन्हीं दिनों हमारा घर पीछेकी ओर बढ़ाया जा रहा था। अुसके लिअे नींव खोदते वक़्त ज़मीनमें मय म्यानके अेक तलवार मिली। अुस पर कुछ ज़ंग चढ़ गया था और म्यान सड़ गयी थी। विष्णुने

राज-मज़दूरोंसे वह बात गुप्त रखनेको कहकर अुस तलवारको छप्परमें छिपा दिया। हम तीनोंकी गुप्त मंडली स्थापित हो जानेके बाद हम अुस तलवारको निकालते, अुस पर फूल चढ़ाते और फिर हाथमें लेकर चाहे जैसी घुमाते! तलवार वज़नदार नहीं थी, लेकिन मैं भी कोअी बड़ा नहीं था। मैंने जोशमें आकर अुस तलवारसे घरके खंभे पर दो-तीन वार किये थे। खम्भा यदि कट जाता, तब तो सारा छप्पर मेरे सिर पर गिर पड़ता। लेकिन खम्भा कोअी केलेका कच्चा पेड़ तो था नहीं, और न मेरे हाथोंमें तानाजी मालुसरेके समान ताक़त ही थी। अिसलिअे मेरा वह प्रयोग बिलकुल सुरक्षित था। खंभेकी सूरत कुछ बिगड़ ज़रूर गयी, लेकिन अिससे क्या? मेरी देशभक्तिके विकासके आगे खंभेकी शकल-सूरतकी क्या परवाह थी?

कअी साल तक वह तलवार हमारे घरमें रही। बादमें जब मैं राजनैतिक आन्दोलनोंमें भाग लेने लगा और हमने सुना कि पुलिसके आदमी हमारे घरकी ख़ानातलाशी लेनेके लिअे आनेवाले हैं, तो पिताजी पर कोअी आफ़त न आये अिसलिअे मैंने अुस तलवारके टुकड़े कर दिये। लुहारसे मैंने अुन टुकड़ोंकी छुरियाँ बनवायीं और तलवारके दस्तेको शहरसे बाहर अेक छोटेसे पुलके नीचे फेंक आया। अुस दिन मुझे न खाना अच्छा लगा और न नींद ही आयी। पहलेसे ही हम निःशस्त्र हो गये हैं। अैसी हालतमें जो शस्त्र दैवयोगसे हाथ आया था, अुसे भी मुझे अपने हाथों तोड़ना पड़ा यह बात मुझे बहुत अखरी। वास्तवमें हर साल दशहरेके दिन शस्त्रोंकी पूजा करते समय जिस हथियारका प्रयोग करना चाहिये, अुसीका नाश करनेमें हम कुछ अधर्म कर रहे हैं अैसा मुझे अुस वक़्त लगा। लेकिन दूसरा कोअी अिलाज ही न था। अुस समयका राजनैतिक वायुमंडल ही बिलकुल दूषित हो गया था।

मनुष्यकी हत्याके लिअे मनुष्य द्वारा बनाये गये शस्त्रको पवित्र माननेके लिअे आज मेरा मन तैयार नहीं होता, लेकिन अुस वक़्त मैंने तलवारको तोड़ दिया अिसकी बेचैनी आज भी मेरे दिलमें

मौजूद है। खैर! अपनी अुस गुप्त मंडलीमें हम किसी चौथे व्यक्तिको न खींच सके। हम यही सोचते रहते थे कि हमें जंगलमें जाकर तैयारी करनी चाहिये, फिर क़िलोंको जीतना चाहिये और वहाँ पर फ़ौज रखनी चाहिये। यह सब कैसे किया जा सकता है, अिसीकी चर्चा हम करते रहते।

६५

कुसंस्कारोंका पाश

हिन्दू स्कूलका पवित्र वातावरण लेकर मैं धारवाड़ गया और वहाँसे बेलगाँवके पास शाहपुर आया था। मैं कक्षाके सभी लड़कोंसे अलग था। मुझे अिसका भान भी था और अभिमान भी। कक्षामें खानगी वक़्तमें मैं नीतिमय जीवनकी बातें करता। और वर्गके किसी भी विद्यार्थीमें असत्य, अश्लील भाषण या अन्याय देखता, तो अुसे कठोर भाषामें अुसके मुँह पर ही धिक्कारता था।

अेक बार वर्गके अेक लड़केके सामने ही मैंने अुसके बारेमें कहा, 'यह लड़का कमीना है।' सभी विद्यार्थी देखते ही रह गये। वह लड़का बहुत ग़ुस्सा हुआ, लेकिन अुसकी समझमें न आया कि क्या जवाब दिया जाय। कुछ ठहरकर वह बोला, 'क्या मैंने तेरे बापका कुछ खाया है, जो तू मेरे बारेमें अैसी राय ज़ाहिर करता है? अगर मैं तेरा दबैल होता, तो अपनी यह निन्दा मैंने बर्दाश्त की होती। लेकिन खामखाह अैसी बातें कौन सहन करेगा?' मैंने तो सोच रखा था कि वह मुझे मारने ही दौड़ेगा।

अुसके जवाबसे मैं होशमें आया। मैंने अुससे माफी माँगी और वह क़िस्सा वहीं खतम हो गया।

वर्गके लड़के, कुछ तो आदरसे, लेकिन ज़्यादातर मेरा मज़ाक अुड़ानेके लिअे मुझे 'संत कालेलकर' कहा करते थे। लेकिन मैं तो अुससे फूल गया और सारे स्कूलका नीतिरक्षक काज़ी बन गया। मेरे सामने मुँहसे गंदी बातें निकालनेकी किसीकी हिम्मत न होती थी। दो-चार लड़के मिलकर अिस तरहकी बातें कर रहे होते और मैं वहाँ पहुँच जाता, तो वे सब अेकदम बात बदल देते। मुझे यह सब योग्य जान पड़ता। अितना तो अपना अधिकार है ही, अिसके बारेमें मुझे शंका नहीं थी!

लेकिन अिस तरहकी धौंस लोग कितने दिन बर्दाश्त करते? हमारे वर्गमें अेक बड़ी अुम्रका लड़का था। गाँवके अेक प्रतिष्ठित किन्तु असंस्कारी घरका वह अिकलौता लड़का था। अुसे पढ़ने-लिखनेकी कोअी परवाह नहीं थी। घरके लोगोंका भी यह आग्रह नहीं था कि वह पढ़े। कुछ काम नहीं था, अिसलिअे भाअीसाहब स्कूलमें चले आते। वह अुम्रमें काफ़ी बड़ा और ख़ासा कद्दावर था। अिससे स्कूलके शिक्षक अुसका नाम तक न लेते। वह नियमित रूपसे फीस देता, अिसलिअे जब आनेकी अिच्छा होती तब वर्गमें आकर बैठनेका अुसको हक़ था ही। जब दिलमें आता तब वर्गके विषयोंकी ओर ध्यान देता, नहीं तो अिधर-अुधरकी बातें करता रहता।

स्कूलके छोटे लड़के सदा अुससे डरे रहते। और वह भी लड़कोंको बराबर धमकाता रहता। अैसे प्रसंगों पर बालकोंके पास आत्मरक्षणका अेक ही अुपाय रहता है। शिक्षकके पास तो पहुँचा ही नहीं जा सकता था। क्योंकि अुनसे किसी सहानुभूतिकी आशा नहीं रखी जा सकती थी। अुलटे, झूठी शिकायत करनेकी सज़ा भी मिल सकती थी। और वह लड़का पहलेसे ज़्यादा सताने लगता। अिससे छोटे बालक सदा अुसकी ख़ुशामद करते थे। अुसने मुझे ठिकाने लगानेका बीड़ा अुठाया। मुझे मारने या किसी तरह हैरान करनेकी अुसकी हिम्मत न थी। सज्जन और होशियार विद्यार्थीके नाते

शिक्षकोंमें मेरी प्रतिष्ठा जम गयी थी। पिछड़े हुअे विद्यार्थियोंको पढ़ाओमें मैं बहुत मदद करता था, अिसलिअे वर्गमें भी मेरे प्रति विद्यार्थी काफ़ी आदरभाव रखते थे। अतः अुसने अेक नया ही रास्ता ढूँढ़ निकाला। वह जहाँ बैठा हो वहाँ यदि मैं ग़लतीसे पहुँच जाता, तो वह जान-बूझकर गंदी बातें छेड़ देता। अगर मैं अुसे धिक्कारता, तो वह बेशर्मीसे कुछ हँस देता और ज़्यादा-ज़्यादा गंदी बातें करने लगता। अंतमें मैं अूबकर वहाँसे चला जाता।

अिससे तो भाअीसाहबकी हिम्मत और बढ़ गयी। फिर तो वह जहाँ मैं बैठा होता, वहाँ आकर मेरे पड़ोसके विद्यार्थियोंके साथ गन्दी बातें करने लगता। वर्गके विद्यार्थीके खिलाफ़ शिक्षकके पास शिकायत करना मैं नैतिक दृष्टिसे हीन समझता था। अुसे अिस बातका पता था, अिसलिअे वह बेखौफ़ होकर मेरे पीछे पड़ जाता था। मैं बहुत परेशान हो गया, लेकिन मुझे कुछ अुपाय न सूझ पड़ा। यदि वह मेरी ओर मुख़ातिब होकर कुछ बोलता, तो मैं अपनी मित्रमंडलीको अिकट्ठा करके अुसके खिलाफ़ युद्ध छेड़ता। लेकिन वह बड़ा चंट था। वह अिस तरह बकता जाता, मानो गंदी भाषाका शब्दकोश ही कंठाग्र कर रहा हो। जिस चीज़का कोअी अिलाज न हो, अुसे तो सहन ही करना पड़ता है। अिससे मैंने अुसके बारेमें पूरी तटस्थता अख़्तियार कर ली। फिर भी अुसने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। वर्गसे शिक्षक बाहर जाते तो वह सारे वर्गको तफ़सीलके साथ अश्लील बातें सुनाना शुरू करता। बादमें अुसने वर्णनके साथ अभिनय भी शुरू कर दिया। पहले तो मेरे लिअे यह सारा असह्य हो जाता, लेकिन धीरे-धीरे मेरे कान आदी हो गये। अुसकी बातोंमें भीतर ही भीतर मज़ा भी आने लगा। वह क्या कहता है यह जान लेनेकी जिज्ञासा-वृत्ति मुझमें पैदा हुअी। अेक अज्ञात क्षेत्रकी जानकारी हासिल करनेके कुतूहलके तौर पर मैं अुसकी बातें सुनने लगा। आहिस्ता आहिस्ता मेरा मन विकारी होने लगा। चेहरे पर तो मैं तिरस्कारका भाव

दिखाता, लेकिन भीतर ही भीतर रसकी चुस्कियाँ लेने लगता। अिससे अेक तरफ़से प्रतिष्ठा भी सुरक्षित रहती और दूसरी तरफ़से विकृत मनको मनभाता रस भी मिलता। यह परिस्थिति मुझे बहुत ही सुविधाजनक जान पड़ी।

ठेठ बचपनमें समय-समय पर जो गन्दी बातें सुनी या पढ़ी थीं, वे स्मरणमें रह गयी थीं। अुस वक्त अुनका हृदय पर कुछ असर नहीं हुआ था, क्योंकि अुस वक्त मेरी अुम्र ही बहुत छोटी थी। गोवामें शिवराम नामका अेक युवक हमारे पड़ोसमें रहता था। अुसका परिचय तो अधिकसे अधिक पंद्रह दिनका ही था, लेकिन अुतने समयमें अुसने समाजका वास्तविक चित्र दिखानेके लिअे कुछ गन्दी बातें विस्तारके साथ बतलायी थीं। अुसके बाद धारवाड़में अेक कन्नड़ विद्यार्थीने अपनी टूटी-फूटी अंग्रेज़ीमें अैसी ही कुछ बातें शास्त्रीय जानकारीके तौर पर कही थीं। अुसकी अुस शास्त्रीय जानकारीमें कल्पनाकी विकृति ही भरी हुअी थी। लेकिन मेरे दिमाग़में तूफ़ान बरपा करनेके लिअे वह काफ़ी थी। हमेशा नीतिमत्ताका दिखावा करनेवाला मुझ जैसा लड़का किसीके साथ अैसी बातोंकी चर्चा भला कैसे कर सकता था? सही बातें जाननेके लिअे बुज़ुर्गोंके साथ चर्चा भी कैसे करता? अिसलिअे मैं मन ही मन अनेक तरहके विचार करके रहस्यको समझनेका प्रयत्न करता रहता। जहाँ प्रत्यक्ष जानकारी या अनुभव न होता, वहाँ मन विचित्र कल्पना करने लगता है। फिर वे बातें अिहलोकके बारेमें हों या परलोकके बारेमें।

वर्गमें चलनेवाली अिन सारी बातोंसे मेरे कान और मेरा मन लबालब भर गये थे। अेकान्तमें मैं अिन्हीं बातों पर विचार करने लगा और धीरे-धीरे दिन-रात अिन्हीं चीज़ोंकी विचारधारा मनमें चलने लगी। बाहरसे अत्यन्त नीतिनिष्ठ और पवित्र माना जानेवाला मैं मनोराज्यमें विलासका नरक अिकट्ठा करने लगा।

जैसे-जैसे मन ज़्यादा गन्दा होता गया, वैसे-वैसे मेरे बाह्य आचरणमें शिष्टाचार और साफ़-सुथरापन बढ़ने लगा। मुझमें दंभ नहीं था, किन्तु मिथ्याचार था। मेरा मनोराज्य मुख्यतः कुतूहलका था। अेक तरफ़ सारा रहस्य मालूम करनेकी अुत्कंठा थी, तो दूसरी तरफ़ सचमुच सदाचारी होनेका आन्तरिक आग्रह था। अिन दोनोंके बीचका वह द्वंद्व था।

वर्गकी हालत सुधारनेके लिअे मैंने 'दि गुड कंपनी' नामक अेक मंडलकी स्थापना की। अुसमें हम अनेक विषयोंकी चर्चा करते, परोपकारकी योजनाअें बनाते और आत्मोन्नतिका वायुमंडल पैदा करनेकी चेष्टा करते। कभी कभी हम अुसमें शिक्षकोंको भी बुलाते।

अंग्रेज़ीकी तीसरी रीडरमें मैंने कुछ नीतिवाक्य पढ़े थे। अुनमें से मुझे यह वाक्य विशेष पसन्द आया था: Better be alone than in bad company. (बुरी संगतकी बनिस्बत अकेला रहना अधिक अच्छा है।) अुसे मैंने जीवनमंत्रके तौर पर स्वीकार किया। अिसीमें से अुल्लिखित मंडलका नाम मुझे सूझा था। अिस मंडलके वातावरणसे मुझे बहुत लाभ हुआ। लेकिन जब मैं alone यानी अकेला होता, तब मेरा गन्दा मनोराज्य चलता ही रहता। यह कैसे संभव है, यह तो मनोविज्ञानका सवाल है। लेकिन अैसा हो सकता है, यह तो मेरा निजी अनुभव ही कहता है।

वह प्रौढ़ विद्यार्थी कुछ ही दिनोंमें स्कूल छोड़कर घर बैठ गया और रिश्वत खानेके मार्ग खोजने लगा। अुसे पढ़ना तो था ही नहीं; स्कूल छोड़ना ही था। लेकिन अेकाध वर्ष स्कूलमें बिता दिया जाये, अिसी विचारसे वह स्कूलमें आया था। यदि अेक साल पहले ही अुसे स्कूल छोड़नेकी बात सूझती तो कितना अच्छा होता! मानो मेरे दुर्भाग्यने ही अुसे अेक सालके लिअे स्कूलमें रोक रखा था।

कानोंमें गन्दे विचार अुँड़ेलना और मनमें जमा करना तो आसान बात है; लेकिन वहाँसे अुन्हें निकालकर मनको धो-पोंछकर साफ़ करना आसान नहीं है। आगे चलकर यदि मुझे असाधारण परिस्थितिका लाभ न मिलता, बार-बार यात्रा करनेसे विभिन्न अनुभव प्राप्त न हुअे होते, देशभक्तिकी दीक्षा, कॉलेजकी शिक्षा और शिक्षकके रूपमें ज़िम्मेदारी आदि बातोंकी सहायता मुझे न मिलती, तो मैं नहीं समझता कि कुविचारोंके परिपोषणसे अपनेको बचा पाता।

जिन्हें पढ़ना नहीं है, जिनके मनमें शुभ संस्कारोंकी क़द्र नहीं है, समाजमें पागल कुत्तेकी तरह दुर्गुणोंको फैलानेमें जिन्हें शर्म नहीं आती, अैसे लड़कोंको अीश्वर यदि स्कूलमें जानेकी बुद्धि ही न दे तो कितना अच्छा हो! साथ ही क्या स्कूलोंकी भी यह ज़िम्मेवारी नहीं है कि वे अैसे निठल्ले और आवारा लड़कोंको स्कूलोंमें न रहने दें? स्कूलोंका यह कर्तव्य अवश्य है कि वे बिगड़े हुअेको सीधे रास्ते पर लायें, लेकिन वैसा करनेके लिअे शिक्षकोंको चाहिये कि वे अैसे लड़कोंको खोज निकालें और अुनके हृदयमें प्रवेश करें। आरोग्य-मंदिरमें रखे जानेवाले बीमारोंकी तरह अैसे विद्यार्थियोंको हिफ़ाज़तसे रखना चाहिये। अुनकी छूतसे अनजान बालकोंको बचानेका यदि कोअी अुपाय न मिले, तो भी अुसकी खोजमें तो शिक्षकोंको रहना ही चाहिये।

और आरोग्य-मंदिरमें तो अैसे ही लोगोंको रखा जाता है, जिन्हें चंगा होनेकी अिच्छा होती है। जिन्हें सुधरना ही नहीं है, अुन्हें कोअी भी स्कूल कैसे सुधार सकता है?

६६

फोटोकी चोरी

बचपनमें छापाखानेमें से दो टाअिपोंकी चोरी करनेके बाद मैंने दिलमें निश्चय किया था कि आयंदा फिर कभी अैसा नहीं करूँगा। फिर भी चोरीकी खास अिच्छाके बिना भी मेरे हाथसे अेक बार चोरी हो ही गयी।

मुधोलमें हम सरकारी मेहमानके तौर पर रहते थे। हमें वहाँके व्यंकटेशके सरकारी मंदिरमें ठहराया गया था। हर रोज़ शामको अलग-अलग स्थानों पर हम घूमने जाते। अेक दिन हम खास तौरसे युरोपियन मेहमानोंके लिअे बनाया हुआ गेस्ट-हाअुस (मेहमान-घर) देखने गये। वहाँ देखने जैसा भला क्या हो सकता था? बँगले जैसा बँगला था। टेबल-कुर्सी वग़ैरा बहुत-सा फर्निचर था। दीवारों पर कुछ चित्र टँगे थे, जिनमें सौंदर्य या कलाकी दृष्टिसे कुछ न था। भोजन करनेकी बड़ी मेज़ और बड़े-बड़े पंखे भी वहाँ थे। बँगलेके खानसामाने हमें बतलाया कि युरोपियन लोग किस तरहसे रहते हैं, किस तरह काँटों-चम्मचोंसे खाना खाते हैं, किस तरह नहाते हैं। मुझे तो वहाँ अेक बड़ी कुर्सी ही आकर्षक जान पड़ी, जिसमें तीन व्यक्ति तीन दिशाओंमें मुँह करके बैठ सकते थे। अुसे हम तिकोना स्वस्तिक भी कहें, तो अनुचित न होगा।

असलमें हम जो अुस बँगलेकी ओर जाते, वह अुसके आसपासका बग़ीचा देखनेके लिअे ही जाते। वहाँ जुहीकी अितनी बेलें थीं कि माँने रोज़ाना वहाँसे फूल मँगवाकर घरके महादेवको अेक लाख फूल चढ़ाये। हर रोज सुबह घरमें फूल आ जाते, तो अुन्हें गिननेमें मेरी

दो भाभियाँ, मेरी स्त्री और मैं, हम सबका सारा वक़्त चला जाता था।

अिस बँगलेके अेक छोटेसे कमरेके कोनेमें अेक छोटासा शेल्फ था। अुस पर अेक गोरी महिलाका नन्हा-सा फोटो रखा हुआ था। वह शायद अुस महिलाका होगा, जो कभी अुस बँगलेमें निवास कर गयी होगी। तस्वीरको देखनेसे अैसा लगता था कि वह महिला खूब मोटी होगी। अुसने अपने बालोंको अिस अजीब ढंगसे सँवारा था कि अुसे देखकर रंगमें भंग हो जाता। लेकिन फोटो खींचनेकी कलाकी दृष्टिसे वह चित्र बहुत सुन्दर लगता था और मुझे तो अुस कलाकी खूबियाँ देखनेका बड़ा शौक़ था। पहले दिन जल्दीसे मैं अुसे बराबर नहीं देख सका था। लेकिन फिर भी वह आँखोंमें बस गया था।

दूसरी बार जब अुसी बँगलेकी ओर पिताजीके साथ घूमने गया, तो अितनी बात दिमाग़में रह गयी थी कि वह फोटो अच्छी तरह देखना है। मैं वहीं पर खड़ा होकर यदि देखता रहता तो पिताजीका ध्यान मेरी तरफ़ जाता और अुन्हें लगता कि अब दत्तू कितना अशिष्ट हो गया है कि मेरे सामने स्त्रीका सौंदर्य देखने लगा है। लेकिन मुझे तो फोटो परका 'री-टचिंग' देखना था, और सीनेसे अूपरके हिस्सेको क़ायम रखकर नीचेका भाग जो बादलकी आकृतिमें 'व्हाअिनेट' कर डाला था वह देखना था। न तो अुसे देखनेका लोभ छूटता था और न पिताजीके सामने देखनेकी हिम्मत होती थी। मैंने वह फोटो अुठाकर हाथमें ले लिया — अिस आशासे कि बँगलेमें घूमते-फिरते देख लूँगा, और बाहर निकलनेके पहले खानसामाके हाथमें दे दूँगा। खानसामा, चपरासी और साथका क्लर्क सभी पिताजीको खुश करनेमें मशग़ूल थे। लेकिन मैं पीछे न रह जाअूँ, अिसकी चिन्ता पिताजी रखते थे। अिससे न तो मुझे फोटो खींचनेवालेकी कला जी भर कर देखनेका मौक़ा मिला, और न मैं अुस फोटोको लौटानेका ही मौक़ा पा सका। वह

नालायक़ खानसामा यदि ज़रा भी पीछे रहता, तो मैं वह फोटो अुसे सौंप देता। लेकिन वह क्यों पीछे रहने लगा?

अब क्या किया जाय? पिताजी यदि मेरे हाथमें फोटो देख लें, तब तो मारे ही गये समझो। तब तो वे मान ही लेंगे कि युरोपियन रमणीका चित्र देखकर अिसने हाथमें लिया है और अपने साथ लेकर घूम रहा है। क्या किया जाय, अितना सोचनेके लिअे भी वक़्त न था। दुविधामें पड़े हुअे आदमीको जब अंतिम घड़ीमें कुछ निश्चय करना पड़ता है, तो वह अुलटी ही बात करता है। मैंने वह फोटो अपनी जेबमें रख लिया, और सामने आया हुआ प्रसंग टाल दिया। फोटो सीने पर की जेबमें था। सारे रास्तेमें वह मुझे मन भरके बोझके समान लगता रहा।

घर आने पर मनमें दूसरी चिन्ता पैदा हुअी। यदि वह खानसामा पिताजीके पास आकर फोटोके गुम होनेकी बात कहे तो? लेकिन मुझे अुस वक़्त यह विचार नहीं आया कि अैसी छोटी-सी बातके लिअे खानसामाकी पिताजी तक आनेकी हिम्मत नहीं हो सकती। आखिर चोर तो डरपोक होता ही है। बहुत सोच-विचारके बाद मैंने तय किया कि अब मैं अितने कीचड़में अुतर गया हूँ कि वापस जानेकी कोअी गुंजाअिश नहीं है। अब तो बचा हुआ कीचड़ पार करके सामनेके किनारे पर जानेमें ही खैरियत है। चोरीके मालको ही नष्ट कर दिया जाय तो फिर कोअी चिन्ता नहीं। लेकिन फिर मनमें आया कि फोटो फाड़ डालूं और यदि अुसका छोटा-सा टुकड़ा कहीं मिल गया तो? चूल्हेमें जलाने जाअूं और अचानक माँ 'क्या है' कहकर पूछ बैठे तो? फाड़कर यदि अुसके टुकड़े पाखानेमें फेंक दूं और सवेरे भंगीका ध्यान अुस ओर जाय तो? हाँ, बाहर दूर तक घूमने जाकर खेतोंमें टुकड़े गाड़ आअूं तो काम बन सकता है। लेकिन जब घूमने जाना होता, अितना ही नहीं, बल्कि घरके बाहर तनिक भी दूर जाना होता, तो कोअी-न-कोअी चपरासी

साथ लगा ही रहता था। रोज़ाना चपरासीके साथमें जानेवाला मैं यदि आज ही अकेला जाता, तो अुससे भी किसीको शक हो सकता था।

तब अिस फोटोका किया क्या जाय? शेक्सपियरकी लेडी मैक-बेथके हाथमें जैसे खूनके धब्बे लग गये थे और किसी तरह वे धुल नहीं सकते थे, वैसी ही मेरी स्थिति हो गयी। यह फोटो अमर है या मरकर भी फिरसे ज़िन्दा होनेवाले रक्तबीज राक्षसकी तरह है, अैसा मुझे लगने लगा। आखिर अेक रामबाण अुपाय सूझा। अुस फोटोको लेकर मैं पाखानेमें गया, वहाँ अुसे पानीमें खूब भिगोया और फिर अुसके छोटे-छोटे टुकड़े करके हरअेक टुकड़ेको दोनों अुँगलियोंके बीच मलकर अुसकी लुगदी बनायी, और जब वह सूखकर भूसा बन गया तब अुसे मिट्टीमें मिलाकर फेंक दिया।

दो रात मुझे नींद नहीं आयी। मनमें यही बात चक्कर लगाती रही कि मैं क्या करने गया था और क्या हो गया। फोटोका खातमा हो जाने पर मुझे लगा था कि अब मेरी चिन्ता भी खतम हो जायगी। लेकिन अुसका अितनेसे ही अन्त होनेवाला न था। फिरसे जब हम अुस गेस्ट-हाअुसकी ओर घूमने गये, तो वह खानसामा मेरे साथ ही साथ घूमने लगा, मेरा पीछा छोड़ता ही न था। मेरे गुनहगार मनने देख लिया कि खानसामाकी आँखोंमें आदर या खुशामद नहीं, बल्कि पूरा शक था। मेरे मनमें आया कि अेक चोरी करके मैं अितना दीन हो गया हूँ कि अेक खानसामा भी मुझसे बड़ा आदमी बन गया है! यह मुझ पर निगरानी रखता है! मैं जल्दी-जल्दी बग़ीचेमें घूम आया। वहाँसे लौटते समय आख़िर खान-सामाने मुझसे कह ही दिया कि 'साहब, हमारा अेक फोटो खो गया है।' मेरी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। क्या जवाब दिया जाय, यह भी मुझे न सूझ पड़ा। मेरे लिअे तो प्रतिष्ठाकी ढालको आगे करना ही सम्भव था। मैं चिढ़कर अितना ही बोल पाया

कि, 'अच्छा, मैं पिताजीसे कहूँगा।' मैं कह तो गया, लेकिन मेरी आवाज़में कोअी जान नहीं थी।

वापस लौटते समय अेक नया संकट खड़ा हुआ। साथके क्लर्क और चपरासीके सामने मैं बोल चुका था कि 'मैं पिताजीसे कहूँगा।' अब यदि नहीं कहता हूँ, तो लोग समझेंगे कि दालमें काला ज़रूर है। अिससे मैंने हिम्मत करके पिताजीसे कह ही दिया कि खानसामां अैसा अैसा कहता है। पिताजीके स्वप्नमें भी यह बात नहीं आ सकती थी कि दत्तू फोटो चुरायेगा। पिताजीके पास अपने दो कैमेरे थे; नानाके पास भी और तीन कैमेरे थे। घरमें फोटोका ढेर लगा था। अिसलिअे पिताजीने मेरा पक्ष लिया और आदमीको भेजकर खानसामाको बुलवाया। अुसे अच्छी तरह फटकारा और कहा कि, 'मैं अभी दीवानसाहबको लिखकर तुझे बरतरफ़ करवाता हूँ।' खानसामा डर गया। बड़ोंके आगे अुस बेचारे ग़रीबका क्या चल सकता था? अुसने मेरे पास आकर माफी माँगी। मेरा चेहरा पीला पड़ गया था। मैं स्वयं यह जानता था कि मेरा मुँह फक पड़ गया है। पिताजीने भी मेरी ओर देखा। अुन्हें लगा होगा कि बिना कारण अेक अदने व्यक्तिके द्वारा अपमानित होनेसे मेरा चेहरा अुतर गया है।

मैं अेक सरकारी अफ़सरका लड़का था, और वह बेचारा खानसामा देशी राज्यके मेहमान-घरका मामूली नौकर था। लेकिन हृदयकी मानवताकी तराजूमें हम दोनों मनुष्य समान थे। मुझसे माफी माँगते समय भी खानसामाको विश्वास था कि यह गुनहगार है; और मैं भी जानता था कि मुझे ही अुससे माफी माँगनी चाहिये। पिताजी यदि सचमुच दीवानसाहबको चिट्ठी लिख देते, तो मेरे अपराधके कारण अुस बेचारेकी रोज़ी छिन जाती और अुसके बालबच्चे भूखों मरते। जब हम दोनोंकी आँखें चार हुअीं, तब मेरी क्या दशा हुअी होगी, अिसकी कल्पना निर्दोष हृदयको तो हो ही नहीं

सकती। मैंने जल्दीसे अुस मामलेको वहीं रफा-दफ़ा करवा दिया। लेकिन फिर कभी मैं मेहमान-घरकी ओर घूमने नहीं गया।

अिस सारे मामलेमें यदि अेक बार भी मुझमें सत्य कह देनेकी हिम्मत आ जाती, तो कितना अच्छा होता! लेकिन वैसा न हो सका। आज अितने समय बाद अिन सारी बातोंका अिक़रार करके कुछ सन्तोष प्राप्त कर रहा हूँ।

६७

अफ़सरका लड़का

हमारी ख़िदमतके लिअे आण्णू नामका अेक सिपाही दिया गया था। देशी राज्यमें जब कोअी ब्रिटिश सरकारका अधिकारी जाता तो अुसके दबदबेका पूछना ही क्या? मेरे पिताजीका स्वभाव बिलकुल सीधा-सादा था। अपना रोब या धाक जमाना अुनको बिलकुल पसन्द न था और अिसकी अुन्हें आदत भी नहीं थी। लेकिन स्थान-माहात्म्य थोड़े ही कम हो सकता था? आण्णू था तो रियासती पुलिसका आदमी, लेकिन आज अुसे ब्रिटिश सिपाहीकी प्रतिष्ठा मिल गयी थी। वह चाहे जहाँ जाता और चाहे जिसे धमकाता। हमें अिसकी ख़बर तक न होती।

अेक बार हमारे यहाँ बारह ब्राह्मणोंकी समाराधना (भोज) थी। अतः हमने आण्णूको काफ़ी पैसे देकर साग-तरकारी लाने भेज दिया। अुसने लगभग अेक गाड़ीभर सब्ज़ी लाकर घरमें डाल दी और बोला, "यहाँ देहातोंमें साग-सब्ज़ी बहुत सस्ती मिलती है।" मुझे अुसकी बात सच मालूम हुअी। बादमें जब हम वहाँसे बिदा होने लगे, तो किसीने मुझसे कहा कि अुस दिन आण्णू आसपासके देहातोंमें जाकर सारी साग-सब्ज़ी ज़बरदस्तीसे मुफ़्तमें ही लाया था।

यह बात अितनी देरीसे मालूम हुअी थी कि अब अुसके सम्बन्धमें कुछ करना संभव नहीं था। बारह ब्राह्मणोंको पक्वानोंका बढ़िया भोजन खिलाकर और यथेष्ट दक्षिणा देकर अगर कुछ पुण्य हमें मिला होगा, तो वह अुस ज़ुल्मसे ख़त्म हो चुका होगा। (कहते हैं कि पुराने ज़मानेमें राजा लोग ब्राह्मणोंसे बड़े-बड़े यज्ञ करवाते थे, तब भी अिसी तरह ज़ुल्मोसितमसे यज्ञ अेवं समाराधनाकी सामग्री जुटाते थे।) अेक ब्राह्मणके साथ अिस विषयमें चर्चा करते समय अुसने मनुस्मृतिका अेक श्लोक कह सुनाया कि, 'ब्राह्मण जो कुछ खाता है, वह सब अपना ही खाता है। सब कुछ ब्राह्मणका ही है। ब्राह्मण कठोर नहीं होता, अिसीलिअे अन्य लोगोंको खानेको मिलता है।' अुसकी यह बात सुनकर मैं अुसके आगे हाथ जोड़कर चुप रह गया।

अेक दिन आण्णू मेरे पास आकर कहने लगा, 'अप्पासाहब, यहाँका पोस्टमास्टर बहुत ही मिज़ाजी है। मैं डाक लेने जाता हूँ, तो मुझे जल्दी नहीं देता। अिस बातको तो छोड़िये; लेकिन अुसका रहन-सहन भी बहुत ख़राब है। जातिसे 'कोमटी' जान पड़ता है। लेकिन अितना गन्दा रहता है कि अुसके पास खड़े होनेका भी मन नहीं करता। रहता है अेक मन्दिरमें, लेकिन वहाँ मुर्ग़ी मारकर खाता है और अण्डेके छिलके जहाँ-तहाँ फेंक देता है। अिसे ठिकाने लगाना चाहिये। यदि आप थोड़ी-सी मदद दें, तो हम अिसे सीधा कर देंगे।' आण्णूकी होशियारी पर मैं खुश था। वह ज़ालिम भी है, अिसका पता मुझे बहुत देरसे चला। अतः मैंने कहा, "अच्छी बात है।" फिर मैंने अेक-दो क्लर्कोंसे पूछकर अिस बारेमें यकीन कर लिया कि बात ठीक है। फिर कभी मैं और कभी आण्णू पोस्टमास्टरके बारेमें कुछ न कुछ शिकायत पिताजीसे करने लगे।

अेक दिन संयोगसे हमारी डाकके संबंधमें वह पोस्टमास्टर कुछ ग़लती कर गया। मैंने तुरन्त ही पिताजीसे कहलवाकर पोस्ट-मास्टरके नाम अेक सख़्त पत्र लिखवाया। पोस्टमास्टर घबड़ाया।

डाकियेने तो आकर मुझे साष्टांग दण्डवत ही किया। छः फीट दो अिंच अूंचे बूढ़े डाकियेको विंध्याद्रिके समान जब मैंने अपने सामने पड़ा हुआ देखा, तो मेरा हृदय दयासे भर आया। फिर मुझे अुस पर तो शर-संधान करना ही न था। मुझे तो अुस पोस्टमास्टरसे मतलब था। मैंने अुससे साफ़ कह दिया कि, "ग़लती पोस्टमास्टरकी है। वह यहाँ आकर बातें करे तो कुछ सोच-विचार किया जा सकता है।"

बेचारा पोस्टमास्टर आया। मैंने बात ही बातमें अुसे बतला दिया कि, "पोस्टल सुपरिण्टेंडेंट नाड़कर्णीसे मेरा अच्छा परिचय है।" फिर तो बेचारा हड़बड़ा गया। अुसके साथ दूसरा अेक क्लर्क और आया था। अुसने मेरी ख़ुशामद करते हुअे कहा, "साहब चाहे जितने गरम हो गये हों, फिर भी अुन्हें ठंडा करनेकी ताक़त अुनके लड़केमें होती ही है। आप अपने पिताजीको ज़रा समझा दें, तो अुनका ग़ुस्सा अुतर जायगा।" मैंने तड़ाकसे कहा, "मुझे क्या पड़ी है जो पिताजीसे अिनकी सिफ़ारिश करूँ? ये साहब तो मंदिरमें रहकर मुर्ग़ी मारकर खाते हैं।" वह बोला, "लेकिन मैं कहता हूँ कि आयंदा अैसा नहीं होगा।" मुझे तो यही चाहिये था।

मैंने तुरन्त ही अन्दर जाकर पिताजीसे कहा, "पोस्टमास्टर बाहर आया है। भला आदमी जान पड़ता है। अुसने अपनी ग़लती क़बूल कर ली है।" मुर्ग़ीकी बात तो पिताजी जानते ही न थे। वह तो हमारा आपसी षड्यंत्र था। पिताजी बाहर आये। पोस्टमास्टर कहने लगा, "हम तो आपके नौकर हैं। आप जो आज्ञा दें, हमें मंजूर है।" पिताजीने सहज भावसे कहा, "तुम्हारा महकमा अलग है, हमारा अलग है। हम थोड़े ही तुम्हारे वरिष्ठ अधिकारी हैं? हमारे लिअे तो अितना ही काफ़ी है कि डाकके बारेमें कोअी गड़बड़ी न होने पाये।" पोस्टमास्टर बेचारा ख़ुश होकर घर चला गया।

मेरे बारेमें अुसने क्या ख़याल किया होगा, यह तो वही जाने। हो सकता है कि अुसने मेरे बारेमें कुछ भी ख़याल न किया हो।

अुसके मनमें आया होगा कि दुनिया तो अिसी तरहसे चलती रहेगी; नीति-अनीति, कानून, गुनाह यह तो बाहरी दिखावेकी भाषा है। बल-वानोंके सामने झुकना और दुर्बल, नाज़ुक लोगोंको चूसना ही जीवनका सच्चा शास्त्र है। मेरे विषयमें अुसने चाहे जो राय बना ली हो, अुससे मेरा कुछ बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। क्योंकि अितने वर्षोंमें अुसके साथ मेरा कोअी संबंध नहीं आया और न आयंदा आनेकी कोअी संभावना ही है। लेकिन जीवनके बारेमें अुसकी अिस धारणाको बनानेमें जिस हद तक मैं कारण हुआ, अुस हद तक अुसे नास्तिक बनानेका पाप मैंने ज़रूर किया है। प्रतिष्ठा, अधिकार अेवं जान-पहचानका डर दिखाना क्या मुर्ग़ी और अंडे खानेकी अपेक्षा कम हीन है?

६८

खच्चर-गाड़ी

मुधोलमें अकसर हम घुड़दौड़के मैदान (रेसकोर्स) की ओर घूमने जाते थे। अेक दिन हमें घूमने ले जानेके लिअे दरबारकी ओरसे खच्चरका ताँगा आया। खच्चर यानी आधा गधा! खच्चरके ताँगेमें कैसे बैठा जाय? मैंने नाराज़ होकर कहा, "अैसे ताँगेमें हमें नहीं बैठना है। अिसे वापस ले जाओ।" बापूराव खाड़िलकरने मुझे समझाया कि, "यहाँ ताँगोंमें खच्चर ही जोते जाते हैं। आप देखेंगे कि यहाँके खच्चरोंकी नसल बड़ी अुम्दा है। अजी, हमारे राजासाहब भी कभी-कभी खच्चर-गाड़ीमें घूमने जाते हैं।" अितना माहात्म्य सुननेके बाद मेरा मन अनुकूल हो गया। फ़ौजमें तोपें खींचनेके लिअे खच्चरोंको जोतते हुअे तो मैंने बेलगाँवमें देखा था। अिसलिअे मैंने मान लिया कि खच्चर बिलकुल अस्पृश्य नहीं होते।

हम ताँगेमें बैठे और घुड़दौड़के मैदानकी ओर चले। लेकिन खच्चर किसी तरह चलते ही नहीं थे। ताँगेवाले और दो चपरासियोंकी सख्त मेहनतके बाद हम अेक घण्टेमें जैसे-तैसे घुड़दौड़के मैदान पर पहुँचे। मैं तो बिलकुल तंग आ गया था। मैदानके आसपास थूहरके पेड़ोंकी अूँची बाड़ थी। अन्दर जानेके लिअे मुश्किलसे अेक गाड़ी जाने जितना रास्ता था। अुस रास्तेमें भी बाड़की मेंड़ होनेके कारण अुस मेंड परसे ताँगा भीतर ले जाना पड़ा। वह सब देखकर मेरे मनमें आया कि हम अिधर नाहक़ आ गये। अैसे रद्दी खच्चरोंके ताँगेमें घूमनेमें क्या मज़ा? मैंने बापूरावसे कहा, "आज मुहूर्त अच्छा नहीं जान पड़ता। ताँगेमें हर रोज़के घोड़े आज क्यों नहीं जोते?" ताँगेवालेने कहा, "घोड़े सरकारी कामके लिअे कहीं गये हैं, अिससे प्रायवेट सेक्रेटरीने मुझसे ये खच्चर ले जानेको कहा।"

अन्दर जानेके बाद खच्चरोंने मुश्किलसे अेक खेत पार किया होगा कि अुन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे जितनी मार पड़े, लेकिन अेक क़दम भी आगे नहीं रखेंगे। खच्चर अहिंसावादी तो थे नहीं। ताँगेवाला जैसे ही अुन्हें मारता, वैसे ही वे अपने पिछले पैर अुछालकर ताँगेको मारते। अिससे ताँगेकी अगली पटिया कुछ टूट भी गयी। अूबकर मैंने कहा, "चलो, अब लौट चलें।" ताँगा घुमाया गया। खच्चरोंको मालूम हुआ कि अब घरकी ओर चलना है। फिर तो अुन्होंने जोशमें आकर अैसी अच्छी दौड़ लगायी कि बाड़का खुला हिस्सा भी अुन्हें दिखाअी न दिया। घुड़दौड़की लम्बी-चौड़ी गोल सड़क पर मोटरकी रफ्तारसे खच्चर दौड़ने लगे। दस मिनट हुअे। बीस मिनट हुअे। लेकिन वे तो गोल चक्करके घेरेमें दौड़ते ही रहे। तूफ़ानी लहरों पर जैसे जहाज़ डोलता है, वैसे ही ताँगा डोल रहा था। मुझे अितना मज़ा आया कि हँसते-हँसते पेट दुखने लगा।

· तक़रीबन बीस मिनट बाद अुन बेवकूफ़ोंको शक हुआ कि कुछ गड़बड़ी हुअी है। दोनों खच्चर अेकदम रुक गये और अुन्होंने तड़ातड़

लातें मारना शुरू किया। आधी टूटी हुअी पटियाको अुन्होंने पूरा तोड़ दिया, और कुछ सोचकर अचानक घूम गये। फिर अुन्हें लगा कि अब बराबर घर जायेंगे। बस, फिर दौड़ शुरू हुअी। यह अुल्टी परिक्रमा भी क़रीब बीस मिनट तक चलती रही। फिर तो अुन्होंने यह नियम ही बना लिया:—दौड़ते, रुकते, लातें फटकारते, घूम जाते और फिर दौड़ते। अँधेरा होनेको आया। दोनों खच्चर पसीनेसे तरबतर हो गये। हम भी हँस-हँस कर अधमरे हो गये।

आखिर बाड़के अुस खुले हिस्सेके पास आते ही ताँगेवालेने खच्चरोंकी रफ्तार कम कर दी और धीरेसे अुन्हें बाहर निकाला। फिर तो खच्चर अितने तेज़ दौड़े कि सात मिनटमें अुन्होंने हमें घर पहुँचा दिया। रास्तेमें कोअी दुर्घटना न हो अिसलिअे चिल्लाते-चिल्लाते ताँगेवालेका गला सूख गया।

मैंने ताँगेवालेसे कहा, "कल अिन्हीं खच्चरोंको लाना। अब घोड़ोंकी कोअी ज़रूरत नहीं है। सरकारी कारखानेमें ताँगेकी मरम्मत तो हो ही जायगी।" बापूरावने आगे कहा, "चमड़ेकी कुछ पट्टियाँ भी साथमें लाना, ताकि खच्चर यदि लगाम तोड़ डालें या बल्ला टूट जाय तो वे काम आयें।" अिस सूचनामें मेरे लिअे चेतावनी है, यह मैं समझ गया। अिससे मैंने ज़ोरसे कहा, "हाँ, हाँ, यह सब लाना। अबसे हम रोज़ाना घुड़दौड़के मैदानकी ओर ही जायँगे। और खच्चर भी ये ही रहेंगे।"

६९

काव्यमय बरात

हमारे बचपनमें बाअिसिकलें नहीं थीं। सबसे पहले ट्राअिसिकल यानी तीन पहियोंकी गाड़ी आयी। ठोस रबड़के बंद, भैंसके सींग जैसा हैंडल-बार और अेक बालिश्त चौड़ा खुगीर (सीट) — अिस तरहकी वह अजीबो-गरीब चीज़ देखकर हमें बड़ा मज़ा आता। कोअी कहते कि अगर अेक पहियेके नीचे पत्थर आ जाय तो यह ट्राअिसिकल अुलट जाती है। खड़-खड़ आवाज़ करती हुअी यह ट्राअिसिकल जब रास्ते पर चलती, तब लोग अुसे देखनेके लिअे दौड़े आते। अिसके बाद बाअिसिकल आयी।

मैंने जो सबसे पहली साअिकल देखी, वह थी डॉ० पुरुषोत्तम शिरगाँवकरकी। सारे बेलगाँव या शाहपुरमें दूसरी साअिकल थी ही नहीं। जहाँ भी देखिये लोग साअिकलकी ही बातें करते। अेक कहता, "हम पान खाते हैं अितनेमें तो यह पैरगाड़ी (अुस वक्त साअिकल शब्द प्रचलित नहीं था; सब पैरगाड़ी ही कहते। मालूम नहीं यह शब्द क्यों मतरूक हो गया। अभी भी मुझे साअिकलकी अपेक्षा पैरगाड़ी शब्द ज़्यादा पसन्द है।) शाहपुरसे बेलगाँव पहुँच जाती है।" दूसरा कहता, "अिसके पहिये अेकके पीछे अेक होते हुअे भी यह गिरती क्यों नहीं?" कोअी कहता, "अिसके पहिये बिलकुल सीधमें नहीं होते, अुनमें कुछ अंतर रहता है।" अपनेको बहुत अक़लमन्द समझनेवाला कोअी आदमी अिस पर जवाब देता, "जैसे रस्सी पर चलने-वाला नट अपना सन्तुलन रखनेके लिअे हाथमें आड़ा बाँस रखता है, वैसे ही पैरगाड़ीवाला अपने दोनों हाथोंमें वह चमकता हुआ टेढ़ा डंडा रखता है, अिसलिअे वह नहीं गिरता।" अेक बार अेक बूढ़ेने हिम्मत

करके खुद डॉक्टरसे ही पूछा कि, 'आप गिर कैसे नहीं जाते?' डॉक्टरने अुलटा सवाल किया, 'तुम अपनी साढ़े तीन हाथ लम्बी देहको लेकर बालिश्त भर पावों पर खड़े रहते और चलते हो, तब तुम कैसे नहीं गिरते?' सभी खिलखिलाकर हँस पड़े और बेचारा बूढ़ा झेंप गया।

अुस वक़्त मैं था बहुत ही छोटा; स्कूल भी नहीं जाता था। परंतु अुस दिनसे मेरे मनमें भी अेक वासना पैठ गयी कि यदि हमारी भी साअिकल हो तो कितना अच्छा! लेकिन साअिकल जैसी तीन-चार सौ रुपयोंकी क़ीमती चीज़ हमारे घरमें कैसे आयेगी, अिसी विचारके कारण साअिकलकी तमन्ना मन ही मनमें रह जाती।

फिर तो धीरे-धीरे साअिकलें बढ़ती गयीं। जहाँ देखिये वहाँ साअिकल। पैरगाड़ी शब्द भी मतरूक हो गया और अुसके बदले बाअिसिकल शब्द सभ्य माना जाने लगा। कुछ दिनमें यह शब्द भी पुराना हो गया और प्रतिष्ठित लोग बाअिक शब्दका अिस्तेमाल करने लगे। लेकिन जब अिस द्विचक्रीने हमारे घरमें प्रवेश किया, तब साअिकल शब्द बाअिकसे होड़ करने लगा था।

लेकिन बाअिक जब तक घरमें नहीं आयी थी, तब तक अुसका ध्यान ज्यादा लगा रहता था। हम छोटे हैं, तीन-चार सौ रुपये ख़र्च करके हमें कौन साअिकल ला देगा? हिम्मत करके माँगें भी तो वे पूछेंगे कि 'तुझे साअिकल लेकर क्या करना है?' अिससे मनमें विचार आता कि साअिकल प्राप्त करनेका अेक ही अुपाय है। हम शादीके समय रूठकर बैठेंगे और ससुरसे कहेंगे, "हमें न तो सोनेकी कंठी चाहिये, न पहुँची ही। हमें तो बढ़िया साअिकल ला दीजिये।" मेरे बड़े भाअियोंकी शादियाँ बचपनमें ही हो गयी थीं। शादीके समय वे कैसे रूठ कर बैठते थे यह मैंने देख लिया था, अिसीलिअे यह विचार मेरे मनमें आया था।

बचपनसे रामदास स्वामीकी बातें सुननेके बाद मनमें यह बात जम गयी थी कि शादी करना ख़राब चीज़ है। शादी कर देंगे, अिस डरसे

मैंने और गोंदूने घरसे भाग निकलनेकी चेष्टा भी की थी। लेकिन साअिकलने मेरी बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया! चूँकि साअिकल तुरन्त प्राप्त करनेका यही अेक रास्ता दिखाअी देता था, अिसलिअे साअिकलके लोभसे मैं शादी करनेको भी तैयार हो गया। फिर तो कल्पनाके घोड़े — अरे नहीं! भूला! — कल्पनाकी साअिकलें दौड़ने लगीं।

अेक दिन शादीके विचार और साअिकलके विचार अद्‌भुत रूपसे अेक-दूसरेमें मिल गये। मनमें विचार आया कि यदि शादीका सारा जुलूस (बरात) साअिकल पर निकाला जाये, तो कितना मज़ा आयेगा! वर-वधू तो साअिकल पर रहें ही; लेकिन सारे बराती अितना ही नहीं, बल्कि शहनाअी बजानेवाले, आतिशबाजी छोड़नेवाले पुरोहित, याचक, मशालें पकड़नेवाले, सभी साअिकल पर बैठकर शहरमें घूमें तो कितना अद्‌भुत व मज़ेदार दृश्य अुपस्थित होगा? अैसा भी प्रबंध हो कि हरअेक आदमी साअिकलकी जो घंटी या भोंपू बजायेगा, अुसमें से सारीगमकी आवाज़ें निकलें। लेकिन अैसा जुलूस तो जल्दी ही घूम लेगा; लोग अच्छी तरह देख भी नहीं पायेंगे। अिसलिअे सारे शहरमें अिसे कमसे कम दस बार घुमाना चाहिये। और जिन्हें यह मज़ा देखनेका बहुत शौक़ हो, वे खुद किराये कि साअिकलें लेकर जुलूसके साथ घूमते रहें — अैसी अैसी मज़ेदार कल्पनाअें मनमें बहने लगीं।

भला अैसी मज़ेदार कल्पनाओंका आनन्द क्या अकेले-अकेले लूटा जा सकता था? मैंने गोंदूको वह कह सुनायीं। अुसके पेटमें वह थोड़े ही रह सकती थीं! अुसने अुसी दिन हँसते-हँसते घरके सब लोगोंको विस्तारके साथ कह दिया। कुछ ही दिनोंमें बात घरके बाहर भी फैल गयी। और हर व्यक्ति मुझे साअिकलकी बरातके बारेमें पूछ-पूछ कर चिढ़ाने और हैरान करने लगा।

अच्छा हुआ कि अुसी साल मेरी शादी नहीं हुअी; वरना कोअी मुझे सुखसे शादी भी न करने देता। मेरी शादी हुअी अुस वक़्त सब अिस बातको भूल गये थे, सिर्फ़ मैं ही नहीं भूला था। लेकिन

रोज़ाना अीश्वरसे प्रार्थना करता था कि 'जब तक सारा समारोह पूरा न हो जाय, तब तक किसीको साअिकलके जुलूसका स्मरण न हो।' शादीमें जब रूठनेका प्रसंग आया, तब भी मनमें तीव्र अिच्छा तो थी, लेकिन मैंने साअिकलका नाम तक नहीं लिया — कहीं अुसीसे भाअियोंको साअिकलकी बरातका स्मरण न हो जाय!

फिर जब सचमुच ही साअिकल हमारे घरमें आ गयी और मैं साअिकल पर बैठने लगा, तब मैंने गोंदूसे कहा, 'नाना, (अब मैं गोंदूको नाना कहने लगा था।) साअिकलके साथ मेरा अेक फोटो खींच दो न?' वह कहने लगा, "अिसमें कौनसी बड़ी बात है? आज ही खींच लेंगे। लेकिन अेक शर्त है। मैं फोटोके नीचे यह लिखूँगा कि 'साअिकलकी बरात।' अिस शर्तको माफ़ करवानेके लिअे मुझे नानाकी बहुत ही मिन्नतें करनी पड़ी थीं।

७०

चोरोंका पीछा

प्लेगके दिनोंमें शाहपुरसे बाहर झोंपड़ियोंमें रहना अितना नियमित बन गया था कि लोगोंने वहाँ झोंपड़ियोंके बदले कच्चे मकान बनाना ही ठीक समझा। फिर भी अुन्हें झोंपड़ी ही कहते थे। हमारी झोंपड़ीकी दीवार बाँसकी थी। बाँसोंके अूपर अन्दर-बाहर मिट्टीका पलस्तर लगाया गया था। छप्पर पर खपरे थे। अिस झोंपड़ीके बन जानेके बाद मुझे सदा वहीं रहना अच्छा लगता, फिर गाँवमें ताअून हो या न हो। अुस वक़्त मैं शायद अंग्रेज़ी पाँचवीं कक्षामें पढ़ता था। आसपास पाँच-दस झोंपड़ियाँ थीं। अुनमें भी हमारी जातिके ही लोग रहते थे। सिर्फ़ हमारे पड़ोसमें अेक लिंगायत कुटुम्ब रहता था। अुनके पिछवाड़ेमें अेक किसान रहता था, जिसकी झोंपड़ी सचमुच घास-फूसकी थी। अुस ओर चोर बहुत आया करते थे।

अेक बार चोरोंने आकर बेचारे किसानके यहाँ सेंध लगायी और क़रीब चालीस रुपयेकी गठरी अुठाकर ले गये। किसान अुन्हें पकड़नेको दौड़ा। लेकिन चोरोंने अुसके सिर पर कुल्हाड़ीसे वार किया। चोट अुसकी भौंह पर लगी। कुछ ही ज़्यादा लगा होता, तो बेचारेकी आँख ही चली जाती।

जब अुसके घरमें शोर मचा, तब हमारे घरसे माँने अुसे हिम्मत बँधानेके लिअे आवाज़ लगायी, 'अरे डरो मत; हमारे घरमें बहुतसे मेहमान आये हुअे हैं। हम अभी मददके लिअे आ रहे हैं।' सच बात तो यह थी कि घरमें पुरुष सिर्फ़ मैं ही था। मैं हमेशा अपनी बन्दूक भरी हुअी रखता था। बन्दूक लेकर मैं बाहर निकला। लेकिन चोरोंके पास मेरी राह देखने जितनी फुरसत कहाँ थी? अुस किसानकी झोंपड़ीमें जाकर मैं सारा हाल पूछ आया और हवामें बंदूक दागकर और फिरसे अुसे भरकर सो गया।

दूसरी बार हमारी झोंपड़ीके मवेशीखानेमें ज़ंजीर टूटनेकी आवाज़ हुअी। हम अपनी भैंस और गाड़ीके बैलोंको लोहेकी ज़ंजीरसे बाँधते थे। मैं फौरन बन्दूक लेकर निकला। आधी रातका समय था। मैंने दरवाज़ा खोला तो माँ जाग गयी। वह मुझे जाने नहीं देती थी। मैंने कहा, "चोर गोठमें घुसे हैं। घरके ढोरोंको कैसे जाने दिया जा सकता है?"

मैं बाहर निकला। माँ कहने लगी, "ढोर जायँ तो भले ही जायँ। तू खतरा मोल न ले।"

"माँ, बचपनमें तो तू अैसी सीख नहीं देती थी" कहकर मैं दौड़ पड़ा। गोठमें जाकर देखा तो भैंस नहीं थी। दोनों बैल चौकन्ने-से खड़े थे। भैंसको न देखकर मेरे दिल पर क्या गुज़री होगी, अिसकी कल्पना तो जिसने मवेशी पाले हैं वही कर सकता है। भैंसको धोने-नहलानेका काम मेरा था; दुहनेका काम भी मैं ही करता था। अगर नौकर भूल जाता, तो मैं स्वयं कुअेंसे पानी निकालकर अुसे

पिलाता। मेरी झाअिकलकी घंटी सुनती तो वह तुरन्त मुझे दूरसे पहचान लेती और ओंककर मेरा स्वागत करती। अब अुस भैंसको मैं कभी नहीं देख सकूँगा, वह तो हमेशाके लिअे चली गयी, यह विचार असह्य हो गया। चोर यदि अछूत होंगे, तो वे भैंसको मारकर खा भी जायेंगे। अब क्या किया जाय?

मैंने सोचा, चोर सीधे रास्तेसे तो जायेंगे नहीं। पश्चिम और अुत्तरकी ओर झोंपड़ियाँ थीं; अिसलिअे अुस ओरसे भी अुनका जाना संभव न था। पूर्वकी ओर खेत थे। अतः मैं अुधर दौड़ा। भैंस कहीं नज़दीक हो, तो अुसे आश्वासन देनेके लिअे मैं भी अुसीकी तरह ओंका। दो खेत पार किये। तीसरा खेत कुछ गहराअीमें था। पास ही अेक पक्का कुआँ था और रास्तेके किनारे अेक पीपलका पेड़ था। पुराने ज़मानेमें वहाँ पर अेक सत्पुरुषका दाहकर्म हुआ था, अिसलिअे लोग अुसे 'सोनेका पीपल' कहते थे। अुस खेतमें घास भी बहुत थी। नंगे पैर अँधेरेमें अुस खेतमें घुसनेकी मेरी हिम्मत न हुअी। अतः मैं फिर ओंका। भैंसने ओंककर जवाब दिया। अेक क्षणमें मेरी चिन्ता दूर हुअी और मुझमें हिम्मत आयी। मैं अुस खेतमें कूद पड़ा। भैंस मेरे हाथमें बन्दूक देखकर कुछ चमकी और दौड़ने लगी। अतः मैंने पास जाकर अुसे चुमकारते हुअे अुसका कान पकड़ा और अुसे घर ले आया।

दूसरे दिन सवेरे माँने भैंसको जवार पकाकर खिलायी और मुझे भी बढ़िया हलुवा मिला।

७१

गृहस्थाश्रम

हमारी झोंपड़ीके पास ही लिंगायत जातिके अेक सज्जन रहते थे। अेक दिन अुनके यहाँ अुनका दामाद आया। मैं अुसे देखने गया। बिलकुल छोटा लड़का था। ससुरके सामने बैठकर पान चबा रहा था। ससुरने मुझसे कहा, "मेरी लड़कीके लड़का हुआ है। अिसलिअे पुत्र-मुखदर्शनकी खातिर आज जमाअी महाशयको बुलाया है।"

मेरे सामने बैठे हुअे लड़केका अेक बालकके पिताके रूपमें परिचय पाते हुअे मुझे कुछ शर्म-सी आयी। लेकिन वे 'पिताजी' तो बिलकुल शानके साथ पान चबा रहे थे। पुत्रोत्सवकी शकर खाकर मैं वापस आया। मुझे कुछ धुंधली-सी याद है कि कुछ ही दिनोंमें मुझे अुस बच्चेकी मृत्युका शोक मनानेके लिअे जाना पड़ा था।

लेकिन अुस लिंगायत कुटुम्बका स्मरण तो मुझे दूसरे ही कारणसे रहा है। कुछ ही महीनोंमें हमारे पड़ोसी — अुन 'पिताजी' के ससुर — गुज़र गये। वे बड़े मालदार थे अिसलिअे बहुतसे लोग अिकट्ठा हुअे थे। लिंगायत लोगोंके रिवाजके मुताबिक़ शवको आँगनमें पलथी लगाकर दीवालके सहारे बैठाया गया था। शवके सामने दही-भात रखा गया था। सगे-सम्बन्धियोंमें से अेक-अेक व्यक्ति आता, दही-भातका ग्रास हाथमें लेकर शवके मुँह तक ले जाता और फिर नीचे रखकर रो पड़ता — 'अुंडिल्ला!' (जीमे नहीं!)

दूसरा रिवाज और भी ज़्यादा ध्यान खींचने जैसा था। शवके पास अेक नयी साड़ी रखी गयी थी। लिंगायतोंमें पुनर्विवाहका निषेध नहीं है। लेकिन शवको अुठाते समय यदि अुसकी पत्नी वह साड़ी अुठाकर पहन ले, तो अुसका अर्थ यह लगाया जाता है कि अुसने

आजीवन वैधव्य स्वीकार किया है। यदि यह निश्चय न हो, तो वह अुस साड़ीको छूती भी नहीं। मरनेवालेकी स्त्री जवान थी। सब यही मानते थे कि वह फिरसे शादी करेगी। वह क्या करती है, यह देखनेके लिअे मैं वहाँ गया था। घरमें सब रो रहे थे; सिर्फ़ वह स्त्री ही नहीं रो रही थी। अुसकी आँखोंमें गीलापन भी नहीं दिखाअी देता था। बहुतेरोंको अिससे आश्चर्य हुआ। मुझे भी आश्चर्य हुआ। लेकिन अुसकी शून्यमनस्क आँखोंकी चमकको देखकर मुझे यह शंका अवश्य हुअी कि अिस नारीने अिस दुनियासे अपना जीवन-रस वापस खींच लिया है। आँसुओंके ज़रिये वह अपना दुःख हलका करना नहीं चाहती थी। जैसे ही शवके पास वैधव्यकी साड़ी रखी गयी कि अुसने तुरन्त ही अुठाकर अुसे पहन लिया और अपना फैसला ज़ाहिर कर दिया।

सब लोग दुःखके साथ ही आश्चर्यमें डूब गये। मृत शरीरको श्मशानमें गाड़कर सब सगे-सम्बन्धी शहरमें रहने चले गये। दूसरे दिन ख़बर मिली कि अुस मृत पुरुषकी विधवाने अन्नत्याग कर दिया है। जहाँ तक मुझे याद है, अुस स्त्रीने आठ-दस दिनके अन्दर ही देहत्याग कर दिया। बगैर किसी रोगके वह सती अपने दुःखके आवेगसे ही शरीरसे प्राणोंको अलग कर सकी। आज भी शवके पाससे साड़ी अुठाते वक़्तकी अुसकी भावभंगी और अुसकी अुन निश्चययुक्त आँखोंको मैं भूला नहीं हूँ।

७२

बच्चोंका खेल

हमारी झोंपड़ीके पास हमारी जातिके लोगोंकी कुछ झोंपड़ियाँ थीं। मैं अुन लोगोंके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं रखता था। लेकिन अुनमें से अेक बुढ़िया हमारी बुआसे मिलने आया करती थी। असलमें वह बुआ मेरी माँकी बुआ थीं; फिर भी हम सब अुन्हें बुआ कहकर ही पुकारते थे। वे अितनी बूढ़ी हो गयी थीं कि बिलकुल ठिगनी लगती थीं। वे अच्छी तरह तनकर चल भी नहीं सकती थीं। वे मुझे खाना पकाकर खिलातीं और सारे दिन छोटे धनुषसे रूअी धुनकर आरतीके लिअे बातियाँ बनाती रहतीं। मेरे बारेमें अुनकी हमेशा यह शिकायत रहती कि मैं भरपेट खाना नहीं खाता। वे कहतीं, 'तुम्हारे लिअे खाना पकानेको बर्तनोंकी कोअी ज़रूरत ही नहीं है। बस, दवातमें खाना पकाया जाय और दिअलीमें छौंक दिया जाय!' अुनकी यह बात सुनकर मुझे बड़ा मज़ा आता। जब आकाशमें बादल घिर आते, तो अुनके घुटने दर्द करने लगते। अुस वक़्त वे कहतीं, "आकाशमें 'मोड' आते ही मेरा जिस्म भी 'मोड़ने' (यानी टूटने) लगता है।" (कन्नड़ भाषामें बादलोंके लिअे 'मोड' शब्द प्रयुक्त होता है।) पड़ोसकी बाड़से मैं अुन्हें थूहरकी टहनियाँ ला देता। अुनका दूध (लासा) निकालकर वे अपने घुटनोंमें लगातीं।

पड़ोसकी वह बुढ़िया अेक दिन मुझसे पूछने लगी, "हमारी मनू (मणिकर्णिका) अपनी सहेलियोंके साथ तुम्हारे यहाँ घर-घर खेलना चाहती है। क्या तुम्हारी अिजाज़त है?"

लड़कियोंकी धृष्टता मुझे बिलकुल ही पसन्द नहीं थी, लेकिन शिष्टाचारकी खातिर मैंने मना नहीं किया। मैंने अितना ही कहा

कि "अिसमें मुझसे क्या पूछना है? आप बुआसे पूछिये। वे जैसा कहें वैसा कीजिये।"

दोपहरमें लड़कियाँ आयीं। घंटों तक अुनका खेल चलता रहा। मुझे भी अुनका खेल देखनेमें बहुत मज़ा आया। मनू शान्त, मेहनती और दक्ष लड़की थी। सहेलियोंको खुश रखकर अुन पर क़ाबू पाना, अुनसे काम लेना, और सबमें दिलचस्पी बनाये रखना, अिस सबमें वह बहुत कुशल थी। लड़कियोंने तरह तरहके खेल खेले। फिर अुन्होंने खाना बनाया। अेक थाली परोसकर मेरे सामने भी रखी गयी। दोपहरके असमयमें खानेकी अिच्छा किसे थी? लेकिन फिर भी मैंने थोड़ा-सा खाया। शाम होनेके पहले सब लड़कियाँ अपने-अपने घर लौट गयीं।

दूसरे दिन मनूकी दादी मेरे पास आकर कहने लगी, "हमारी मनू छोटी थी तब अुसे अेक पड़ोसिनने नीचे गिरा दिया था। तबसे अुसका हाथ टूट गया है। लेकिन तुमने देखा होगा कि वह राँधने आदिका सब काम आसानीसे कर सकती है। क्या तुम अुससे शादी करनेको तैयार हो? तुम्हारी माँसे पूछूँगी, तो वे तो ना ही कहेंगी। लेकिन आजकलके तुम लड़के अपनी पत्नी खुद ही पसन्द करना ज्यादा अच्छा समझते हो, अिसलिअे तुमसे पूछ रही हूँ। तुम यदि हाँ कहो तो फिर तुम्हारी माँको मना लेनेका काम मेरा रहा।"

कलके षड्यंत्रका भेद अब मुझ पर खुल गया। अुस औरतकी धृष्टता देखकर मैं हैरान रह गया। मैंने कहा, "आपकी बात सही है, लेकिन मुझे तो शादी करनी ही नहीं है। अतः पसन्दगी या नापसन्दगीका सवाल ही नहीं अुठता।"

बुढ़ियाने अेक ही सवाल पूछा, "लेकिन तुम्हें लड़की तो पसन्द है न?" मनूकी दादी बिलकुल ही भोली स्त्री थी। अुसमें छल-कपट बिलकुल न था। अुसके अन्धे प्रेमने अुससे यह सब करवाया था, अिसे मैं अच्छी तरह जानता था। अतः मुझे अुस पर बहुत

दया आयी। अुसे बुरा न लगे अैसा जवाब मैंने बहुत सोचा, लेकिन वह किसी तरह नहीं मिला। अंतमें मैंने अितना ही कहा कि, 'मुझे तो शादी ही नहीं करनी है, अिसलिअे ज़्यादा विचार मेरे मनमें आते ही नहीं।"

"जाने दो; अितनी ही अेक आशा मनमें थी।" कहती हुअी वह बुढ़िया चली गयी।

अुस दिन रातको मैं बहुत देर तक विचारोंमें डूबता-अुतराता रहा। शादी करनेकी अुत्सुकता तो मेरे मनमें कतअी नहीं थी। फिर भी बुढ़ियाके अन्तिम शब्दोंने मुझे बहुत बेचैन कर दिया। बेचारी लड़कीका हाथ टूट गया, अिसमें अुसका क्या दोष? बिना किसी दोषवाली रूपवान लड़की हो, तो भी वह हज़ार-डेढ़ हज़ार रुपयोंके दहेजके बिना ब्याही नहीं जा सकती, तब अिस बेचारीके साथ कौन शादी करेगा? संस्कारवान् युवकोंका क्या यह कर्तव्य नहीं कि वे हिम्मतके साथ अैसी लड़कियोंका अुद्धार करें? केवल रूपके अूपर लोग क्यों लट्टू हो जाते हैं? बहूको क्या कहीं नचाने ले जाना होता है? वह गृहस्थीका काम अच्छी तरह चलावे, अिससे ज़्यादा आदमीको और चाहिये ही क्या? — अैसे अैसे बहुत-से विचार मेरे मनमें आये। लेकिन मुझे तो शादी ही नहीं करनी थी। फिर हमारे समाजमें दुलहेसे सीधे बात करनेका रिवाज भी नहीं था। अिससे वह मामला वहीं पर ख़तम हो गया।

जिन्हें नये ज़मानेको समझने जितनी भी तालीम नहीं मिली होती, वे भी जब लाचार हो जाते हैं, तो ग़रजके मारे नये ज़मानेका नया रंग समझने लगते हैं और पुरानी मर्यादाओंको छोड़कर नये तरीक़ोंकी शरणमें जाते हैं। यह वस्तुस्थिति ही मुझे दयाजनक जान पड़ी। अिस स्थितिमें भी कुछ समझमें आने जैसी अेवं वांछनीय बातें अवश्य हैं, लेकिन अुस समय मेरे पास अुनकी कोअी प्रतीति या क़द्र नहीं थी।

७३

पड़ोसकी पीड़ा

हम तीसरी या चौथी बार सावंतवाड़ी गये थे। अिस बार हम मोती तालाबके पास सरकारी मेहमान-गृहमें टिके थे। आधा बँगला हमारे क़ब्ज़ेमें दिया गया था। अिस बँगलेमें हम तीनों भाअी खूब खेलते थे।

सावंतवाड़ीमें हमारे अेक परिचितके घर अक्का नामकी लड़की थी। वह बहुत लाड़-प्यारमें पली हुअी थी। घरमें अुसे आकल्या कहते थे। वह हमारे यहाँ कुछ दिनके लिअे रहने आयी। घरमें कौन आता है और कौन जाता है, अिसकी हमे कहाँ परवाह थी? लेकिन दुपहरीमें जब हम दरी पर शेर-बकरीका खेल खेलते या कुछ पढ़ते, अुस वक़्त वह अपनी आदतके मुताबिक़ हमारे बीच आकर बैठ जाती। चूंकि बचपनमें हमारी यह मान्यता हो गयी थी कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्री कुछ हल्का प्राणी है, अिसलिअे जब वह लड़की हमारे बीच आकर कुर्सी पर बैठती, तो हमें अपमान-सा महसूस होता। लेकिन वह लड़की तो मेहमान बनकर आयी थी। अुसे हमारे बीचसे निकाला कैसे जा सकता था? हम सबके साथ अुसकी अुपस्थिति बर्दाश्त करते। लेकिन वह तो हमारी बातोंमें भी शरीक होने लगी और सवाल पूछने लगी। हम यदि रूखा-सा जवाब देते, तो वह कहती, 'क्यों भाअी, अैसा जवाब क्यों देते हो?' अितना कह कर, मानो कुछ हुआ ही न हो, अिस भावसे वह फिर हमारी बातोंमें दखल देती।

तीन-चार दिन तक तो हमने यह सब बर्दाश्त किया। फिर भाअूने अेक युक्ति निकाली। अुसको सुनायी पड़े, अिस तरह माँकी

ओर मुखातिब हो कर वह बोला, "माँ, आज अक्का अपने घर वापस जानेवाली है न? अुसे यों तो नहीं जाने दिया जा सकता। अुसे कोअी अच्छा-सा कपड़ा देकर भेजना। तुम कहो तो मैं ही बाज़ारसे मँगाये लेता हूँ।" और माँका जवाब सुननेसे पहले ही भाअूने चपरासीसे कहा, "अरे धोंडी, आज अक्का अपने घर जानेवाली है। अुसे पहुँचानेके लिअे तीन बजे आ जाना और अभी बाज़ार जाकर माँ कहें वैसा खंड (ब्लाअुज़ या चोलीका कपड़ा) ले आना।"

यह युक्ति अचूक साबित हुअी, और केशूको सन्तोष हुआ।

लेकिन बकरी गयी और अूंट घरमें आ घुसा। अुसी दिन कोअी युरोपियन मेहमान अुस बँगलेमें आ गये। सरकारी मेहमान और सरकारी बँगला। अुन्हें कैसे मना किया जा सकता था? बँगलेका जो आधा हिस्सा खाली था, अुसमें वे ठहर गये। पति-पत्नी दो ही थे। साथमें अुनके दो घोड़े भी थे। दोनों पति-पत्नी घोड़ेकी सवारीमें बड़े माहिर थे। साहब कुछ शान्त स्वभावका था, लेकिन मेमको तो बाघिन ही समझिये। सारे दिन नौकरों पर गुर्राती रहती। घोड़ोंके लिअे चनेकी सानी अपने हाथों तैयार करके दोनों हाथोंमें दो डोल अुठाकर खुद ही घोड़ोंको खिलाती; और जब तक घोड़े खा न लेते, तब तक वहीं खड़ी रहती।

अेक रोज़ दोपहरके वक़्त वह मेम थककर सो रही थी। पासके कमरेमें हम टेबल पर शेर-बकरीका खेल खेल रहे थे। खेलते-खेलते लड़ पड़े। हमारा शोर काफ़ी बढ़ गया। मेम साहबाकी नींद टूट गयी। नागिनकी तरह फुँफकारती हुअी वह अुठी और हमारे दोनों कमरोंके बीचके बन्द दरवाज़े पर ज़ोरसे घूँसे मारकर अंग्रेज़ीमें गरजी, "अरे लड़को, क्या अूधम मचा रखा है? ज़रा सोने भी दोगे या नहीं?" हम चूहोंकी तरह चुप हो गये। सिर्फ़ भाअूने कहा, 'थैंक यू।' और हमने वह कमरा छोड़ दिया। हमारे मनमें आया कि यह बला कब टलेगी?

अिधर हमारी यह परेशानी थी, अुधर पिताजी दूसरी ही चिन्तामें मग्न थे। हम जीमनेको बैठे तब पिताजी माँसे कहने लगे, "ये गोरे लोग हमारे घरमें आकर रहने लगे हैं। मांस-मछली खायेंगे। जिस घरमें परधर्मी बसते हैं और मांसाहार चलता है, वहाँ यदि पानी भी पिया जाय तो छूत लगती है।"

माँने समाधानका मार्ग बतलाते हुअे कहा, "हम कहाँ अेक ही घरमें हैं? अुनका हिस्सा अलग है, हमारा अलग है।"

पिताजीने कहा, "अिस तरह मनको समझानेसे कोअी फ़ायदा नहीं। सारे बँगलेका छत तो अेक ही है न? यह तो अेक ही घर कहलायेगा। अितने साल नौकरी की, लेकिन अैसा प्रसंग कभी नहीं आया था। अिसका कोअी अिलाज भी नहीं दिखाअी देता। अिसलिअे अब तो अिस संकटको झेलना ही पड़ेगा। भगवान जानता है कि अिसमें हमारा कोअी क़सूर नहीं है।"

दो रात रहकर दोनों घुड़सवार वहाँसे बिदा हो गये और हमने दूसरी बार सन्तोषकी साँस ली।

७४

विठु और भानु

विठु था हमारे यहाँका अेक नौकर। बेलगुंदीमें जब हमारा घर बन रहा था, तब वह हमारे यहाँ मज़दूरके नाते आता था। अुस वक़्त अुसकी अुम्र क़रीब बारह-तेरह वर्षकी होगी। अेक दिन मज़दूर रस्सीमें लोहँड़ा बाँधकर कुअेंसे कीचड़ निकाल रहे थे। अुस समय अुनकी लापरवाहीसे अेक लोहँड़ा रस्सीसे छूट गया और कुअेंके अन्दर, जहाँ विठु काम कर रहा था, अुसके सिर पर जा गिरा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अुससे विठु बिलकुल बेहोश हो गया और बड़ी मुश्किलसे हम अुसे बाहर निकाल पाये थे। हमारे यहाँ दो-तीन महीने अुसे दवाअी और मरहमपट्टीके लिअे रहना पड़ा था।

युवकोंका हृदय भावुक होता है। तीन महीनेके सहवाससे विठु हमारे घरका ही अेक व्यक्ति बन गया। यद्यपि अुसे बाक़ायदा तनख्वाह मिलती थी, लेकिन कोअी भी अुसे नौकर नहीं मानता। सुबह-शाम जहाँ जलपानका वक़्त होता कि माँ हमें खानेको दे देती। हरअेककी रकाबीमें खाना रख दिया जाता। देहातके रिवाजके मुताबिक़ नौकरोंको नाश्ता नहीं दिया जाता, केवल दो जून भोजन दिया जाता है। यदि कोअी नाश्ता देता भी है, तो नाममात्रके लिअे। लेकिन विठुके सम्बन्धमें वैसा नहीं था। विठु हमारी रकाबियोंसे चाहे जो चीज़ अुठाकर खा सकता था। जल्दी आ जाता, तो हमारे पहले भी खा लिया करता। ब्राह्मणके घरमें अब्राह्मण नौकरको अितनी स्वतंत्रता आश्चर्यजनक मानी जाती थी।

विठु बड़ा हुआ और हमारी खेतीका सारा कामकाज अुसने सँभाल लिया। हमने खेती बढ़ायी। जो खेती पहले हम लगान पर अुठाते थे,

यह अब घर पर करने लगे। बैल, गाय, भैंस घरमें रखनेकी आवश्यकता हुआी। अुनके लिअे चरागाह भी रखना पड़ा। जंगलसे घास-लकड़ी और खेतोंसे अनाज लानेके लिअे बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ तैयार करनी पड़ीं। सारा कारोबार बहुत बढ़ गया। विठु अुसमें काम करता। मेरे बड़े भाअी अुस सारे काम पर निगरानी रखते थे। बचपनसे ही विठुमें सत्यप्रियता और न्यायनिष्ठा ज़बरदस्त थी।

आम तौर पर हमारे देहातोंमें ग़रीबी अितनी ज़्यादा होती है कि बेचारे किसानोंके लिअे न्यायनिष्ठ बने रहना पुसाता ही नहीं। चौबीसों घण्टे अुन्हें जीवन-संघर्षमें स्वार्थ ही दिखाअी पड़ता है। देहाती बनिया, साहूकार, पटेल, पटवारी और पुरोहित सभी अितने ज़्यादा स्वार्थी होते हैं — स्वार्थसे अन्धे होते हैं — कि सारे गाँवको वे निरे स्वार्थका ही सबक़ सिखाते रहते हैं। पटेल-पटवारी तो राजसत्ताके प्रतिनिधि होते हैं। अतः अुनसे डरना ही चाहिये और अुन्हें अपनी बिसातसे अधिक भोग चढ़ाना ही चाहिये।

घरका कारोबार बहुत बड़ा था, अिसलिअे हर दिन किसी न किसीसे टक्कर होती ही रहती। अुसमें दूसरे नौकर तो हमारा स्वार्थ देखकर ही हमारी ओरसे लड़ते थे। लेकिन विठुको हमारे स्वार्थकी अपेक्षा हमारी साख, हमारी अिज़्ज़त-आबरू ज़्यादा प्यारी थी; और सच कहा जाय तो हमारी आबरूसे भी अुसे अिन्साफ़ ज़्यादा प्यारा था। मेरे बड़े भाअी बाबासे ही वह अन्यायके प्रति चिढ़ अेवं न्यायके प्रति पक्षपात करना सीखा था; लेकिन यदि बाबाका बतलाया हुआ कोअी काम विठुको अनुचित जान पड़ता, तो वह ग़ुस्सेसे लालसुर्ख होकर बड़े भाअीसे कहता, "होयगा बाबा! माज खोटु काम करूस सांगत्यास होय?" (क्योंजी बाबा, मुझे आप बुरा काम करनेको कहते हैं?) विठुको बताया हुआ काम खालिस है, अिसका अुसे विश्वास कराये बिना काम नहीं चलता था। मेरे पिताजी जब छुट्टी लेकर बेलगुंदी जाते, तो पहले विठुसे

ही मिलते। विठु सारे वर्षके कामकाजकी तफ़सील बतलाता और आगे क्या करना चाहिये अुस सम्बन्धमें सुझाव भी देता। विठुके पास छिपाकर रखने जैसा कुछ रहता ही न था। लेकिन फिर भी हम यदि अुससे कोअी बात गुप्त रखनेके लिअे कहते, तो वह अुसे मध्ययुगकी वफ़ादारीसे गुप्त रखता। विठु जबसे हमारे घरमें रहने लगा, तबसे शायद ही कभी वह अपने घर जाता। सालका चार कुड़व (बेलगाँवकी ओर अेक कुड़व क़रीब सौ सेरका होता है) अनाज और बीस रुपये घर दे आता। अितना अनाज अेक छोटे कुटुम्बको अेक वर्षके लिअे काफ़ी होता था।

सन्तु नामक विठुका अेक भाअी था। अुसे भी हम अपने यहाँ मज़दूरी पर लगा लिया करते थे। लेकिन सन्तुमें चरित्रबल बिलकुल नहीं था। सन्तुकी हीन वृत्ति देखकर विठु शर्मसे गड़ जाता। अपने कारण सन्तुको हमारे यहाँ आश्रय मिलता है और अुससे वह नाजायज़ फ़ायदा अुठाता है, यह देखकर विठु मन ही मन दुःखी होता और अिस बातका ख़ास ध्यान रखता कि अुसके हाथों सन्तुके प्रति कहीं पक्षपात न हो जाय।

देखते-देखते विठुने सारे कामका बोझ अुठा लिया। विठुकी साख हमारे गाँवमें बहुत जम गयी। अुसकी जड़में अुसकी न्यायनिष्ठा और हमारी प्रतिष्ठा दोनों थीं। चंद देहाती अपनी बचतकी रक़म हमारे यहाँ धरोहरके रूपमें रखनेको आते। मेरे बड़े भाअी देहातमें धर्मावतारके नामसे प्रसिद्ध थे। लोगोंको विश्वास रहता कि विठु और बड़े भाअी जहाँ हैं, वहाँ चाहे जितनी बड़ी रकम हो तो भी वह सुरक्षित है। हमारे यहाँके देहाती साहूकार ग़रीब किसानोंको किस प्रकार सताते और ठगते हैं, अुसकी जिसे कल्पना होगी वही अिस विश्वासकी अहमियतको समझ सकेगा। धरोहरकी रकम जैसे-जैसे बढ़ती गयी, वैसे वैसे अुसमें से छोटी-छोटी रक़में अुधार देनेका रिवाज भी बड़े भाअीने शुरू किया। धरोहरके लिअे ब्याज देना-लेना

नहीं होता था; अुसी तरह पैसे देनेमें भी ब्याजका सवाल नहीं रहता था। सिर्फ़ विठुका जिस मनुष्य पर भरोसा होता, अुसे ही रुपये अुधार दिये जाते थे। कुछ किसान अपने चाँदीके गहने भी हमारे यहाँ सुरक्षितताकी दृष्टिसे रखते थे। किसी भी मनुष्यके यहाँ शादी होती, तो विठु असल मालिककी अिजाज़तसे वे गहने शादीमें पहननेके लिअे भी देता था। बहुतेरे किसान अपने साफ़ व्यवहारसे विठु पर अच्छी छाप डालनेका प्रयत्न करते थे।

विठु हमारे यहाँ रहता, लेकिन अुसने किसी भी समय अपने घरका स्वार्थ सिद्ध नहीं किया। जिस तरह शिवजी सारी दुनियाको चाहे जो वरदान देते हैं, लेकिन खुद तो बगैर कुछ भी संग्रह किये भस्म लगाये बैठते हैं, वैसी ही विठुकी वृत्ति थी। कभी-कभी विठु मेरे बड़े भाअीकी आज्ञाका अुल्लंघन करके भी अुसे जो ठीक लगता वही करता। हमें यदि बेलगुंदीसे बेलगाँव जाना होता, तो विठुकी अिच्छासे ही हमें बैठनेको गाड़ी मिलती। विठु यदि कह देता कि आज खेतीका काम है या बैल थक गये हैं, तो हमें गाड़ी नहीं मिल पाती थी। मेरी माँको भी यदि कोअी ज़रूरी काम होता, तो विठुको अन्दर बुलाकर कामका महत्त्व अुसके गले अुतारना पड़ता था। माँ अुसे दो-चार गालियाँ भी देती, लेकिन विठुको विश्वास होता तभी वह हाँ कहता!

गहने-पैसे अैसे ही घरमें रखना सुरक्षित न समझकर मेरे भाअीने अेक तिजोरी मँगवायी। लेकिन फलाँ आदमीके घर तिजोरी आयी है, अितनी ख़बरके फैलने भरसे ही चोर अुस घरकी ताकमें रहने लगते थे। अिसलिअे विठुने बाबासे कहा, "आप बगैर किसीको बताये पूनासे तिजोरी मँगवाअिये। मैं बेलगाँव स्टेशनसे रात ही रातमें अपने विश्वसनीय दोस्तोंके साथ जाकर अुसे गाड़ीमें रखकर ले आअूँगा; और दूसरोंको मालूम हो अुसके पहले ही बीचके कमरेमें ज़मीनमें गाड़ दूँगा। सिर्फ़ अुसका मुँह ही खुला रहेगा। अुस पर पटिया रखकर

आप अपना बिस्तर लगाया करें।" अैसी व्यवस्था विठुने पोस्ट-ऑफिसमें देखी थी।

विठुके दोस्त क्या, मानो विश्वासकी मूर्तियाँ थीं! परश्या, गिड्ड्या, घुमड्या और सुब्ऱ्या मानो शिवाजीके मावळे! होशियारसे होशियार और वफ़ादारसे वफ़ादार! बड़े भाअीने अेक बार परश्याको आँगनमें बाँसकी बाड़ लगानेको कहा था। दो दिनमें काम पूरा हो सकता था। परश्याने कुछ ढील की, अिससे बड़े भाअीने विठुके सामने परश्याको कुछ फटकारा। अुस वक़्त रातके आठ बजे होंगे। दूसरे दिन सवेरे अुठकर देखते हैं तो बाड़ तैयार! परश्याने रात ही में बग़ीचेमें जाकर बाँस काटे और ज़मीनमें गढ़े खोद कर बाड़ तैयार की थी। और सो भी किसीकी मददके बिना, अकेले ही!

बेलगुंदीमें जब पहले-पहल प्लेग शुरू हुआ, तब गाँवके बाहर अेक पहाड़ीके ढाल पर झोंपड़ियाँ बनाकर हम रहने लगे। ढोरोंके लिअे भी अेक अलहदा झोंपड़ी बनायी गयी थी। विठुको सबके रक्षणकी चिन्ता थी; अिसलिअे रोज़ाना रातको हमारी झोंपड़ीके आसपास सोनेके लिअे वह पन्द्रह-बीस जवानोंको अिकट्ठा करता। ओढ़ने-बिछानेके लिअे घास तो चाहे जितनी थी। सिर्फ़ हमें चार-पाँच सेर तम्बाकू वहाँ रखना पड़ता और सारी रात आग जलती रहे अितने अुपलोंका प्रबन्ध करना पड़ता। विठुको गाना नहीं आता था, लेकिन वह दूसरोंसे गवाता था। अिस तरह सारी रात हमारी झोंपड़ीके आसपास चौकी बनी रहती थी। बादमें विठुने सोचा कि दूसरे लोगोंके गहने हम गाँवके घरमें रखें, अुसके बजाय चुपचाप अिसी झोंपड़ीमें लाकर रखें तो क्या हर्ज है? अिस तरह खुले मैदानमें क़ीमती माल रखना माँको सुरक्षित नहीं मालूम हुआ। वह बोली, "अिससे लोगोंका माल भी चला जायगा और तुममें से किसीकी जान भी चली जायगी।" लेकिन विठु बोला, "आप अिसमें कुछ नहीं

समझ सकतीं।" और अेक छोटीसी थैलीमें अुन सारे गहनोंको भरकर विठुने मवेशियोंकी झोंपड़ीमें ढोरोंको घास डालनेकी जगह नीचे दबा दिया और गोशालाकी व्यवस्था अपने हाथमें ले ली। विठुको ढोरों पर तो अपार प्रेम था ही, अिसलिअे वह गोशालामें क्यों सोता है, यह शंका किसीके मनमें कैसे आती?

हमारी झोंपड़ीकी सुरक्षितता देखकर हमारे सगे-सम्बन्धियोंमें से कअी लोगोंने हमारी झोंपड़ीके आसपास अपनी-अपनी झोंपड़ियाँ बनायीं। विठुको यह सब अच्छा नहीं लगा। वह अितना ही कहता, 'ये लोग अच्छे नहीं हैं।' लेकिन आखिर अुन्हें सहन किये बिना कोअी चारा नहीं था। वे लोग जब मेरे बड़े भाअी या माँके पास कुछ चीज़ या सहूलियत माँगने आते, तो विठु बड़ी मुश्किलसे अुनके प्रति अपने मनके तिरस्कारको छिपा पाता था। अेक दफ़ा मैंने अुससे पूछा, "विठु, तुम अिन लोगोंसे अितने अधिक नाराज़ क्यों रहते हो?" तो वह बोला, "दत्तू अप्पा, अपने रिश्तेदारोंके दोषोंको आप कैसे देख पायेंगे? अिन लोगोंके दिलोंमें ग़रीबोंके प्रति तनिक भी दयाभाव नहीं है। यदि ये लोग किसी पर अुपकार करें भी तो दस बार अुसकी चर्चा करेंगे, अुसके सामने बार-बार अुसका ज़िक्र करेंगे और अुस व्यक्तिसे जायज़-नाजायज़ फ़ायदा अुठाये बग़ैर नहीं रहेंगे। अिन्हीं लोगोंने तो सारे गाँवको ख़राब कर डाला है।"

मेरे बड़े भाअी बेलगुंदीमें खेती करते और पिताजी बेलगाँवमें कलेक्टरके दफ़्तरमें हेड अेकाअुण्टेंट (प्रधान आयव्यय-लेखक) थे। बेलगाँवमें भी बार-बार प्लेग होता था, अिसलिअे हमें बेलगाँवसे तीन-चार मील दूर अेक पक्की कुटिया बनाकर रहना पड़ता था। कुटियासे कचहरी तक जानेके लिअे दो बैलोंवाला अेक ताँगा रखना पड़ा था। अिस बैलोंके ताँगेकी रचना अैसी होती है कि चाहे जितनी बारिश होती हो तो भी अंदर बैठनेवालोंको कोअी तकलीफ़ नहीं होती।

यह तांगा या गाड़ी चलाने तथा घरका काम करनेके लिअे हमने अेक नौकर रखा था। अुसका नाम था भानु। भानु कदमें लम्बा, हट्टा-कट्टा और अुम्रमें लगभग ३०-३५ वर्षका था। वह असलमें कोंकणका रहनेवाला था। काफ़ी तनख्वाह मिलने पर ये लोग चाहे जितनी मेहनत करते हैं। सवेरे छः से लेकर रातके आठ-दस बजे तक वह काम करता। हमने अुसके लिअे अेक छोटी-सी झोंपड़ी बनवा दी थी। अुसीमें वह रहता और हाथसे पकाकर खाता। वह बरतन मांजता, पुरुषोंके कपड़े धोता, गाड़ी हाँकता, रोज़ाना गाड़ी धोता, बैलोंको साफ़ रखता, कहीं सन्देशा देना हो तो दे आता, कूड़ा निकालता, बिस्तर बिछाता और लालटेनें साफ़ करके अुनमें तेल भरता। अुसे खाना देनेका करार न था, नक़द तनख्वाह ही दी जाती थी। अुसके घर पर थोड़ी-सी खेती थी और सिर पर कर्ज़ भी था। असिसे वह हमारे यहाँ नौकरी करके तनख्वाहके क़रीब सभी पैसे घर भेज देता, और तीन-साढ़े तीन रुपयेमें अपना गुज़ारा चलाता था।

अेक दिन मैं अुसकी झोंपड़ी देखने चला गया। अुसका वैभव था दो-चार मटके और अेक मिट्टीकी कड़ाही। अुसकी कड़छी नारियलकी खोपड़ीमें बाँसकी डंडी बैठाकर बनायी हुअी थी। मेरी भाभीने जब मुझसे अुसके घरकी हालत सुनी, तो अुनका अन्तःकरण पसीज अुठा। अुस दिनसे हर रोज़ कुछ न कुछ खानेकी चीज़ अवश्य बचती और भानुको लगभग नियमित रूपसे रोटी, तरकारी, अचार आदि मिलने लगा।

भानु यानी पक्षपातकी प्रतिमूर्ति। घरके दूसरे लोगोंके कपड़े वह किसी तरह धो देता, लेकिन पिताजीके कपड़ोंके लिअे कितनी मेहनत करनी चाहिये, अिसकी अुसके पास कोअी सीमा ही नहीं थी। मेरे कपड़ों पर भी अुसकी थोड़ी-सी मेहरबानी रहती थी। लेकिन मैं नहीं मानता कि खुद मेरे प्रति अुसके मनमें कुछ आकर्षण होगा। मेरी

अपेक्षा मेरे कपड़ोंकी ओर अुसका ध्यान अधिक होनेका कारण अेक दिन मुझे अचानक मालूम हुआ।

हाअीस्कूलमें पढ़नेके लिअे मैं अकसर पिताजीके साथ गाड़ीमें जाता था। छुट्टीके वक़्त पिताजीके दफ़्तरमें भी जाकर बैठता; क्योंकि पिताजीके दफ़्तरके पास ही मेरा स्कूल था। अिससे भानुके मनमें आया कि मेरे कपड़े यदि गन्दे रहे, तो कलेक्टरकी कचहरी और हाअीस्कूलमें काम करनेवाले अुसके जातिके बड़े आदमियोंमें, जो कि चपरासी या हरकारेका काम करते थे, अुसकी क़ीमत अेकदम घट जायगी। भानु अधिकारियोंके घर काम करनेको ही पैदा हुआ था। चपरासियोंकी सिफ़ारिशसे ही अुसे किसी अफ़सरके यहाँ नौकरी मिल सकती थी। हमारे यहाँ भी दशरथ नामक चपरासीकी सिफ़ारिशसे ही वह आया था। मेरे कपड़े देखकर यदि अुसको अुलाहना मिल जाता, तो अुसकी दुनिया ही बिगड़ जाती।

भानुकी दुनियामें मेरे पिताजी थे केन्द्रमें; और अिसलिअे अुसकी यह अपेक्षा रहती कि सारी दुनियाको मेरे पिताजीके चारों ओर ही घूमना चाहिये। जब वह पिताजीकी सेवामें होता, तब किसीकी परवाह न करता। अुसके मनमें सभी पिताजीके आश्रित थे। मैं नहानेके लिअे ग़ुसलख़ानेमें चला गया होता और अितनेमें पिताजी नहानेके लिअे तैयार हो जाते, तो वह पिताजीसे कभी नहीं कहता कि "दत्तू अप्पा नहा रहे हैं।" वह मुझीसे कहता, "साहब नहाने आ रहे हैं, आप हट जाअिये!"

भानु घरमें आया, तबसे हम भी पिताजीको 'साहब' कहने लग गये। बचपनमें हम अुन्हें 'दादा' कहते थे। जब हम अंग्रेजी पढ़ने लगे तो पत्रोंमें हम अुन्हें My Dear Papa लिखा करते थे। भानुके कारण घरके सभी लोग पिताजीका विशेष अदब करना सीख गये। अुसके पहले स्वाभाविक प्रेम और आदर तो अुनके प्रति था ही, लेकिन अदब-क़ायदेकी तफसीली बातें हमारे पास नहीं

थीं। पिताजीकी थाली तथा अुनका लोटा साफ़ करनेकी मिट्टी भी अलग रखी जाती। सबसे पहले पिताजीके बरतन साफ़ होते और धोकर अलग रख दिये जाते, अुसके बाद दूसरोंका नम्बर आता। भानुकी यह मान्यता थी कि पिताजीकी आवश्यकताअें और सुविधाअें पूरी हो जानेके बाद औरोंका जितना काम हो सके अुतना ही करनेको वह बाध्य है। पिताजीके प्रति हम सबमें अुत्कट प्रेम और आदरकी भावना होनेके कारण हम भानुकी अिस वृत्तिका कौतुक ही करते। भानुको आलस्य तो छू तक नहीं गया था। सदा यही जान पड़ता कि मेहनत करनेमें अुसे ख़ूब आनन्द आता है। अुसकी बातचीतका अेक ही विषय रहता — घरकी व्यवस्था और पिताजीकी सुविधा। अुसकी बातचीतसे अैसा आभास भी नहीं मिलता था कि दुनियामें अुसका दूसरा कोअी और भी होगा।

फिर भी अुसके कोअी दोस्त नहीं थे, अैसी बात नहीं। बेलगाँवमें अलग-अलग जगहों पर काम करनेवाले अुसके अिलाक़ेके तथा अुसीके जातिके कितने ही लोग अुसके दोस्त थे। महीनेमें अेक दिन वह सबसे मिलने जाता था। लेकिन अुन दोस्तोंके बारेमें अुसके मुँहसे घरमें अेक दिन भी कोअी बात नहीं निकलती थी। मानो वह किसी षड्यंत्रकारी गुप्त संस्थाका सदस्य हो! अुसके नियमित जानेसे मैंने अनुमान किया था कि अिन सबके मिलनेका अेक निश्चित दिन है। फिर तो मैंने अुससे और भी विशेष बातें जान लीं। वे लोग सचमुच ही महीनेकी अेक निश्चित तारीख़को अिकट्ठा होते, अेक जगह पकाकर खाते, अपने-अपने सुख-दुःखकी बातें करते, कोअी बेकार होता तो अुसे नौकरी कहाँ मिल सकती है, अिसकी जानकारी अुसे देते, और किसी पर किसीका साहब नाराज़ हो जाता, तो अुसका दोस्त अपने साहबकी मारफ़त अुसके साहबको समझानेकी ज़िम्मेवारी अपने सिर लेता। संक्षेपमें कहें तो 'फ्री मैसन' के समान अिन नौकरोंकी बिना नामकी अेक संस्था ही थी। मुझे ठीक याद नहीं, लेकिन किसी ख़ास

त्यौहारके दिन वे सब मिलकर शराब भी पीते थे। फिर भी अुन्हें शराबका व्यसन नहीं था। वर्षमें अेक ही बार अुन्हें अपनी जातिके रिवाजके मुताबिक़ शराब ज़रूर पीनी पड़ती थी। और जब वे शराब पीते थे, तब अितनी अधिक पीते थे कि बेहोश होकर गिर पड़ते थे। और जब दूसरे दिन सब काम पर हाज़िर हो जाते, तो अैसे लगते मानो कोअी चोर हों, जिनकी अच्छी तरह पिटाअी हो गयी है।

ये नौकर जितने दिन तक जिस मालिकके पास रहते हैं, अुतने दिन तक अुसके प्रति पूरे वफ़ादार रहते हैं। घरकी बात बिलकुल बाहर नहीं जाने देते। बाहर सब जगह मालिककी तारीफ़ ही करते हैं। अेककी नौकरी छोड़कर दूसरेके यहाँ रहने जाते हैं, तो भी वहाँ पहले मालिकके घरकी बातें नहीं करते। रहस्य अुनके लिअे रहस्य ही रहता है। सिर्फ़ अुनकी मासिक सभामें जब सभी नौकर अिकट्ठा होते हैं, तब कोअी भी बात छिपी नहीं रहती। शहरके बड़े लोगोंकी सभी छोटी-छोटी बातोंकी वहाँ चर्चा होती है। आज मुझे अैसा लगता है कि यदि किसी तरह अुनकी अिस मासिक सभाका विश्वासपात्र सदस्य बना जा सके, तो अुसमें से समाजशास्त्रका अध्ययन करनेके लिअे कितना ही असाधारण महत्त्वका मसाला मिल सकता है।

भानु अीमानदार था, और अपनी अीमानदारी पर अुसे गर्व भी था। वह शिष्टाचार, सलीका, अदब आदिसे अच्छी तरह परिचित था और अिनका पालन भी ख़ूब करता था। शहरके नौकरकी आत्मामें शिष्टाचार नहीं होता, वह तो बाहरी आडंबर होता है। शहरका शिष्टाचार कभी-कभी अन्दरके कमीनेपनको ढाँकनेके लिअे अूपरी दिखावा ही होता है।

अेक दिन जब मैंने देखा कि साबुनका अेक बड़ा टुकड़ा अेक ही दिनमें ख़तम हो गया है, तो मैंने भानुसे पूछा, "अितना साबुन अेक दिनमें कैसे ख़र्च हो गया?" भानुसे मेरा सवाल बर्दाश्त न हुआ। शिष्टाचारकी मर्यादा टूट गयी और वह बोला, "क्या मैं तुम्हारा

साबुन खा गया?" अितनेमें पिताजी वहाँ आ गये। अुन्होंने भानुकी बात सुन ली थी। अतः अुससे पूछा, "भानु, क्या बात है?" भानु गुस्सेमें ही था। अुसने फिर कहा, "मैंने कोअी अिनका साबुन खा तो नहीं लिया। आपके और अिनके कपड़ोंमें ही खर्च किया है।" पिताजीने कहा, 'अैसा गुस्ताख नौकर घरमें कैसे चल सकता है?' अुसे निकालनेका तो किसीका विचार था ही नहीं; लेकिन अुसे लगा कि मुझे बरतरफ़ कर दिया गया है। अिसलिअे कपड़े पहनकर वह चलता बना।

भानु घर गया और फिर पछताया। दूसरे दिन दशरथ आकर पूछने लगा, "साहब, भानुसे क्या क़सूर हुआ? अुसे आपने क्यों बरतरफ़ किया?" पिताजीने कहा, "हमने तो अुसे नहीं निकाला। अुसे आना हो तो खुशीसे आ सकता है।" दूसरे दिन भानु वापस आया और पहलेकी तरह काम करने लगा। मैंने भानुसे साबुनके बारेमें सिर्फ़ यही जाननेके लिअे पूछा था कि आया अुसे किसीके ज़्यादा कपड़े धोने पड़े थे या यों ही ज़्यादा साबुन खर्च हो गया था? हम अुसे जिस तरहसे घरमें रखते थे, अुस परसे अुसे जानना चाहिये था कि अुस पर किसीको शक नहीं था। अुस दिनसे भानु कभी साबुनवाली बातका ज़िक्र नहीं होने देता था। वह अिस तरह पेश आता रहा, मानो कुछ हुआ ही न हो।

हमारे नौकर अपनी भूलकी क्षमा अिसी तरह माँगते हैं। भानुने शब्दोंमें क्षमा नहीं माँगी। लेकिन शब्दोंसे अुसकी यह वृत्ति और कार्य ज़्यादा अर्थपूर्ण थे।

भानु भी घरकी व्यवस्थामें कभी-कभी हेरफेर सुझाता। किन-किन जगहों पर बचत की जा सकती है, अिसकी योजनाअें वह पेश करता। लेकिन अुन सबके पीछे पिताजीकी सुविधा और आरामका ही खयाल मुख्य रहता। दूसरे किसीको असुविधा अुठानी पड़ती तो अुसकी ओर अुसका बिलकुल ध्यान न रहता। अुसकी

यही दलील रहती कि जब अितनी बचत हो रही है, तो दूसरोंको असुविधा बर्दाश्त करनी ही चाहिये। सिर्फ़ पिताजी ही अुसके अर्थ-शास्त्रमें अपवादरूप थे; और कुछ हद तक माँ भी। शेष सब अुसकी दृष्टिमें केवल आश्रित ही थे।

धीरे-धीरे घरमें भानुकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। बाज़ारसे चीज़ें लाना, छोटा-मोटा हिसाब रखना, धोबीको टरकाना, नाअीको समयसे बुलाना वग़ैरा काम अुसके सुपुर्द हो गये। भानु कहे तब कपड़े बदलने ही चाहिये, भानु कहे तब हजामतके लिअे बैठना ही चाहिये। वह जो सब्ज़ी लाता, वही हमें स्वादके साथ खानी चाहिये। हमें अच्छे लगें या न लगें, हमने मँगाये हों या न मँगाये हों, लेकिन अमुक प्रकारके फल तो घरमें ज़रूर आते। भानुके प्रबंधसे हम सबको संतोष था।

सरकारी नौकरीके सिलसिलेमें पिताजीको दूसरे गाँव जाना पड़ता। सावंतवाड़ी रियासतका शासन चूँकि अंग्रेज़ सरकारके द्वारा चलता था, अिसलिअे वहाँके आय-व्ययका निरीक्षण करनेके लिअे हर साल अेक ब्रिटिश अधिकारी वहाँ जाया करता था। अेकसाल पिताजीको अन्वेषक (ऑडिटर) की हैसियतसे दो महीनेके लिअे सावंतवाड़ी जाना पड़ा था। स्वाभाविक ही भानु अुनके साथ जाना चाहता था। लेकिन देशी राज्योंमें ब्रिटिश अधिकारियोंकी सेवामें अितने नौकर रखे जाते कि भानुकी वहाँ कोअी आवश्यकता नहीं थी। अिससे बड़े भाअीने कहा, "भानुको बेलगुंदी भेज दीजिये, तो मेरी बड़ी मदद होगी। भानु होशियार है, वफ़ादार है, मेहनती है। अतः मेरे लिअे यह बहुत ही कामका साबित होगा।" विठुको भी यही लगा। यह बात तो थी ही नहीं कि भानुको देहातमें रहनेका आनन्द नहीं चाहिये था। अिसलिअे सर्वानुमतिसे बड़े भाअीका प्रस्ताव पास हुआ।

मैं पिताजीके साथ सावंतवाड़ी गया था। वहाँसे अेक महीने बाद लौटकर देखा तो भानु और विठुके बीच कशमकश चल रही थी।

दोनों अच्छे दिलवाले, दोनों वफ़ादार, लेकिन दोनोंके आदर्श अलग अलग थे।

सावंतवाड़ीसे वापस आनेके लिअे पिताजीको गाड़ीकी आवश्यकता थी। सावन्तवाड़ीसे बेलगाँव तक बासठ मीलका पहाड़ी सफ़र है। रास्ता सुन्दर और आकर्षक है। बीचमें आम्बोलीकी घाटी आती है। विठुने बड़े भाअीसे कहा, "खेतका काम बहुत ज़रूरी है। मैं अपने बैल नहीं दूंगा। साहबको लिख दीजिये कि वहाँसे किरायेकी गाड़ी करके चले आयें। किराया कुछ ज़्यादा हो तो कोअी हर्ज नहीं। लेकिन मैं अपना काम नहीं रोक सकता।"

भानुने चिढ़कर कहा, "बड़ा आया दीवानबहादुर! मालिककी ज़रूरत बड़ी या खेतीकी? मालिकके लिअे खेती या खेतीके लिअे मालिक? मैं तो बैलगाड़ी ले ही जाअूंगा। देखता नहीं, साहबका पत्र आया है?"

दोनों बड़े भाअीकी ओर देखने लगे। बड़े भाअीके सामने तीसरा ही सवाल था। नाहकका किराया बचाने या खेतीकी ज़रूरत पूरी करनेकी अपेक्षा दो वफ़ादार सेवकोंको राजी रखना अुनके लिअे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण था। अतः तुरन्त क्या करना चाहिये, अिसका विचार करनेके बदले अुन्होंने दोनोंकी बातें सुन लेनेका निश्चय किया। दोनों ज़िद्दी अपना-अपना दृष्टिबिन्दु विस्तारसे समझाने लगे। बड़े भाअी बड़े तत्त्वज्ञानी थे। सदा धर्म, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र और काव्यशास्त्रकी दुनियामें रहते थे।

अुनकी यह बातचीत चल रही थी कि अितनेमें मैं बेलगुंदी गाँवमें गया और वहाँसे आठ दिनके लिअे दो बैल किरायेसे लाकर मैंने भानुसे कहा, 'ले ये बैल। विठुके बैल तुझे नहीं मिल सकते। घरकी गाड़ी है वह तू ले जा। साथमें विठुका भाअी भी आयेगा। घरमें मैं था तो सबसे छोटा, लेकिन मुझे अैसे हुक्म देनेकी आदत पड़ गयी थी; और मेरा हुक्म भी अन्तिम माना जाता, क्योंकि बचपनमें अैसी

बातोंमें मैं व्यवहार-चतुर माना जाता था। कॉलेजमें जानेके बाद मेरा यह चातुर्य ख़तम हो गया।

दोनोंके बीचका संघर्ष तो टल गया, लेकिन पड़ी हुअी दरार नहीं भर सकी। विठु सारे परिवारका विचार करता और भानु केवल मालिकका विचार करता, यद्यपि हमारे घरमें मालिक और परिवारके बीच कोअी भेद नहीं था।

आसपासके देहातोंमें अुधारी-वसूलीके लिअे जब भानु जाता, तो लोगोंके साथ बहुत सख़्तीसे पेश आता। और रक़मके साथ दो-चार कद्दू, अेकाध कुम्हड़ा, पाँच-दस सेर बैंगन लाये बिना नहीं रहता। विठुको यह बिलकुल नहीं सुहाता। भानु कहता, "सभी साहूकार यों लेते हैं। यह तो हमारा दस्तूर है। दस्तूरकी बात कैसे छोड़ें?" विठु कहता, "बड़ा आया है पटेल मुझे पढ़ाने। मैं कोअी तुझ जैसा कोंकणसे नहीं आया हूँ। अिसी गाँवमें पैदा हुआ हूँ और अिसी गाँवमें मेरी हड्डियाँ गड़ेंगी। सब साहूकार लोग जो अतिरिक्त कर लेते हैं, वह क्या मैं नहीं जानता? लेकिन बाबाने वह रिवाज बन्द कर दिया है। लोग बाबाको यों ही धर्मावतार नहीं कहते। क्या पाँच सेर बैंगनसे चार दिनका भी शाक बन सकता है? तो फिर हमारे साहूकारको क्यों व्यर्थ बदनाम करता है?" भानु मेरे पास आकर कहता, "देखा, दत्तू अप्पा? अिस विठोबाको मालिकके नफ़े-नुकसानकी भी कुछ फ़िक्र है? ये किसान तो आख़िर अिसके जाति-भाअी ही ठहरे न?"

अेक दिन खेतमें कटनी चल रही थी। धान वग़ैरा फसल काट लेनेके बाद अुसके ठूँठ ज़मीनमें खड़े थे। अुन पर यदि पैर पड़े तो अेकदम खून निकल आता है। अिसलिअे मज़दूर खेतमें कुछ सँभलकर चलते थे। भानुको लगा कि अिस तरह सँभलकर चलनेमें वक़्त बेकार जाता है और काम कम होता है। यदि चप्पल पहनकर काम करें, तो काम तेज़ीसे हो सकता है। भानु चप्पल पहनकर

काम करने लगा। विठुने जो देखा तो तुरन्त ही अुसका खून अुबल पड़ा। देहातमें कटनीके समय खेतमें चप्पल पहनकर जाना बहुत ही अशुभ माना जाता है। अुससे भूमिमाताका अपमान होता है, खेतमें आयी हुअी लक्ष्मीका अनादर होता है और खेतके मालिकका अशुभ होता है। अपने पर क़ाबू न रख पानेके कारण विठुके मुँहसे गाली निकल गयी। वह भानुको मारने दौड़ा। दोनों जमकर लड़ते, लेकिन मैंने बीच-बचाव किया। विठुको मैंने काफ़ी अुलाहना दिया और भानुको मेरा खाना लानेके लिअे घर भेज दिया।

शामको बड़े भाअी दोनोंको समझाने बैठे। समाज-व्यवस्था और लोक-रूढ़िके बुनियादी सिद्धान्तोंकी वे चर्चा कर रहे थे और साथ ही सेवक-धर्मकी मीमांसा भी। रीछकी तरह गुर्राते हुअे भानु और विठु श्रद्धापूर्वक धर्मावतारका प्रवचन सुन रहे थे। लेकिन वह सब औंधे घड़े पर पानी डालनेके समान था। दोनों जहाँ थे वहीं रहे। बाबाके प्रवचनमें से जिसे जो वाक्य अनुकूल लगे, अुसने वह अपना लिये।

रोज़ाना वे दिनमें दो-चार बार लड़ पड़ते थे। हर वक़्त तो कोअी युक्ति खोजकर अुनका झगड़ा टालनेके लिअे मैं वहाँ हाज़िर नहीं रहता, और न धर्मचर्चाके लिअे बड़े भाअी ही रहते थे। अिस-लिअे दोनोंके बीच कड़ुवाहट बढ़ने लगी। सब तंग आ गये। अुन दोनोंको भी लगा कि अिस घरमें अब हमारी प्रतिष्ठा नहीं रही। लेकिन घर छोड़कर जानेका भी किसीका मन न होता था। और हम भी अुन्हें जाने देनेको तैयार न थे। दोनों अपना-अपना काम ठीक तरह करते, लेकिन दिलमें दुःखी रहने लगे।

सावंतवाड़ीसे आनेके बाद पिताजीने तीन महीनेकी छुट्टी ले ली। अिस कारण हम सब बेलगुंदीमें ही रहने लगे। अतः भानु और विठुको अलग-अलग रखनेकी मेरी युक्ति भी न चल पायी। अितनेमें

कोंकणसे भानुकी माँके गुज़र जानेकी खबर आयी। घरमें खेतीकी देखभाल करनेवाला कोअी न होनेके कारण अुसे हमारे घरसे रुखसत लेनी पड़ी। हमें भानुको छोड़ते हुअे बड़ा दुःख हुआ। और वह भी ज़ार-ज़ार रोया। विठुको भी भानुका जाना अखरा। अुसने भानुको सब कुछ भूल जानेको कहा। अुसे अपने यहाँ तीन दिन तक मेहमान रखा और भरे दिलसे दोनों अेक-दूसरेसे अलग हुअे।

भानुके जानेके बाद विठोबा कितनी ही बार भानुके गुणोंका वर्णन करता। वह स्वीकार करता कि, 'भानुसे मैंने यह सीखा, वह सीखा।' अपने दोस्तोंको भानुके समान अदब रखनेके लिअे कहता। और अुसने भानुके साथ जो बेकार लड़ाअी की थी अुस पर पछताता। फिर भी कहता, "भानु आखिर था तो शहरी आदमी! चाहे जितना भी होशियार हो, फिर भी क्या हुआ? हम जैसा तो वह नहीं हो सकता। आज है और कल चला। हमीं तो आखिर घरके आदमी हैं।"

अिसके बाद छः आठ महीनेमें ही विठु प्लेगसे मर गया। अुसकी स्त्री पुनर्विवाह करके दूसरे गाँव चली गयी। अुसके कोअी बालबच्चे नहीं थे। अुसका भाअी, भावज आदि लोग कअी साल तक हमारे यहाँ मज़दूरीके लिअे आते रहे। परश्या और सुब्या थोड़े ही दिनोंमें गुज़र गये। गिड्डया और घुमड्याने हमारे यहाँ बहुत साल तक काम किया, लेकिन विठुकी बराबरी वे न कर सके।

७५

जला हुआ भगत

अेक बार सावंतवाड़ीमें अेक घरमें आग लगी। सारे मुहल्लेमें हू-हा मच गयी। हमने वह हल्ला सुना और क्या है यह देखनेको दौड़ पड़े। विठु चपरासी हमारे साथ था। दो-चार गलियोंमें चक्कर लगाकर हम आगकी जगह जा पहुँचे। घर तो जलकर बैठ ही गया था। सिर्फ़ दीवारें खड़ी थीं। अैसे घरमें देखने जैसा क्या हो सकता था? छतकी लकड़ियाँ भभककर जल रही थीं। घरका सामान रास्ते पर तितर-बितर पड़ा था। अेक बुढ़िया रास्ते पर सिर पीट रही थी। कअी लोग घरके ढेरमें से अभी भी बचाने लायक़ चीजें बाहर खींचकर निकाल रहे थे। दूसरे कितने ही दैववादी लोग हाथ बाँधे खड़े खड़े सिर्फ़ बकवास ही कर रहे थे।

हमें वहाँ ज़्यादा खड़े रहना अच्छा न लगा। हम लौट रहे थे, अितनेमें किसीने कहा, 'जलते हुअे घर पर अेक भला आदमी चढ़ा था। लेकिन पैर फिसल जानेसे भीतर जा गिरा; काफ़ी जल गया है। लोगोंने बड़ी मुश्किलसे अुसे बाहर निकाला। अब अुसे अस्पताल ले गये हैं।' अुसका नाम सुनते ही विठु बोला, 'अरे वह तो हमारा भगत है। कितना भला आदमी है वह!'

हमें अुस भगतको देखनेके लिअे जानेकी अिच्छा हुअी। हमने विठुसे कहा, "चलो, कहाँ है वह अस्पताल? हम वहाँ चलें।"

'दोपहरके भोजनके बाद चलें तो?'

'नहीं, अभी चलो। बेचारेको देखें तो सही।'

'लेकिन साहब नाराज़ होंगे। घर जानेमें देर जो हो जायगी।

'नहीं, साहब नहीं नाराज़ होंगे। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ।

हम अस्पताल गये। वहाँ अनेक बीमारोंके बीच भगतकी खटिया थी। बेचारेके कअी जगह पट्टियाँ बँधी थीं। विठु अुसे पहचानता था। अुसने भगतसे कहा, 'हमारे साहबके लड़के तुझे देखने आये हैं।' भगत अुठनेकी कोशिश करने लगा। पर हमने अुसे रोक दिया।

मेरे मनमें विचार आया कि अिसने अिस प्रकार जो बहादुरी दिखाअी है, अुसकी हमें क़द्र करनी चाहिये। अिसे लगना चाहिये कि दुनियामें अुसके जैसेकी क़द्र करनेवाले लोग भी हैं। अुसे अच्छा लगे अिसलिअे कुछ चुने हुअे वचन भी कह देने चाहियें। लेकिन क्या बोलना, यह नहीं सूझता था। कृत्रिम शिष्टाचारने कहा, 'कुछ न कुछ मीठी बातें कर तो सही।' लेकिन जो भी वाक्य मनमें बनाता, अुसके पहले ही हृदय कहता, 'यह सब बनावटी जान पड़ता है।'

अिसी मनोमन्थनमें मैं कुछ बोल तो गया। लेकिन वह अैसा बेढंगा था कि हम सब परेशानीमें पड़ गये। भगत भी कुछ-कुछ घबड़ाया-सा दिखाअी देने लगा। अुसे पूरा विश्वास हो गया था कि अब वह बचनेवाला नहीं है। अुसने कहा, 'भगवानने मेरा सदा भला किया है। आज यदि वह अपने घर बुला ले तो वह अच्छा ही होगा।'

मैंने कहा, "भगतजी, घबड़ाअिये नहीं। पांडुरंग आपको ज़रूर चंगा ही करेगा। आपकी मेहनत व्यर्थ नहीं जा सकती।"

भगतको ख़ुशामद सूझी या शिष्टाचार याद आया। वह बोला, "आप जैसे बड़े लोग मुझे देखने आये, अिसीमें मुझे सब कुछ मिल गया।"

अब वहाँ ज्यादा खड़े रहनेकी आवश्यकता नहीं थी। घर जाकर मैंने पिताजीको सारा माजरा कह सुनाया। देर बहुत हो गयी थी, मगर पिताजीने विठुसे कुछ नहीं कहा। अेक महीने बाद भगत चंगे हो गये और विठुसे सुना कि वे भगवानके नहीं, बल्कि अपने ही घर वापस आ गये। यह बात तो सब कोअी कहता था कि भगतने अुस दिन अुस जलते घरको बचानेमें कैसे सबसे ज्यादा मेहनत की थी और दिलेरीके साथ वे कैसे आगमें कूद पड़े थे।

७६

तेरदालका मृगजल

मेरी शादी होनेके बाद कुछ ही दिनोंमें हम जमखिण्डी गये। पिताजी हमसे पहले ही वहाँ पहुँच गये थे। मुझे याद है कि हमारे साथ सामान बहुत था, अिसलिअे कुड़ची स्टेशन पर मुझे लगेजके दूने पैसे देने पड़े थे। रातमें ही हम बैलगाड़ीमें बैठकर निकले। दोनों बैल सफ़ेद और मोटे-ताज़े थे। रंग, सींगोंका आकार, मुखमुद्रा, चलनेका ढंग, सब बातें दोनोंमें समान थीं। हमारे यहाँ अैसी जोड़ीको खिल्लारी कहते हैं। अुन बैलोंने हमें २४ घण्टोंमें ३५ मील पर पहुँचा दिया था। रास्तेमें भोजन आदिके लिअे जितना समय लगा वह अिसीमें शामिल है।

जमखिण्डी जाते हुअे रास्तेमें तेरदाल आता है, जो साँगली रियासतका गाँव था। हम जब तेरदालके पास पहुँचे, तब दोपहर हो चुकी थी। दाहिनी ओर दूर-दूर तक खेत फैले हुअे थे। बहुत ही दूर, लगभग क्षितिजके पास अेक बड़ी-सी नदी बहती हुअी दिखाअी दी। पानी पर सख्त धूप पड़नेके कारण वह चमचमा रहा था और पानी कितने ज़ोरसे बह रहा है अिसकी भी कुछ कुछ कल्पना होती थी। लेकिन अैसी सुन्दर नदीके किनारे वृक्ष कम क्यों हैं, अिसका कारण मैं समझ न सका। मैंने गाड़ीवानसे पूछा, 'अिस नदीका क्या नाम है? कितनी बड़ी दिखाअी दे रही है? कृष्णा तो नहीं है?' गाड़ीवान हँस पड़ा। बोला, 'यहाँ भला नदी कहाँसे आयेगी? यह तो मृगजल है। पानीके अिस दृश्यसे बेचारे मृग धोखेमें आ जाते हैं और धूपमें दौड़ दौड़ कर और तड़प-तड़प कर मर जाते हैं। अिसलिअे अिसे मृगजल कहते हैं।'

मृगजलके बारेमें मैंने पढ़ा तो था। पानीकी तरह मृगजलमें अूपरके वृक्षका अुलटा प्रतिबिम्ब भी दिखाअी देता है रेगिस्तानमें चलनेवाले अूंटका प्रतिबिम्ब भी दिखाअी देता है, वग़ैरा जानकारी और अुसके चित्र मैंने पुस्तकमें देखे थे। लेकिन मैं समझता था कि मृगजल तो अफ्रीकामें ही दिखाअी देता होगा। सहाराके रेगिस्तानकी २१ दिनकी मुसाफ़िरीमें ही यह अद्‌भुत दृश्य देखनेको मिलता होगा। हिन्दुस्तानमें भी मृगजल दिखाअी दे सकता है, अिसकी अगर मुझे कल्पना होती तो मैं अितनी आसानीसे और अिस बुरी तरहसे धोखा नहीं खाता।

अब मैंने देखा कि हम जैसे जैसे अपनी गाड़ीमें आगे बढ़ते जाते हैं, वैसे वैसे पानी भी साथ ही साथ खिसकता जाता है। मैंने यह भी देखा कि पानीके आसपास हरियाली नहीं है और पानीकी सतह आसपासकी ज़मीनसे नीची नहीं है। सपाट ज़मीन पर से ही पानी बहता है। थोड़ी देर बाद अूपरकी हवामें भी धूपकी गर्मीके कारण अेक तरहकी लहरें दिखाअी देने लगीं। फिर तो मृगजलका खेल देखने और अुसका स्वरूप समझनेमें बहुत आनन्द आने लगा। बेचारे बैल अधमुंदी आँखोंसे अपनी गतिके तालमें अेक समान चल रहे थे। कोअी बैल चलते-चलते पेशाब करता, तो अुसकी धार ज़मीन पर गिरती और अुससे अेक खास क़िस्मका आलेख बन जाता। कुछ ही देरमें वह लकीर सूख जाती। अुस आलेखके बारेमें सोचनेमें कुछ समय बिताया, लेकिन बार-बार मेरा ध्यान हिरनोंकी पीठ जलानेवाली अुस धूपकी तरफ़ ही जाता। हम आधे-आधे घण्टेसे सुराहीसे पानी लेकर पीते थे, तो भी प्यास नहीं बुझती थी।

अिस तरह ख़ुदा ख़ुदा करके तेरदाल आया। धर्मशाला पत्थरकी बनी हुअी थी। देशी राज्यका गाँव था, अिसलिअे धर्मशाला बढ़िया बनी हुअी थी। लेकिन प्रचंड धूपके कारण वह भी अुदास-सी लग रही थी। मुकाम पर पहुँचनेके बाद मैं तालाबमें नहा आया। साथमें पूजाके देवता थे। अुन्हें भी बेंतकी पेटीमें से निकालकर पूजाके लिअे जमाया।

देवताओंमें अेक शालिग्राम था। वह तुलसीपत्रके बिना भोजन नहीं करता, अिसलिअे मैं गीली धोतीसे और खुले पैरों तुलसीपत्रकी खोजमें निकला। सौभाग्यसे अेक घरके आँगनमें सफ़ेद कनेरके फूल भी मिले और तुलसीपत्र भी। दोपहरका वक़्त था, पेटमें भूख थी, पैर जल रहे थे, सिर गरम हो गया था — अैसे त्रिविध तापमें मैं पूजा करने बैठा। देवता भी कुछ कम न थे। अीश्वर अेक अवश्य है, लेकिन अिसलिअे यदि सबकी ओरसे अेक ही देवताकी पूजा करता, तो वह चल नहीं सकता था। पूजा करते-करते आँखोंके सामने अँधेरा छाने लगा। बड़ी मुश्किलसे पूजा की और जीमकर सो गया।

स्वप्नमें मैंने देखा कि हिरनोंका अेक बड़ा झुंड गेंदकी तरह दौड़ता हुआ मृगजलका पानी पीने जा रहा है। मैं अुन हिरनोंको कैसे रोकता या समझाता?

अैसा ही अेक मृगजल दांडीयात्राके समय नवसारीसे दांडीके समुद्र-किनारेकी ओर जाते समय देखनेको मिला था। हमें यह विश्वास होते हुअे भी कि यह मृगजल है, आँखोंका भ्रम तनिक भी कम नहीं होता था। वेदान्तका ज्ञान आँखोंको कैसे स्वीकार हो?

आजकल कलकत्तेकी कोलतारकी सड़कों पर भी दोपहरके समय अैसा मृगजल चमकने लगता है, जिससे भ्रम होता है कि अभी-अभी बारिश हुअी है। दौड़नेवाली मोटरोंकी परछाअियाँ भी अुसमें दिखाअी देती हैं। भगवानने यह मृगजल शायद अिसीलिअे बनाया है कि ज्ञान होने पर भी मनुष्य कैसे मोहवश रह सकता है, अिस सवालका जवाब अुसे मिल जाय।

७७

जीवन-पाथेय

मेरे पाँच भाअियोंमें से अकेले अण्णा ही बी० अे० तक जा पाये थे। शेष सब बीचमें ही अिधर अुधर अटक गये थे। अंग्रेज़ी शिक्षाके लिअे बेहद ख़र्च करने पर भी किसीने पिताजीकी आशा पूर्ण नहीं की थी। अिससे अुनका दिल टूट गया था। मेरे बारेमें अुन्होंने पहलेसे ही तय कर लिया था कि दत्तूको कॉलेजमें भेजूँगा ही नहीं। अिस पर मैं मन ही मन कुढ़ता था। ग़लती दूसरेकी और सज़ा मुझे क्यों? लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं। जब पहले ही वर्ष में मैट्रिक पास हो गया, तो मेरी कुछ कुछ साख जमी। अुसी साल अपने स्कूलकी आबरू रखनेके लिअे हम मैट्रिकके तीन विद्यार्थी युनिवर्सिटी स्कूल फाअिनलकी परीक्षामें भी बैठे थे। अिस परीक्षाका भी वह आख़िरी वर्ष था। युनिवर्सिटीने यह परीक्षा बादमें बन्द कर दी और वह शिक्षा-विभागको सौंप दी। अिस परीक्षामें भी मैं पास हुआ, अितना ही नहीं, अिसमें मेरा नम्बर काफ़ी अूँचा रहा। मुझसे पेश्तर घरमें कोअी पहले ही साल मैट्रिकमें अुत्तीर्ण नहीं हुआ था। और मैंने तो पहले ही वर्ष दोनों परीक्षाअें पास की थीं। अिस बल पर मैंने कॉलेजमें भरती होनेकी माँग पेश की। फिर भी पिताजी टससे मस न हुअे। आख़िर मैंने अुनसे कहा, "आप जानते हैं कि मेरे अंग्रेज़ी और गणित दोनों विषय अच्छे हैं। मुझे अिंजीनियरिंगमें जाने दीजिये। प्रीवियस (अेफ० अे०) की परीक्षा पास किये बिना अिंजीनियरिंग कॉलेजमें भरती नहीं किया जा सकता, अिसलिअे मैं अेक ही वर्षके लिअे आर्ट्स कॉलेजमें जाअूँगा।" मेरी अिस दलीलसे पिताजी कुछ पिघले और अुन्होंने मुझे कॉलेजमें जानेकी अिजाज़त दे दी।

बी० अे० अेल-अेल० बी० को छोड़कर अेल० सी० अी० पसन्द करनेके पीछे मेरी जो विचार-शृंखला थी, अुसका स्मरण करते भी मुझे बड़ी शर्म आती है। पहले मैंने सोचा था कि अिंग्लैंड जाकर बैरिस्टर हो आअूँ, लेकिन बड़े भाअियोंने पिताजीको निराश किया था और अिंग्लैंड जानेका खर्च पिताजी अुठा नहीं सकते थे। मैंने मनमें सोचा कि 'हमारे पास कोअी अैसी पूंजी नहीं कि व्यापार करके हम मालदार बन सकें। और व्यापारमें प्रतिष्ठा भी कहाँ है? यदि नौकरी की, तो अुसमें तनख्वाह क्या मिलेगी? सरकारी नौकर यदि पैसेवाले बनते हैं, तो रिश्वत लेकर ही। वकील बनकर औरोंके झगड़े विदेशी अदालतोंमें लड़ाते रहना मुझे पसन्द नहीं था। यदि बी० अे० अेल-अेल० बी० हो जाअूँगा, तो तहसीलदार या मुन्सिफ़ हो सकूँगा। अिस लाअिनमें रिश्वत भी बहुत मिलती है। लेकिन अुसके लिअे प्रजाको लूटना पड़ता है और अुसके साथ अन्याय भी करना पड़ता है। यह मुझसे नहीं हो सकता। अिससे तो अेल० सी० अी० हो गया और पहले तीन परीक्षार्थियोंमें आ गया, तो देखते-देखते अिन्जीनियर बन सकूँगा। बड़े-बड़े आलीशान मकान बनवानेका, जंगलमें से रास्ते निकालनेका और नदियों पर पुल बनानेका मज़ा तो सारी ज़िन्दगी मिलेगा। फिर घोड़े पर बैठकर सवेरेसे शाम तक घूमनेका मज़ा भी मिल सकेगा। यदि ठेकेदारोंसे रिश्वत लेंगे, तो अुससे सरकारका ही नुक़सान होगा। अुसमें प्रजाको लूटनेका प्रश्न ही नहीं रहता।' मुझे अिसी ख़यालसे गर्वका अनुभव हो रहा था कि मैं अधर्ममें भी धर्मका पालन कर रहा हूँ। ये विचार अनेक बार मनमें आते, लेकिन किसीसे कहनेकी हिम्मत या बेवक़ूफ़ी मुझमें नहीं थी।

जिस दिन मैं कॉलेजमें जानेवाला था, अुसी दिन पिताजी साँगली राज्यके ट्रेज़री-ऑफ़िसरकी हैसियतसे तीन लाख रुपये लेकर पुलिस-रक्षाके साथ पूना जानेवाले थे। पूनासे राज्यके लिअे प्रॉमिसरी

नोट खरीदने थे। साँगली स्टेशन पर हम साथ हो गये। पिताजी पूना क्यों जा रहे हैं, यह मुझे मालूम हो गया। मैंने पिताजीसे कहा, "नोटोंके भाव रोज़ाना बदलते रहते हैं। हम यदि कुछ कोशिश करें, तो खुले भावोंसे कुछ सस्ती क़ीमतमें नोट खरीद सकेंगे। राज्यको तो खुले भाव ही बतलायें और बीचमें जो मुनाफा होगा वह हम ले लें। किसीको पता भी न चलेगा और सहज ही बहुत-सा मुनाफ़ा मिल जायेगा।"

मुझे लगा कि पिताजीने मेरी बात शान्तिसे सुन ली है। लेकिन मेरी बातसे अुन्हें कितनी चोट पहुँची है, अिसकी मुझे अुस वक़्त कल्पना तक नहीं आयी। मैं समझ रहा था कि मेरे सुझाव पर कैसे अमल किया जा सकता है, अिसके बारेमें पिताजी विचार कर रहे हैं।

थोड़ी देर बाद पिताजीने भर्राअी हुअी आवाज़में कहा, "दत्तू, मैं यह नहीं मानता था कि तुझमें अितनी हीनता होगी। तेरी बातका अर्थ यही है न कि मैं अपने अन्नदाताको धोखा दूँ? लानत है तेरी शिक्षा पर! अपने कुलदेवताने हमें जितनी रोटी दी है, अुतनीसे हमें सन्तोष मानना चाहिये। लक्ष्मी तो आज है, कल चली जायगी। अिज़्जतके साथ अन्त तक रहना ही बड़ी बात है। मरनेके बाद जब अीश्वरके सामने खड़ा होअूँगा, तब क्या जवाब दूँगा? तू कॉलेजमें जा रहा है। वहाँ पढ़-लिखकर क्या तू यही करेगा? अिसकी अपेक्षा यदि यहींसे वापस लौट जाये तो क्या बुरा है?"

मैं सन्न रह गया। गाड़ीमें सारी रात मुझे नींद नहीं आयी। सवेरे पूना पहुँचनेके पहले मैंने मनमें निश्चय किया कि हरामके धनका लोभ मैं कभी नहीं करूँगा, पिताजीका नाम नहीं डुबाअूँगा।

पिताजीको शहरमें छोड़कर अिस निश्चयके साथ मैं कॉलेजमें गया। कॉलेजकी सच्ची शिक्षा तो मुझे साँगली और पूनाके बीच ट्रेनमें ही मिल चुकी थी।

संस्मरणोंकी पृष्ठभूमि

[औसवी सन १८९२ से १९०३ तक]

मेरा जन्म कब हुआ, यह मैं निश्चित नहीं बतला सकता। पिताजीने पुरोहितसे जो जन्मपत्रिका बनवायी थी, वह मेरे हाथ पड़ते ही न जाने कहाँ खो गयी। जन्मका निश्चित वर्ष ध्यानमें नहीं रहा। माँसे मैंने सुना था कि मेरा जन्म कार्तिक वदि १० को हुआ था। मुझसे बड़े भाओीका जन्म सन १८८४ औसवीके शुरूमें हुआ था। अुनसे मैं लगभग डेढ़ बरस छोटा था। मुझे यह भी पता था कि साताराके यादोगोपाळ पेठ मुहल्लेमें मेरा जन्म हुआ था। अितनी जानकारीके आधार पर साताराके अेक मित्रने प्रयत्न करके पुराने सबूतोंके बल पर मेरा जन्मकाल निश्चित कर दिया है। अुसके अनुसार सन १८८५ के दिसम्बरकी पहली तारीख़को महाराष्ट्रकी पुरानी राजधानी सातारामें मैंने पहले-पहल अिस भरतभूमिमें साँस ली। देशी तिथिके अनुसार शक १८०७ (संवत् १९४०) की कार्तिक वदि १० मंगलवारको मेरा जन्म-दिन आता है। फलित ज्योतिषमें मुझे विशेष आस्था नहीं है, अिसलिअे तिथि और कालका मेरे मनमें बहुत महत्त्व नहीं। लेकिन मेरा जन्म हुआ अुस वक़्त सुबहके दस बज रहे थे और पिताजी पूजामें बैठे हुअे थे — यह बात जब मैंने अपनी दादीसे सुनी, तो मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। क्योंकि मेरे जन्म-समयमें मेरे जन्मदाता औश्वरके चिन्तनमें मग्न थे।

कालेलकर कुटुम्ब असलमें सावंतवाड़ीकी ओरका है। सावन्त-वाड़ीके पास माणगाँव नामक अेक कस्बा है। अुसके पास ही कालेली

गाँव है। अुसी परसे हमारा अुपनाम कालेलकर पड़ा है। कहा जाता है कि हमारा असल अुपनाम राजाध्यक्ष था। हमारे कुनबेके कुछ लोग रांगणेकर बने और कुछ कालेलकर। अुन दिनों सावन्तवाड़ीकी ओर चोर-डाकुओंका बहुत दौर-दौरा था, अिसलिअे हमारे पूर्वजोंने कोंकण प्रदेश छोड़ दिया और घाट लाँघकर वे बेलगाँवकी ओर भाग आये।

कहा जाता है कि पैसे निकलवानेके लिअे चोर-लुटेरे लोगोंके सीने और नाक पर बड़े-बड़े पत्थर लाकर रखते थे। सरकारी अधिकारियोंका जुल्म भी कभी कभी लुटेरोंके जुल्मसे बढ़ जाता था। अुस वक़्तका वर्णन करते हुअे अेकने कहा था कि देहातोंमें लोग अिस जुल्मोसितमके अितने आदी हो गये थे कि कअी परिवार मिलकर अेक साथ भोजन पकाते थे। भात और दाल पकानेके लिअे चूल्हे पर जो देगचियाँ चढ़ाते, अुनके दोनों ओर बड़े-बड़े कड़े लगे रहते, और जहाँ सुनते कि लुटेरे आ रहे हैं, वे तुरन्त कड़ोंमें लम्बा बाँस डालकर देगचियाँ कन्धों पर अुठाकर जंगलमें भाग जाते। रोज़ाना भरी हुअी देगचियाँ छोड़कर जाना तो कैसे पुसा सकता था? जंगलमें नया चूल्हा बनाकर अधपके भात-दालको पूरा पकाकर आरामसे खाते थे।

मेरे दादाने बेलगाँवके नज़दीक हलकर्णी नामक अेक देहातमें आकर किसी साहूकारके यहाँ नौकरी की थी। आम तौर पर यही देखा गया है कि साहूकारके गुमाश्ते अपने मालिकको चूसकर खोखला बना देते हैं। लेकिन मेरे दादाके सम्बन्धमें अिससे अुलटी बात हुअी। अुन्होंने अपने मालिकके साथ अभेद-बुद्धि रखकर अपनी सारी कमाअी बगैर हिसाबके अुन्हींके घर रखी थी। और मालिकके गुज़र जानेके बाद अुसमें से अेक पाअी भी हाथ न आयी। मेरे पिताजीने अपनी सारी जिन्दगी सरकारी मालगुज़ारी विभागमें आयव्यय-निरीक्षकका काम करते बितायी, फिर भी अुन्होंने घर पर कभी हिसाब नहीं रखा। अिससे अुनका कुछ कम नुक़सान नहीं हुआ।

[अिन दो पीढ़ियोंके अनुभवोंसे अक़्लमंद बननेकी बात मुझे भी नहीं सूझी। मैंने अितना ही सुधार किया कि हम न तो पैसे कमायें और न खर्च ही करें। शिक्षा समाप्त होते ही मैं सार्वजनिक कामोंमें लग गया। अुतना ही पैसा लिया जितनेकी ज़रूरत थी। कभी किसीसे कर्ज़ा नहीं लिया। जितना हाथमें होता अुसीसे काम चला लिया और सुखी हुआ।]

नतीजा यह हुआ कि मेरे पिताजीको अत्यन्त गरीबीमें दिन काटकर थोड़ासा अंग्रेज़ीका ज्ञान प्राप्त करना पड़ा। अुन दिनों मैट्रिककी परीक्षा नहीं थी, लिटल गो आदि परीक्षाअें थीं। वे गर्वसे कहते कि प्रख्यात वैदिक विद्वान् शंकर पांडुरंग पंडित कुछ दिन तक अुनके शिक्षक रहे थे। ग़रीबीके कारण छोटी अुम्रमें ही मेरे पिताजी फ़ौजी विभागमें भरती हो गये थे। यदि वे अुसी विभागमें रहे होते, तो शायद हमारा जीवनक्रम ही अलग होता। फ़ौजकी छावनी मौजूदा बीजापुर जिलेके कलादगी गाँवमें थी। फ़ौजके बड़े अधिकारीने स्वदेश लौटते समय मालगुजारी विभागमें पिताजीकी सिफ़ारिश की। बीजापुरके प्रसिद्ध अकालमें जब लोगोंको सरकारी मदद दी जा रही थी, तब पिताजीने बहुत मेहनत अुठायी थी। अुस वक़्तके अकालका वर्णन जब पिताजीसे सुनता, तो रोंगटे खड़े हो जाते थे।

शाहपुरके भिसे कुटुम्बके साथ हमारा पुराना सम्बन्ध था। मेरी बुआ अिसी कुटुम्बमें ब्याही गयी थी। मेरी माँ भी अिसी कुटुम्बकी थी। आगे चलकर मेरे दो भाअियोंकी शादी भी अिसी कुटुम्बमें हुअी थी। दो कुटुम्बोंके बीच अिस तरह बार-बार शरीर-सम्बन्ध होना आरोग्यकी दृष्टिसे, मानसिक विकासकी दृष्टिसे और सामाजिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हितकारक नहीं होता, अैसी मेरी राय बन गयी है।

अुस ज़मानेका सामाजिक जीवन सामान्य कोटिका ही माना जायगा। राजनीतिक अस्मिता, सामाजिक सुधार, औद्योगिक जागृति

अथवा मौलिक धर्म-विचारकी दृष्टिसे तो समाजमें लगभग अँधेरा ही था। जैसे-तैसे अपनी कमाअी बढ़ाना और बालबच्चोंको सुखी करना — अिससे अधिक सामान्य कुटुम्बमें व्यवहारका दूसरा आदर्श था ही नहीं। आज भी अैसा नहीं कहा जा सकता कि अुस स्थितिमें विशेष फ़र्क़ पड़ा है। अलबत्ता, जहाँ-तहाँ विचार-जागृति अवश्य दिखाअी देती है। सामान्य लोगोंका नीतिशास्त्र अितना ही था कि अैसा जीवन बिताया जाय, जिससे समाजके भले आदमियोंका अुलाहना न मिले। व्यवहारमें यही कहा जाता कि 'चोरी, चुगली और व्यभिचार न किया तो काफ़ी है। बाकी स्वार्थके लिअे मनुष्य कुछ भी कर सकता है।'

धर्ममें तो सड़ियल रूढ़िवादका ही बोलबाला था। प्रार्थना-समाजका तो किसीने नाम भी न सुना था। सुधारकोंका नाम कभी-कभी सुनाअी पड़ता था, लेकिन वह समाजद्रोही, धर्मभ्रष्टके रूपमें ही। सामान्य लोगोंके ख़यालमें सुधारकका अर्थ था मांसाहारी, शराबी, नास्तिक, विधवा-विवाह करनेवाले, लगभग अीसाअी बने हुअे लोग। धर्मका मतलब था पूर्व परम्परासे चली आयी रूढ़ियाँ, जात-पाँतका अूँच-नीचपन, मत्सर अेवं विद्वेष, खान-पानके पेचीदा नियम, अनेक देवी-देवता और भूत-प्रेतोंके कोपका डर, अिनसे सम्बन्ध रखनेवाली बलि और कर, व्रत, त्यौहार और अुत्सव। अिस सम्बन्धमें बाबा-वैरागी, हरदास-पुराणिक (कथावाचक) और पंडे-पुरोहित जैसा कुछ मार्गदर्शन करते थे, अुसी रास्ते समाज जाता था।

बचपनमें मैंने ज्यादा संन्यासियोंको नहीं देखा था। अुनका निवास तो आम तौर पर तीर्थक्षेत्रोंमें ही होता था। तीर्थयात्रा धार्मिक जीवनका मानो सबसे अूंचा शिखर था। ज़िन्दगीभर मेहनत करके जो कुछ पूंजी बचायी हो अुसीमें से बुढ़ापेमें काशी-रामेश्वरकी यात्रा की जाती। लोग दिलसे अैसा समझते थे कि जीवनमें जो कुछ पाप

अपने हाथों हो गये हैं, वे अैसी यात्राओंसे धुल जाते हैं। समाजके नियमोंका विशेष अुल्लंघन होता, तो समाजको संतुष्ट करनेके लिअे प्रायश्चित्त करना पड़ता। लेकिन अिस तरहका प्रायश्चित्त बहुत महँगा और अपमानजनक होनेके कारण अुससे बच जानेकी ही कोशिश रहती। आज भी कुछ हद तक यही हालत है, लेकिन हर विषयमें समाजकी श्रद्धा लड़खड़ाने लगी है। समाज-मानस हर स्थान पर साशंक बन गया है। सामाजिक संगठन लगभग टूट गया है, अतः सामाजिक यंत्रणा भी कम हो गयी है। साथ ही साथ अलग अलग महापुरुषोंके चारित्र्य-तेज और अनेकानेक शिक्षितों द्वारा चलायी गयी अखंड अेवं विविध चर्चाके कारण व्यक्तिगत तथा सामाजिक धर्म-जीवनका अुच्च आदर्श समाजके सम्मुख अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है। सुधारकता और नास्तिकताके सम्बन्धमें छिछलापन दूर होकर अुसमें बहुत कुछ गंभीरता आ रही है। प्रत्यक्ष आचरणमें शिथिलता बढ़ रही है सही, लेकिन मानसिक भूमिकामें बड़े महत्त्वका परिवर्तन होता जा रहा है।

दरिद्री अेवं लालची लोग जैसे घरका कबाड़ अेवं निकम्मा सामान बाहर फेंक देनेकी हिम्मत नहीं करते और अुसके कारण अनेकों असुविधाअें अुठाते रहते हैं, वही हाल धर्ममें रूढ़ियों और अंध-विश्वासोंका है। जैसे डरपोक, लाचार और लालची आदमी अुजड्ड या जबरदस्त गुंडोंके सामने झुक जाते हैं और अुनकी खुशामद करते हैं, वैसे ही प्राकृत मनुष्य देवी-देवताओं और धार्मिक रिवाजोंके सामने झुका रहता है। कुछ भी परिवर्तन करने या खतरनाक बातोंको निकाल देनेकी हिम्मत तो अुसमें हो ही नहीं सकती। भला या बुरा, जो कुछ भी आलस, लापरवाही या गफ़लतसे मिट जाय वह भले मिट जाय। लेकिन यह नहीं बनता कि जीवनमें विचारपूर्वक परिवर्तन किया जाय; जो खराब मालूम हो, अुसे अिरादतन् छोड़ दिया जाय और जो अच्छा हो अुसे आग्रहके साथ स्वीकार किया

जाय। यह अिसलिअे नहीं हो सकता कि अिसके लिअे चैतन्यकी ज़रूरत रहती है। हरअेकके मनमें यह अंधा भय रहता है कि करने जायें कुछ और हो जाये कुछ तो? अिसलिअे पुराना तो सब क़ायम ही रहता है, फिर वह भला हो या बुरा। अिसके अलावा, यदि कोअी डर और लालचके आधार पर नया ही तितिंबा खड़ा कर दे, तो समाजमें अुसका मुक़ाबला करनेकी भी हिम्मत नहीं है। हर चीज़में कुछ न कुछ अुपयोगिता ज़रूर होगी, अैसा कहकर संग्रहको बढ़ाते ही जाते हैं। यही मनोवृत्ति पायी जाती है कि जो कुछ आये अुसे आने दिया जाय।

मेरा बचपन घरके सभी कुलाचारों, व्रतों, अुत्सवों, अंधविश्वासों आदिका श्रद्धापूर्वक पालन करनेमें बीता था। अिस रूढ़िनिष्ठासे मुझमें भोली भक्तिका अुदय हुआ। औरोंकी अपेक्षा मुझमें यह भक्ति अधिक विकसित हुअी। मुझे यह अनुभव हुआ कि भक्तिसे निश्चयकी सामर्थ्य अेवं संकल्पशक्ति दृढ़ होती है। बादमें जब अिस भक्ति पर तार्किकताने हमले करने शुरू किये, तो अुसमें से शंकाशीलता पैदा हुअी। अिस शंकाशीलता और केवल तार्किकताने कुछ दिन तक नास्तिकताका रूप ले लिया। अिस नास्तिकतामें से शुद्ध जिज्ञासा प्रकट हुअी और मैं बुद्धिनिष्ठ अज्ञेयवादी बन गया। लेकिन बुद्धिवादका नशा मुझ पर कभी सवार नहीं हुआ। मेरी जिज्ञासा निर्मल अेवं नम्र थी। अतः सोचते सोचते मुझे बुद्धिवादकी मर्यादाअें, सीमाअें, दिखाअी देने लगीं। जब यह मालूम हुआ कि बुद्धिवादकी पहुँच अज्ञेयवाद तक ही सीमित रहती है, तो वृत्ति फिर वापस लौटी और श्रद्धाके सच्चे क्षेत्रोंकी झाँकी मिल गयी। नास्तिकता, बुद्धिवाद, अज्ञेयवाद आदिसे जो भूमि बीज बोनेके लिअे अच्छी तरह तैयार हो चुकी थी, अुसमें बढ़िया फसल आयी और अन्तमें धर्मके शुद्ध, अुज्ज्वल और सनातन यानी नित्य-नूतन स्वरूपका कुछ साक्षात्कार हुआ। अिस तरह अुस-अुस ज़मानेमें और अुस-अुस क्रमसे

सारी वृत्तियोंका अनुशीलन होनेके कारण धर्मजीवनके सारे पहलुओंको समभावपूर्वक श्रद्धासे किन्तु तर्कशुद्ध दृष्टिसे जाँचनेका अवसर मुझे मिला।

पुराने ज़मानेके जीवनकी संस्कार-समृद्धि, कला-रसिकता और सार्वत्रिक सन्तोष अिन तीनों बातोंका मैंने अनुभव किया है। अतः पुराने जीवनके प्रति मेरे मनमें अनादर नहीं, बल्कि कृतज्ञता अेवं भक्ति ही है। फिर भी मुझे लगता है कि जैसे आग परसे राख हटानेकी ज़रूरत होती है या घरका निकम्मा कबाड़ (जिसे अंग्रेज़ीमें 'लम्बर' कहते हैं) निकाल देना होता है, वैसे ही धर्मवृक्षको भी समय-समय पर झकझोरकर अुसके सूखे या सड़े-गले पत्तोंको गिरानेकी आवश्यकता रहती है। गुजरातीमें अेक कहावत है, 'संघर्यो साप कामनो।'—जिसका मतलब है साँपको भी हम सँभालकर रखें, तो वह किसी दिन काम आ सकता है। अिस कहावतके मूलमें अेक लोककथा है। वह अिस प्रकार है:

अेक बनियेके यहाँ अेक साँप निकला। अुसने अुसे तुरन्त मार डाला। अब अुस मरे हुअे साँपका क्या किया जाय? हस्बमामूल नौकर अुस साँपको शहरसे बाहर ले जाकर फेंक देनेवाला था; लेकिन बनिया बोला, "'संघर्यो साप कामनो!' अिस साँपको घरके छप्पर पर रख दो; वहीं पर वह सूखता पड़ा रहे।"

अब अेक दिन हुआ क्या कि अेक चील राजमहल पर मँडरा रही थी। वहाँ अुसने अेक मोतियोंका हार देखा, जो राजकन्याने जल-विहार करते समय किनारे पर रख दिया था। चीलने झड़पकर वह हार अुठा लिया और वहाँसे अुड़ती हुअी वह अुस बनियेकी छत पर आ बैठी। वहाँ अुसने सोचा कि हार तो कोअी खानेकी चीज़ है नहीं। अितनेमें अुसकी नज़र अुस मरे हुअे साँप पर पड़ी। अतः अुसने तुरन्त वह हार वहीं फेंक दिया और साँपको अुठाकर वहाँसे अुड़ गयी। बनियेको अनायास नौरत्नोंका लाभ हुआ। अुस दिनसे बनियोंकी जातिने यह फ़ैसला कर दिया कि मरे हुअे साँपको

भी फेंकना नहीं चाहिये, सँभालकर रखना चाहिये, ताकि वह किसी दिन काम आये।

अब अिस कहानीका साँप मरा हुआ था और छत पर पड़ा पड़ा धूपमें सूख रहा था। वही अगर ज़िन्दा हो या कुअेंमें पड़कर सड़नेके कारण पानीको जहरीला बना रहा हो, तो भी क्या अुसका संग्रह करना चाहिये ?

हम लोग परम्परागत सनातन धर्मके नाम पर रत्न भी जमा करते हैं और कंकर भी; हलाहल भी अिकट्ठा करते हैं और अमृत भी। हमारे सँभाल कर रखे हुअे साँपोंमें से कअी तो ज़िन्दा और ज़हरीले हैं और कअी असलमें निरुपद्रवी होते हुअे भी आज सड़कर महामारी फैला रहे हैं। और अुससे हमारे शुद्ध, अुदात्त सनातन आर्यधर्मका दम घुट रहा है। गोड़ाअी-निराअी किये बिना धर्मक्षेत्रमें से अच्छी फ़सल नहीं प्राप्त की जा सकती।

मेरे जन्मके समय पिताजी सातारामें कलेक्टरके हेड-अेकाअुण्टेंट थे। अुन दिनों रेलगाड़ी नहीं थी। मुसाफ़िरी बैलगाड़ीसे करनी पड़ती थी। डाकके लाने ले जानेके लिअे खास घोड़ा-गाड़ीका प्रयोग किया जाता था। जब रेलगाड़ी शुरू हुअी, अुस वक़्त लोग अुसे दूर-दूरसे देखने और पूजनेको हाथमें नारियल लेकर आते थे, अैसा मैंने पिताजीसे सुना था। रेलगाड़ीमें बैठनेसे पहले डिब्बेकी दहलीज़को स्पर्श करके वह हाथ माथेसे लगानेवाले लोग तो स्वयं मैंने भी देखे हैं।

*　　　*　　　*

हम थे छः भाअी और अेक बहन। मैं था सबमें छोटा। सबसे बड़े भाअी थे बाबा। मेरे संस्मरणोंकी शुरुआत होती है, अुस वक़्त अुनकी और अुनसे छोटे भाअी अण्णाकी शादी हो चुकी थी। मुझे याद है कि अुन सबकी शादियाँ अुनके बचपनमें ही हुअी थीं। तीसरे भाअी विष्णुकी शादी हुअी, तब हम सातारासे बैलगाड़ीमें बैठकर

शाहपुर-बेलगाँव गये थे। पिताजी बादमें डाकके ताँगेमें आये थे। विष्णुकी शादीमें जुलूसके समय दूल्हेका घोड़ा बहुत अूधम करता था और विष्णुको अपनी बैठक पर जमे रहनेमें मुश्किल हो रही थी। वह चित्र आज भी नज़रके सामने ताज़ा है। केशूकी और मेरी शादीके समय मैं काफ़ी बड़ा हो चुका था।

सातारामें हम समाजमें बहुत घुलते-मिलते न थे। हमारी जातिवाले सातारामें बहुत नहीं थे। दो-तीन सरकारी अधिकारी और अुनके कुटुम्बी ही हमारे यहाँ आते थे। मनीकी माँ नामकी हमारी माँकी अेक सहेली थी। अुसकी लड़कीका नाम मनी था। मनीके साथ हम खेलते रहते और अुसके घर भी जाते। लेकिन अुसकी माँका नाम मैंने कभी नहीं सुना। वह तो केवल 'मनीकी माँ' थी। बच्चोंके नामसे अुनकी माताओंका सम्बोधन करना महाराष्ट्रका आम रिवाज है, जो आज भी चल रहा है। हमारे पड़ोसमें अेक दर्जी रहता था। अुसके दो लड़के नाना और हरि हमारे साथ खेलने आते। डांग्या नामका अेक मुस्लिम लड़का था। वह केशूके साथ खेला करता। यादो गोपाळ मुहल्लेका मारुती और अन्य अेक जगहका ढोल्या (तोंदवाला) गणपति भी मुझे अब तक याद हैं।

हम शाहपुर जाते तब हमारा सारा वातावरण बदल जाता। शाहपुर तो हमारा ही गाँव था। वहाँके तीन-चार बड़े-बड़े मुहल्लोंमें हमारी ही जातिके लोग रहते थे। लगभग सभी लोग सर्राफ या व्यापारी थे; शेष सब मामूली नौकरियाँ करते थे। अिन सब कुटुम्बोंका परस्पर सम्बन्ध अितना घनिष्ठ था कि हर घरमें क्या पका था या सास-बहूमें कैसा झगड़ा हुआ था, अिसकी खबर शाम होनेसे पहले ही चारों मुहल्लोंमें फैल जाती। बीच बीचमें ज्ञाति-भोजन होता, कभी वसन्तोत्सव मनाया जाता, किसी नर्तकीका नाच या गाना होता या गर्मियोंके दिनोंमें कच्चे आमको भूनकर बनाये हुअे शर्बत (पना) का सामुदायिक पान होता, तो हमारी सारी जाति

जमा हो जाती। सीमोल्लंघन (दशहरे) जैसे अुत्सवमें तो सभी जातियाँ अिकट्ठा हो जातीं। हमारी जातिके लोगों द्वारा बनाये हुअे मन्दिरोंमें ही हम सब लोग जमा हो जाते थे।

हम शाहपुरके बाशिन्दे तो थे, लेकिन मेरे पिताजीकी नौकरीकी वजहसे हम लोग अकसर सातारा, कारवार, धारवाड़ आदि शहरोंमें ही रहते थे। अिस कारणसे और हम सभी भाअियोंके शिक्षाके विषयमें बहुत अुत्साही होनेसे हमारी जातिमें हमारा आदर किया जाता था। अपनी जातिका कोअी आदमी सरकारी नौकरी करके अूंचा चढ़ता, तो जातिके लोगोंको अुसमें बड़ा गौरव महसूस होता। अिस कारणसे भी हमारे समाजमें हमारी प्रतिष्ठा थी। अतः शाहपुर जाते ही हमें समाजमें मिलना-जुलना पड़ता था।

मिलने-जुलनेकी कलामें मुझे ज़रा भी सफलता नहीं मिली। कहीं जाना-आना मुझे अखरता था। मनुष्यमें या तो सामाजिक शिष्टाचार होना चाहिये या अुसकी भावना अितनी भोथरी होनी चाहिये कि कोअी कुछ बोले या हँसी अुड़ाये, तो अुसकी तनिक भी परवाह न हो। मेरे पास शिष्टाचारका अभाव था और तुनुकमिज़ाजीकी यह हालत थी कि मामूलीसे मामूली बातसे भी मेरा दिल दुःखी हो जाता। अतः मैंने मिलने-जुलनेके प्रसंगोंको टालना शुरू किया। कहींसे जीमनेका निमंत्रण आता, तो हमारे घरके सब लोग चले जाते, पर मैं नहीं जाता। मेरा यह स्वभाव देखकर सभी सगे-सम्बन्धी मुझ पर नाराज़ होते। अिससे मैंने अेक बहाना गढ़ा। बूढ़े और ज़्यादा प्रतिष्ठावाले लोग दूसरोंके घर न जीमनेका व्रत लेते हैं। यह देखकर मैंने भी यह व्रत लिया और अिस ढालको आगे करके लोगोंमें मिलने-जुलनेके अवसरोंको टालता रहा। नतीजा यह हुआ कि मैंने अपने सामाजिक जीवनके अेक पहलूको बिलकुल कमज़ोर कर दिया। आज भी सार्वजनिक या खानगी प्रसंगोंके समय लोगोंसे मिलते-जुलते मुझे बड़ा अखरता है। अपरिचित आदमीसे मिलते समय हमेशा बेचैनी

रहती है। जिसे सार्वजनिक सेवा करनी हो, अुसके लिअे यह भारी दोष ही समझना चाहिये।

बरसों तक हम शाहपुर और साताराके बीच आते जाते रहे। बेलगाँव तो शाहपुरके बिलकुल पास है, लेकिन बेलगाँवके साथका हमारा सम्बन्ध केवल शिरगाँवकर डॉक्टर तक ही सीमित रहा। कुटुम्बमें कोअी न कोअी बीमार रहना ही चाहिये, अैसा मानो हमारे घरका रिवाज हो गया था। अिसमें मेरे पिताजीका ही अपवाद था। अुन्हें बरसों तक कभी बुखार नहीं आता था, और न कभी सर्दी ही होती थी। वे छिहत्तर बरसकी अुम्र तक जीये, लेकिन अुनका अेक भी दाँत टूटा नहीं था या कमज़ोर भी नहीं हुआ था। मेरी बहन अक्का तो प्रसूतिमें ही विषमज्वरसे गुज़र गयी थी। अुस वक्त मैं बहुत छोटा था। बचपनकी मुझ पर अैसी छाप है कि स्त्रीवर्गमें से शायद ही कोअी कभी बीमार पड़ता था। बीमार तो पुरुष ही होते थे। हम बालक कभी कभी बीमार पड़ते, तो हमारा बहुत ही लाड़-प्यार होता था। अेक तो अिस कारणसे और दूसरे यह कि बीमार होनेमें अुस वक्त कोअी हमारी ग़लती या लापरवाही नहीं मानता था, अिसलिअे हमें बीमार पड़नेमें शर्म नहीं आती थी। अुलटे बीमार होनेसे हम हक़के साथ पाठशालासे बच जाते हैं और सारे दिन बिस्तरमें पड़े रहते हैं, तो भी कोअी नाराज़ नहीं होता, पढ़ाअीके बारेमें कोअी नहीं पूछता, पहाड़े नहीं बोलने पड़ते — वग़ैरा कारणोंसे हमें बीमार पड़नेमें मज़ा ही आता था।

हम जब शाहपुर जाते, तब वहाँसे सात-आठ मील दूर बेलगुंदी गाँवमें अेक बार अवश्य जाते। वहाँ हमारे मामा रहते थे। मौसी भी वहीं रहती थीं। बेलगुंदीके बचपनके संस्मरण अमरूद, आम, जामुन, शकरकंद, करौंदे, काजू, कटहल वग़ैरा फल खाने और गन्ना चूसनेके साथ ही जुड़े हुअे हैं। मैं बेलगुंदीके जंगलों और खेतोंमें खूब घूमा

हूँ। ग्रामजीवनका सर्वोत्तम आनंद मैंने वहीं पाया है। लेकिन वे बातें बचपनकी नहीं, बादकी हैं।

हमारे दोनों कुटुम्बोंमें सामाजिक, धार्मिक, औद्योगिक या राजनैतिक सुधारका वातावरण कहीं नहीं था। मेरे जन्मसे पहले पिताजीको सितार बजानेका शौक़ था, लेकिन बादमें वह भी अुन्होंने छोड़ दिया था। व्यसनके नामसे तो घरमें कुछ भी न था। पिताजी पान तक नहीं खाते थे। त्यौहारके दिन जब ब्राह्मणोंको जीमनेको बुलाया जाता, तभी बाज़ारसे पान-सुपारी ले आया करते थे। अुस दिन पानका बीड़ा तैयार करके अगर पिताजीको दिया जाता, तो कभी तो वे खा लेते और कभी जेबमें रखकर भूल जाते थे। व्यसनमुक्त, निर्दोष और विद्यापरायण परिवारकी हैसियतसे हमारे कुटुम्बकी शाहपुरमें अुस वक़्त काफ़ी ख्याति थी।

पिताजीका तबादला सातारासे कारवार हो गया। तनख्वाह बढ़ी, लेकिन मुसाफ़िरीका खर्च भी बढ़ा। कारवार जानेसे मैं सह्याद्रिकी शोभा देख सका, समुद्र और समुद्रयात्राका अनुभव हुआ। खुले आम मछली खानेवाले समाजसे भी थोड़ा-सा परिचय हुआ। आसपास अपरिचित लोग होनेसे अकेले-अकेले अपने मनमें विचार करना और कल्पनाके घोड़े दौड़ाना भी सीखा। अिस आदतका मेरे जीवन पर अच्छा और बुरा दोनों तरहका असर पड़ा है।

हम कारवारमें क़रीब पाँच-छः साल रहे। अिसके बाद पिताजीका तबादला धारवाड़को हुआ। कारवारमें मुख्य भाषा कोंकणी थी, लेकिन स्कूलकी पढ़ाअी और सरकारी कामकाज कन्नड़ भाषामें होता था। धारवाड़में तो केवल कन्नड़ भाषा ही थी। यहाँ पर देशस्थ ब्राह्मण, लिंगायत, वड्डर वग़ैरा छोटी-बड़ी जातियोंसे नया परिचय हुआ। प्लेगका अनुभव हुआ। हमने शहरसे बाहर खुले मैदानमें झोंपड़ी बनाकर रहना सीखा। मेरे बिलकुल बचपनमें मेरी अिकलौती बहन

गुज़र गयी थी। धारवाड़में मेरा मझला भाअी विष्णु प्लेगसे गुज़र गया।

धारवाड़से हम बेलगाँव आये। पिताजीने यहाँ पर कुछ साल काम करके यहींसे पेन्शन ली। फिर अुन्हें नज़दीकके साँगली राज्यमें ट्रेज़री ऑफ़िसरकी नौकरी मिली। वहाँ पर डॉ० देव और अिन्जीनियर श्री अमृतलाल ठक्कर (ठक्कर बापा)को मैंने राज्यके नौकरके रूपमें देखा था। लेकिन अुस वक़्त तो मैं कॉलेजमें पहुँच गया था। आगे जाकर ये दोनों भारतसेवक समाजमें शरीक हो गये। डॉ० देव हमारे यहाँ अकसर आया करते थे। ठक्कर बापाके साथ तो गुजरातमें ही परिचय हुआ।

जब हम कारवारमें थे, तब अंग्रेज़ सरकारकी ओरसे दक्षिण महाराष्ट्रके कुछ देशी राज्योंके हिसाबोंकी जाँच करनेके लिअे पिताजीको अकसर जाना पड़ता था। जिन राज्योंके राजा नाबालिग़ होते, अुनका शासनतंत्र अेडमिनिस्ट्रेटरकी मार्फ़त चलता। अुस हालतमें सरकारके विशेष ऑडिटरको हिसाब जाँचकर रिपोर्ट करनी पड़ती। अिसी तरह हम सावंतवाड़ी, मिरज, जत, रामदुर्ग, मुधोल, जमखिंडी और कर्णाटकमें सावनूर — अितनी रियासतोंमें घूमे। सावंतवाड़ी तो कअी बार गये।

देशी राज्योंमें राजधानीकी शोभाके अलावा अेक क़िस्मकी कला-रसिकता और पुराने ढंगके खानदानी रीति-रिवाज देखनेमें आते। देशी राज्योंमें और वहाँके सार्वजनिक जीवनमें जिसे हम आज सड़ाँधके रूपमें जानते हैं, वह दरअसल सड़ाँध नहीं थी, बल्कि अुस ज़मानेके लिअे आवश्यक और पुराने आदर्शके पालनके लिअे ज़रूरी चीज़ें थीं। अुन लोगोंके ज़मानेके लिअे ये चीज़ें अिष्ट अेवं पोषक थीं, जिन्होंने अिनका निर्माण किया था। लेकिन ज़मानेके बदल जानेसे अिन चीज़ोंकी अुपयोगिता नष्ट हो गयी। अिस तरह जो चीज़ें गतप्राण हो जाती हैं, अुन्हें गाड़कर या फूंककर मिटानेके बजाय टिकाये रखनेका

आग्रह जब किया जाता है, तो वे सड़ाँधका रूप ले लेती हैं। किसी स्वजनके शवसे बदबू आती हो, तो वह आदमी ही खराब था अैसा कहकर अुसकी निंदा करनेका अन्याय करनेकी अपेक्षा अगर हम आदरके साथ अुस शवकी अुत्तरक्रिया करें, तो अनारोग्य अेवं अन्याय अिन दोनों संकटोंसे बच सकते हैं। चूँकि मैंने देशी राज्योंका वातावरण अन्दरसे और समभावपूर्वक देखा है, अिसलिअे अुसमें सख्तीसे और आमूलाग्र सुधार करनेके पक्षमें होते हुअे भी हमारे देशी राज्यों, अुनके राजाओं और वहाँके अधिकारियोंके प्रति मैं तिरस्कारका भाव नहीं रख सकता।

सावंतवाड़ी राज्यकी प्राकृतिक शोभा कुछ निराली ही है। वहाँके लोग रजोगुणी और कलाओंमें निपुण हैं। मिरज, जमखिंडी और रामदुर्गमें पेशवाओंके वक़्तकी ब्राह्मणशाहीका वातावरण अभी भी जैसाका तैसा जमा हुआ दिखाअी दिया। पेशवाओंके दिनोंमें जो भी हालत रही हो, लेकिन मैंने अिस ब्राह्मणशाहीका आजके ब्राह्मणों पर अच्छा असर नहीं देखा। जतमें राज्यका सफ़ेद झंडा हिन्दू-मुस्लिम अैक्यका द्योतक था। क्योंकि अेक मुस्लिम फ़क़ीरने अुसे वहाँके हिन्दू राजाको दिया था। मुधोलके पुराने राजाकी बहादुरी और अुस बहादुरीका नाश करनेवाले अुसके अैशअिशरतके बारेमें मैंने बहुत सुना था। सावनूर तो नवाबी राज्य ठहरा। कर्णाटक और दक्षिणके सारे मुसलमान धर्मकी दृष्टिसे भले ही अुत्तरके मुसलमानोंके साथ अेक माने जायँ, लेकिन अुनका रहन-सहन और हर सवालकी ओर देखनेकी अुनकी दृष्टि तो खासकर द्राविड़ी ढंगकी ही होती है। देशी राज्योंमें महलों अेवं मन्दिरोंका स्थापत्य और रास्ते, पुल वग़ैरा बनानेके प्रजाहितके काम चूँकि हमेशा चलते रहते, अिसलिअे लोगोंको अेक प्रकारकी विशेष तालीम सहज ही मिल जाती थी।

अिस तरह पिताजीको हमेशा स्थलांतर करना पड़ता था। अिसलिअे मुझसे बड़े तीन भाअियोंको पढ़नेके लिअे पूना जाकर

रहना पड़ा। अुनमें से दो अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ रहते थे। माँ भी कुछ दिनके लिअे पूना जाकर रही थी। अतः मेरी मराठी दूसरी कक्षाकी पढ़ाअी वहीं नूतन मराठी विद्यालयमें हुअी। पूनासे पिताजीके पास कारवार गया। कारवार हमने १८९८-९९ में छोड़ा। अुसके बाद मैं कारवार अभी-अभी तक नहीं गया था।

बिलकुल बचपनमें आदमीने चाहे जितनी यात्रा की हो, तो भी संस्कारोंको ग्रहण करनेकी अुसकी शक्ति सीमित होनेसे अैसी मुसाफ़िरीसे मिलनेवाला लाभ भी परिमित होता है। फिर भी अुससे जो ताज़गी आती है, वह अुस अुम्रके लिअे बहुत पुष्टिकर होती है। ख़ास पढ़ाअीके लिअे पूनाका निवास, पिताजीके साथ सातारा, शाहपुर, कारवार, धारवाड़, बेलगाँव और साँगलीका परिचय, और अुपरोक्त देशी राज्योंकी राजधानियोंका दर्शन, अितना अनुभव अठारह वर्षकी अुम्रके लिअे कम नहीं कहा जा सकता। हमारे नाना श्री आबा भिसेकी ज़मीन बेलगुंदीमें थी। अुनकी और मामाओंकी निगरानीसे फ़ायदा अुठानेके लिअे स्वाभाविक ही पिताजीने भी वहीं ज़मीनें ख़रीदीं। शाहपुरमें तीन मकान ख़रीदे और अेक मकान बेलगुंदीमें बनाया।

अिसके अलावा तीर्थयात्राके कारण भी मैं बचपनमें बहुत घूमा था। कारवारसे दक्षिणमें गोकर्ण-महाबलेश्वर; साँगली-मिरजके पास नरसोबाकी वाड़ी और कुरुन्दवाड़; जतसे आगे पंढरपुर; साताराके पास जरंडा और परळी; गोवामें मंगेशी, शान्ता दुर्गा; पुराने गोवाके कैथोलिक अीसाअियोंके आलीशान गिरजाघर, पणजी जैसे रमणीय स्थान मैंने खूब श्रद्धा-भक्तिसे देखे थे। गोकर्ण तो दक्षिणकी काशी माना जाता है।

समुद्र-किनारेके तीर्थस्थानोंकी विशेषता कुछ और ही होती है। भारतवर्षके दक्षिणमें रामेश्वर और कन्याकुमारी; लंकाके दक्षिणमें देवेन्द्र; पूर्वमें जगन्नाथपुरी और पश्चिममें द्वारका तथा सोमनाथ। अिन

स्थानोंका माहात्म्य भले ही शास्त्रोंमें न लिखा हो, फिर भी अिनका निरालापन छिप नहीं सकता।

नरसोबाकी वाड़ी गुरु दत्तात्रेयका स्थान — ब्राह्मणोंके कर्मकाण्डका मज़बूत गढ़। जिसे भूत लग जाता है वह नरसोबाकी वाड़ीमें जाकर गुरु दत्तात्रेयकी सेवामें रहकर अुससे छूट सकता है और अुस भूतको भी गति मिलती है। जिसे कर्मकाण्डका भूत लगा हो, अुसे दूसरे भूत लगनेकी शायद हिम्मत नहीं कर सकते होंगे।

पंढरपुर तो भक्तिमार्गी महाराष्ट्रकी धार्मिक राजधानी, महाराष्ट्रके साधु-सन्तोंका पीहर। वहाँ भक्तिका महोत्सव अखण्ड चलता रहता है। वर्ण-जाति-अभिमानके कारण पतित बने हुअे अिस देशमें पंढरपुर ही मनुष्यकी समानता और अीश्वरके सामने सबका अभेद कुछ हद तक क़ायम रख पाया है। जरंडा हनुमानका स्थान है। और परळी हनुमानके अवताररूप समर्थ रामदासका स्थान। रामदासी लोग यदि चाहें, तो परळीको आजकी धर्म-जागृतिका अुद्‌गम स्थान बना सकते हैं। लेकिन तीर्थस्थान, न जाने क्यों, पुरानी पूँजी पर निभनेवाले कुटुम्बोंकी तरह क्षीण-तेज, पिछड़े हुअे और बासी होते जा रहे हैं।

कोंकण-गोवाके मंगेशी और शान्ता दुर्गा आदि क्षेत्र चूँकि हमारी जातिके कौटुम्बिक देवताओंके हैं, अिसलिअे अुनमें कौटुम्बिक श्रद्धा और जातिका वैभव ही ज़्यादा दिखाअी देता है। अंग्रेज़ीमें जिसे 'गार्डियन डीटी' (प्रतिपालक देवता) कहते हैं, वही स्थान अिन कुल देवताओंका होता है। आज भी मैं मानता हूँ कि अिस दृष्टिसे ये तीर्थस्थान जाग्रत हैं।

श्रद्धासे जानेवाले मनुष्यके लिअे तीर्थयात्रा असाधारण संतोषका साधन है। शिक्षाकी दृष्टिसे घूमनेवालोंको भी बहुत लाभ होता है। जिसे धार्मिक समाजकी नाड़ी परखनी हो, अुसे तो तीर्थस्थान ज़रूर देखने चाहियें।

अिस तरह मेरा बचपन बिलकुल अेक ही जगह रहकर बाक़ायदा पढ़ाअी करनेके बदले रोज़ाना नयी-नयी जगह जाकर नये अनुभव लेनेमें ही बीता। मेरी पढ़ाअीकी ओर किसीने ख़ास ध्यान नहीं दिया और मुझे भी स्थिरताके साथ दीर्घकाल तक कोअी काम करनेकी आदत कभी नहीं पड़ी।

मेरे पिताजी थे तो बहुत प्रेमल, लेकिन अुन्होंने प्रेमको मुँहसे प्रकट करनेकी भाषा अच्छी तरह सीखी नहीं थी। वे मेरे स्वास्थ्यकी हमेशा चिन्ता रखते, बीमार पड़ता तो तीमारदारी करते, जो भी आवश्यक होता वह ला देते, मेरी अिच्छाअें पूरी करते और मेरे लाड़ लड़ाते। लेकिन मुझे कौनसी खुराक अनुकूल रहती है, मैं कसरत करता हूँ या नहीं, पाठशालामें बराबर पढ़ता हूँ या नहीं, और पाठशालामें मैंने कैसे साथी चुने हैं, अिन बातोंकी ओर अुन्होंने कुछ भी ध्यान न दिया।

फलाँ काम ही हमारे खानदानमें किया जा सकता है, फलाँ नहीं किया जा सकता, फलाँ ज़रूर करना चाहिये — अैसी भावनाअें जगाकर अुनके द्वारा नीति-शिक्षा देनेका काम मेरी माँने खूब किया था। पिताजीमें न्यायबुद्धि और अीश्वरसे डर कर चलनेकी वृत्ति ज़्यादा थी। वे स्वयं कुछ भी नहीं बताते। अगर कोअी पूछता तो अपनी राय कह देते। अुन्हें महत्त्वाकांक्षा छू तक नहीं गयी थी। माताको सामाजिक प्रतिष्ठाका शौक़ बहुत था। 'कालेलकरोंका परिवार सदाचारी है, अेक दिलसे रहता है, परोपकारी है, घरमें लायी हुअी बहुअें सुखसे रहती हैं,' अैसी कीर्ति प्राप्त करनेके लिअे मेरी माँ हमेशा लालायित रहती। कअी बार वह मुझसे कहती, "मेरी यह अिच्छा है कि भगवान मुझे बहुत दे दें और मैं औरोंके काम आअूँ।" मैं अुससे हँसीमें कहता, "भगवानकी दी हुअी संपत्तिमें से तू कितना हिस्सा लोगोंको दे देगी? अगर तू सब कुछ दे डाले तो भगवान तुझे यथेच्छ देगा। लेकिन हम तो भगवानके व्यापारमें कमिशन ही बहुत माँगते हैं।

तो फिर भगवानको जो कुछ देना हो, वह सीधे ही लोगोंको क्यों न दे दे?"

पिताजीको मौज-शौक़ और समाजमें दिखाअी देनेवाली 'रसिकता' से आम तौर पर डर ही लगता था। वे समझते थे कि अगर ये बातें घरमें घुस गयीं, तो सारा परिवार तहस-नहस हो जायगा। अुनका अेकमात्र मनोविनोद फोटोग्राफी ही था।

हमारे बचपनमें फोटोग्राफी आजकी अपेक्षा ज़्यादा अटपटी थी। आजकी तरह अुन दिनों प्लेटें और फिल्में बाज़ारमें तैयार नहीं मिलतीं थीं। मौजूदा प्लेटें जब शुरू-शुरू बाज़ारमें आयीं, तब अुन्हें ड्राय (कोरी) प्लेट्स कहते थे। सातारामें जब पिताजी फोटो खींचते, तो सादा स्वच्छ काँच लेकर अुस पर कलोडिन डालकर अुसी वक़्त प्लेट तैयार कर लेते थे। अुस प्लेटके सूखनेसे पहले फोटो खींचकर अुसे 'डेवलप' करना पड़ता था। सारी क्रियाअें बहुत तेज़ीसे करनी पड़तीं। कलोडिनकी प्लेट डेवलप होनेसे पहले सूख जाती तो अुसमें सिलवटें पड़ जातीं। अुस वक़्त फोटोग्राफीके लिअे बहुत परिश्रम करना पड़ता था। अिस शौक़के लिअे पिताजी काफ़ी पैसे ख़र्च करते थे।

जब हम साँगली गये तो वहाँ मेरे भाअी नानाको सितारका शौक़ लगा। अुससे मुझमें भी संगीत सुननेका शौक़ पैदा हुआ। और भगवानकी कृपासे मुझे बहुत अच्छा संगीत सुननेका मौक़ा मिला। मेरे सबसे बड़े भाअी बाबा साहित्यके शौक़ीन थे — ख़ासकर संस्कृत साहित्य और ज्ञानेश्वरीके। दूसरे भाअी थे अण्णा। अुन्हें बचपनमें तरह-तरहके प्रयोग करनेका शौक़ था। बादमें अुन्होंने घरमें वेदान्त दाख़िल किया। विष्णु बढ़िया गाता था। अुसे गणपति-अुत्सव, शिवाजी-अुत्सव, वग़ैरा सार्वजनिक कामोंमें हाथ बँटाने और लोगोंमें नाम पानेका बड़ा शौक़ था। घरमें भाअियोंमें मेरा नेता था केशू। वह था शीघ्रकोपी और भोला। पढ़नेमें अुसे गहरी दिलचस्पी थी। रटने पर अुसे ज़्यादा भरोसा था। अुस पर नेपोलियनकी जीवनीका प्रभाव ज़्यादा था। गुप्त

मंडलीकी स्थापना करके लड़ाअीकी तैयारी करना, अंग्रेज़ोंको मार भगानेके लिअे बड़ी सेना अिकट्ठी करना वग़ैरा महत्त्वाकांक्षाअें अुसके मनमें थीं। लेकिन कॉलेजमें जानेके बाद अुसे लकवा हो गया और अुसकी सभी महत्त्वाकांक्षाअें मुरझा गयीं। गोंदू या नाना मेरा सबसे निकटका भाअी था। हम दोनोंमें सिर्फ़ दो बरसका अंतर था। बचपनके सच्चे साथी तो हम दोनों ही थे। स्कूलमें नाग़ा करने और पढ़ाअी न करनेकी सारी तरकीबें मैंने गोंदूसे ही सीखी थीं। अुसे केमिस्ट्री (रसायनशास्त्र), ड्राअिंग (चित्रकला) और फोटोग्राफीका शौक़ ज्यादा था। आगे चलकर अुसने व्यवसायके तौर पर फोटोग्राफीको ही पसंद किया।

मैं पिताजीका भक्त और माँका सेवक था। माँकी चोटी गूँथनेका काम भी मैं ही किया करता था। बड़े भाअीको मैं सत्पुरुषकी तरह पूजता था। अण्णाने मेरे बचपनमें मेरी शिक्षाकी तरफ़ कुछ ध्यान दिया था। लेकिन मैं अनुयायी तो केशूका ही था। केशू और विष्णुमें बहुत कम बनती थी, अिसलिअे केशूके हिमायतीके नाते विष्णुके साथ मुझे कअी बार लड़ना पड़ता था और मैं निष्काम भावसे वह करता रहता। गोंदू तो ठहरा मेरा लँगोटिया मित्र। अुसके मनोराज्यकी बातें मुझे दिन-रात सुननी पड़तीं। घरके लोग गोंदूके बारेमें कहते कि, "यह स्कूलमें कुछ लिखता-पढ़ता नहीं है, हर वक़्त चित्र खींचता रहता है, फोटोग्राफीके विषयमें पुस्तकें पढ़ता है, और अिसी तरह वक़्त बरबाद करता है।" जब कभी अण्णा अुस पर नाराज़ हो जाते, तब वे अुसके चित्र फाड़ डालते। अेक बार अुसके बनाये हुअे लकड़ीके ठप्पे अण्णाने जला दिये थे। अिस तरहकी तकलीफ़ोंसे बचनेके लिअे गोंदू रातको ९ बजे सोकर १२ बजे जाग जाता था। और बारह बजेसे लेकर तीन बजे तक फोटोग्राफीकी किताबें पढ़ता रहता। अुसमें यदि कोअी मज़ेदार और दिलचस्प प्रयोग अुसे मिल जाता, तो अुस आधी रातके समय मुझे जगाकर वह अुसकी जानकारी तफ़सीलके साथ मुझे दे देता। अगर मैं झटसे न जाग जाता या ध्यानसे अुसकी

बात न सुनता, तो वह चुटकियाँ काटकर मुझे जगा देता था। मेरी ज्ञाननिष्ठा अितनी अधिक थी कि अिस तरहकी ज़बर्दस्तीके खिलाफ़ मैंने कभी शिकायत नहीं की।

हम सभी भाअी मित्र-प्रेममें भरेपूरे थे। बाबा साहित्यरसिक थे और अुन्हें घर पर पढ़ानेके लिअे भिसे मास्टर और शास्त्रीजी आते थे। अिसलिअे बाबाका कमरा कअी विद्यार्थियोंके लिअे शिक्षाका धाम बन गया था। अण्णामें अहंप्रेम ज़्यादा था, अिसलिअे अुनके मित्र अकसर अुनके अनुयायी ही होते थे। सच्चा वात्सल्यपूर्ण स्वभाव था विष्णुका। लेकिन वह पढ़ाअीमें कच्चा था। सामाजिक शिष्टाचारकी जानकारी अेवं क़द्र अुसमें सबसे ज़्यादा थी। दूसरोंके लिअे चीज़ें खरीदना, लोगोंको अपने यहाँ बुलाकर खिलाना-पिलाना, यह सब कुछ अुसे अच्छी तरह आता था। केशूको बचपनमें मिरगीकी बीमारी थी। अिससे सभीको अुसका मिजाज सँभालना पड़ता था। अिस बातका अुसके स्वभाव पर बहुत असर पड़ा था। वह स्वभावसे तरंगी, ज़िद्दी और दिलदार था। अुसके रागद्वेष अत्यन्त तीव्र, लेकिन क्षणजीवी होते। गोंदूमें अुसके शास्त्रीय शौक़के अलावा दूसरी कोअी भी खासियत अुस वक़्त न थी। आगे चलकर अुसे वेदान्त आदिका शौक़ हुआ और अुसीसे अुसका सत्यानाश हुआ। मैं अुससे कहता कि, "वेदान्त तो पारेके रसायन जैसा है। अगर वह हज़म हो गया तो आदमी वज्रकाय बनेगा, वरना वह शरीरसे फूट पड़ेगा। धूर्त्त लोग वेदान्तके साथ भले ही खिलवाड़ करें, क्योंकि वे अुससे बहुत फ़ायदा अुठा सकते हैं, अुन्हें अुसके बुरे असरका डर नहीं रहता।" गोंदूमें अहंप्रेमकी बू तक न थी। हम सभी भाअी कम या अधिक मात्रामें आलसी अवश्य थे। नियम या व्यवस्था किसीके जीवनमें नहीं दिखाअी दी।

मैं सबसे छोटा था, अिसलिअे घरमें आयी हुअी भाभियोंके साथ मेरी खूब दोस्ती और समभाव रहता था। अुनके प्रति मेरे मनमें सहानुभूति थी। अुन्हें अपने पतियोंसे क्यों डर कर रहना

पड़ता था, सास-ससुरके सामने वे झूठ क्यों बोलती थीं, पीहरके प्रति अुनके मनमें कितना और कैसा आकर्षण रहता था, यह सब मुझे विभिन्न पहलुओंसे देखनेका मौक़ा मिला था। अिससे कौटुम्बिक जीवनके अनेक प्रश्न बचपनसे मेरी समझमें अच्छी तरह आ गये थे। कौटुम्बिक जीवन अेक तरहसे तो स्वर्ग है और दूसरी तरहसे अखण्ड चलती रहनेवाली अन्तविहीन ट्रेजेडी (शोकान्तिका) है, यह मैं बहुत पहले देख चुका था। माता-पिताके गुज़र जानेके बाद तुरन्त ही शाहपुर-बेलगाँवका और कुटुम्बका वातावरण छोड़कर मैं जो महाराष्ट्रके दूसरे सिरे पर गुजरातमें जाकर बसा, अुसका अेक कारण यह भी है, यद्यपि अुसे गौण ही कहना चाहिये। महाराष्ट्रमें रहनेके बजाय अन्यत्र जाकर सेवा करने और अुसके लिअे गुजरातको पसन्द करनेके जो कारण थे, वे अलग ही हैं।

* * *

सार्वजनिक जीवनके साथ मेरा बाल-परिचय बहुत ही कम रहा है। हम पूनामें थे तब वहाँ हिन्दू-मुसलमानोंके बीच अेक बड़ा झगड़ा हुआ था। अुस वक़्त यह मालूम न हो सका कि यह दंगा बम्बअीसे पूना पहुँचा था या पूनासे बम्बअी। बिलकुल मामूली कारणको लेकर दोनों जातियाँ लड़ पड़ीं और काफ़ी मार-पीट हुअी थी। बड़ी अुम्रके लोग भी पागल होकर अेक-दूसरेको गालियाँ देते हैं और मार-पीट करते हैं, यह बात पहली बार जानकर मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ था। अुस झगड़ेके बाद भी सभामें श्री बाल गंगाधर तिलकने अेक भाषण दिया था और अुसमें ज़ाहिर किया था कि ग़लती दोनों फ़िरक़ोंकी है, लेकिन कुल मिलाकर ज़्यादा दोष मुसलमानोंका ही है। अुस वक़्त तिलकजीको लोकमान्यकी पदवी प्राप्त नहीं हुअी थी।

अिसके बाद मैंने जो सार्वजनिक घटना सुनी, वह थी चीन-जापान-युद्ध। अुस वक़्त सुना था कि जापानने पहले ही झपट्टेमें चीनका अेक बड़ा जहाज़ डुबो दिया। 'चैम्पियन' नामके अेक अंग्रेज़ी अखबारमें

अिस जंगकी ख़बरें आया करती थीं। अिसके बादकी अद्भुत घटना थी गोवामें चलनेवाले राणा लोगोंके बलवेकी। अुस वक़्त सुनी हुअी बातोंको यदि अिकट्ठा किया जाता, तो वीर-रसका अेक महाकाव्य बन सकता था। राणा लोग पोर्तुगीज़ सरकारका विरोध करके जंगलमें जा छिपे थे। वहाँ वे लुहारोंसे बन्दूकें और गोलाबारूद तैयार करवाते। अचूक निशानेबाज़ होनेसे 'पाखला' (पोर्तुगीज़ सोल्ज़र) लोगोंको चुन-चुनकर गोलियोंसे अुड़ा देते थे। अंतमें समझौता करनेके लिअे अुन लोगोंके नेताको गोवाके गवर्नरने अपने पास बुलाया और धोखा देकर गोलीसे अुड़ा दिया, वग़ैरा बहुत-सी बातें लोगोंके मुँहसे सुनी थीं। अुस वक़्तके दादा राणा, दीपू राणा आदि शूरोंके बारेमें गोवामें कअी लोकगीत गाये जाते होंगे। क्या आज वे मिल सकते हैं?

लेकिन सारे समाजको कुतूहल, डर, अेवं अपेक्षासे अुत्तेजित करनेवाली घटना तो महारानी विक्टोरियाके हीरक महोत्सवके दिन रातके वक़्त गवर्नरके यहाँसे खाना खाकर वापस लौटनेवाले पूनाके प्लेग-अफ़सर रैन्डके ख़ूनकी थी। प्लेग अुस वक़्त सचमुच अेक बड़ी राष्ट्रीय आपत्ति थी। लोगोंको प्लेगकी अपेक्षा प्लेगके मुक़ाबलेके लिअे अपनाये जानेवाले कठोर अुपायोंसे ज़्यादा परेशानी होती थी। मृत्युकी कलामें तो हमारे लोग पहलेसे ही माहिर हो गये हैं। लेकिन करंतीन (Quarantine) का ज़ुल्म, घरोंकी बरबादी, नारियोंका अपमान आदि बातें अुनके लिअे असह्य हो गयी थीं। रैन्ड और आयर्स्टके ख़ूनके बाद तिलकजीको राजद्रोहके लिअे सज़ा मिली थी। सरदार नातु बंधुओंने घुड़सवारी सिखानेका वर्ग चलाया था, अितनी-सी बात पर सरकारको शक हुआ और अुसने अुन्हें राजबन्दीकी हैसियतसे बेलगाँवमें रख दिया। चाफेकर बन्धुओंका षड्यंत्र पुलिसवालोंने ढूँढ़ निकाला था। चाफेकर बन्धुओंको फाँसीकी सज़ा हुअी और अुन्हें पकड़ा देनेवाले अुनके साथी द्रविड़ बन्धुओंका भी ख़ून हुआ। अैसी सब घटनाओंके कारण मैंने

अुस वक़्त भी यह स्पष्ट देखा था कि समाजमें अेक-दूसरेके प्रति शंका, अविश्वास और सरकारका डर बहुत बढ़ गया था। घरमें बैठकर बोलनेवाले लोग भी धीमी आवाज़में बातें करते। यह तय करना मुश्किल हो गया कि देशभक्त कौन है और दग़ाबाज़ कौन। मैंने यह भी देखा कि अिसीके साथ लोगोंमें देश और देशभक्तिके विचार भी बढ़े थे। कमसे कम मुर्दार शान्ति तो खतम ही हो गयी थी।

अिसके बाद जो सार्वजनिक चर्चा सुनी, वह थी किसानोंको कर्ज़से मुक्त करनेवाले सरकारी क़ानूनके बारेमें। अिस क़ानूनसे साहूकार मारे जायँगे और किसान तो मुक्त हो ही नहीं सकेंगे, अैसी टीका अुस समय बहुत सुनाअी देती थी। अंग्रेज़ सरकार प्रजाको छीलकर खा जाना चाहती है, यह विचार तो लोगोंमें सर्वत्र था। अिस अेक भावनामें महाराष्ट्र अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा हमेशा आगे बढ़ा हुआ है। अंग्रेज़ सरकारके हेतुके बारेमें महाराष्ट्रीय जनताको कभी विश्वास नहीं हुआ।

अिसीलिअे जब दक्षिण अफ्रीकामें ट्रान्सवालके बोअरों और अंग्रेज़ोंमें युद्ध शुरू हुआ, तब हमारे लोगोंकी सहानुभूति बोअर लोगोंके साथ ही थी। दक्षिण अफ्रीकामें रहनेवाले कुछ हिन्दुस्तानी लोग अंग्रेज़ सरकारकी मदद कर रहे हैं, मुर्दे अुठानेका काम करते हैं, यह सुनकर अुस वक़्त हम सबको यही लगता कि वे सब बेवकूफ़ हैं। जोबर्ट, क्रोन्जे, डिलारे, डिवेट, क्रूगर वग़ैरा नाम हमें अितने प्रिय हो गये थे, मानो वे हमारे राष्ट्रीय वीरोंके ही नाम हों। लेडी स्मिथ, प्रिटोरिया, किम्बर्ले, ब्लोअेन फाअुन्टेन आदि शहरोंका भूगोल हमें कंठस्थ हो गया था। अिसके बाद जो विराट घटना हुअी, वह थी रूस-जापानके युद्धकी। लेकिन अुस वक़्त मैं कॉलेजमें पहुँच गया था।

बिलकुल बचपनमें मैंने कांग्रेसका नाम अेक ही बार सुना था। मेरे मामाके लड़केने अपने कुछ मित्रोंकी मददसे संभाजी नाटक खेला था और अुसकी आमदनी कांग्रेसको दी थी। चूंकि मैं अुस वक़्त यह

नहीं जानता था कि कांग्रेस क्या चीज़ है, अिसलिअे मुझ पर यही छाप पड़ी थी कि रामाने नाटककी आमदनी बेकार गँवा दी है। अुस वक़्त अितनी ही जानकारी थी कि सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी नामक अेक ज़बरदस्त वक्ता कांग्रेसके लिअे पूनामें आया था।

* * *

लोगोंसे मिलने-जुलनेकी शर्म और पाँच बड़े भाअियोंका दबाव, अिन दो कारणोंसे मेरा स्वाभाविक विकास बहुत कुछ अवरुद्ध हुआ। लेकिन अेक ओरसे रुँधी हुअी शक्ति दूसरी ओर प्रकट हुअी। मैं कल्पनाविहारमें मशग़ूल रहने लगा। बड़ा होने पर मैं क्या करूँगा, राजा बन गया तो राज्य कैसे चलाअूँगा, आदि कल्पनाअें अखंड रूपसे चलती रहतीं। अिमारतें बनाना, जंगलोंमें रास्ते निकालना, नदियों पर पुल बनाना, पहाड़ोंको खोदकर सुरंगें तैयार करना, घोड़े पर बैठकर सारा देश घूम आना — आदि कल्पनाअें करना मुझे बहुत पसंद था। लेकिन अुस वक़्त मुझे यह नहीं सूझा कि कोअी भी कल्पना मनमें आनेके बाद अुसे व्यवहारकी कसौटी पर कसकर देखना चाहिये। अिसलिअे मेरी सारी योजनाअें शेखचिल्लीकी कल्पनाअें ही होतीं। आजकी दृष्टिसे सोचने पर मुझे अैसा लगता है कि मेरी रचनात्मक बुद्धिके विकासमें मेरी कल्पनाओं और योजनाओंसे बहुत कुछ मदद अवश्य मिली होगी।

अिस अन्तर्मुख वृत्तिके साथ ही सृष्टि-सौन्दर्यकी ओर भी मेरा ध्यान बहुत जल्द आकर्षित हुआ। मनुष्योंमें बहुत हिलता-मिलता नहीं था, अिसलिअे सहज ही नदी, नाले, तालाब, बग़ीचे, चरागाह, खेत आदि देखनेमें मेरा मन तल्लीन होने लगा। अिसमें कुछ सौंदर्योपासना है अितना समझने जितनी प्रौढ़ता मुझमें बहुत देरीसे आयी। नदीके घाट पर बैठकर नदीके प्रवाहकी ओर टकटकी लगाये देखते रहनेमें मुझे बड़ा आनन्द आता। अूँचे अूँचे पहाड़, पुराने क़िले, आकाशकी ओर अिशारा करनेवाले मन्दिरोंके शिखर और रोशनीके साथ

झगड़नेवाले घने जंगल बचपनसे ही मेरी भक्तिके विषय बन गये हैं। अिस तरह निर्दोष आनन्द लूटनेकी कला अनायास ही मेरे हाथ लग गयी है। नदीके घाट, दोनों किनारों पर आसन जमाये बैठे हुअे नदीके पुल, नदीके पृष्ठ भाग पर चूहोंकी तरह दौड़नेवाली नावें और भैंसोंकी तरह धीमे चलनेवाले जहाज़ — यह सब देखकर मनुष्य और प्रकृतिका सख्य मन पर अच्छी तरह अंकित हो गया था। आज भी पुल और नाव देखनेका कुतूहल मेरे मनमें कम नहीं हुआ है। अितने सालोंसे बाग़के फूल अेवं आकाशके तारे देखते रहने पर भी अुनका ताज़ापन मेरे लिअे कम नहीं हुआ है। नदीमें बाढ़ आती है, आकाशसे तारे टूटने लगते हैं, भूचाल होता है, जंगलोंमें आग लगती है या मूसलधार बारिश होनेसे चारों तरफ़ पानी ही पानी हो जाता है, तो अुससे मेरी चित्तवृत्ति दबती नहीं, बल्कि अुस अुस प्रसंगके साथ तदाकार होकर अुसकी मस्तीका अनुभव करती है।

क़ुदरतके शौक़के साथ अजायबघर देखनेकी भूख अुत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। मैंने पहले-पहल जो म्यूज़ियम देखा वह सावंतवाड़ीके मोती तालाबके किनारे पर था। अुससे मुझे ख़ूब शिक्षा मिली। कीड़ों और तितलियोंको मारकर अुन्हें आलपीनोंसे नत्थी किये हुअे देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ; क्योंकि फूलों पर फुदकनेवाली तितलियोंके साथ मैं बहुत खेलता था। मरे हुअे पक्षियोंके शरीरमें घास-फूस भरा हुआ देखकर मुझे रोना आता था। पक्षी दिखाअी दें और अुनकी चहक सुनाअी न दे, अिससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती थी? मिरज और जमखिण्डी (रामतीर्थ) के म्यूज़ियम तो अिसकी तुलनामें बिलकुल छोटे ही थे। लेकिन वे भी अब तक याद हैं। बचपनकी अिस दिलचस्पीके कारण आगे जाकर बम्बअी, बड़ौदा, कलकत्ता, जयपुर, मद्रास, लखनअू, लाहौर, कराची, सारनाथ, नालन्दा, श्रीनगर, कोलम्बो, गौहत्ती वग़ैरा स्थानोंके कम या ज़्यादा प्रख्यात म्यूज़ियमोंको देखनेकी दृष्टि मुझे

मिली। असके बाद तो काश्मीरका अनन्तपुर, अशोकका पाटलीपुत्र और सिंधका मोहन-जो-दड़ो जैसे ज़मीनमें दबे हुअे स्थान भी बड़े शौक़से देख आया हूँ।

सौभाग्यसे मुझे बचपनमें पैदल और बैलगाड़ीसे मुसाफ़िरी करनेका खूब मौक़ा मिला, अिसलिअे मैं सभी बा आरामसे देख सका। अिसके बाद तो रेल और मोटरकी हज़ारों मीलकी मुसाफ़िरी मैंने की है। अिस मुसाफ़िरीके फ़ायदे भी मैं जानता हूँ। लेकिन बैलगाड़ीकी और पैदल मुसाफ़िरीकी बराबरी वह कभी नहीं कर सकती। यह वाक्य अक्षरशः सत्य है कि जो पैदल चलता है असकी यात्रा सबसे अच्छी होती है। ('He travels best who travels on foot.')

* * *

मनुष्यके निर्माणमें जितना हिस्सा असके माँ-बाप और भाअी-बहनोंका होता है, अुतना ही असके स्कूल अेवं खेलके साथियों और शिक्षकोंका होता है। अिस विषयमें भी मैं बहुत कुछ वंचित रहा। बचपनके अिन बारह वर्षोंमें मैंने किसी अेक जगह लगातार पूरा साल नहीं बिताया। अिससे बचपनकी गहरी मैत्रीका मुझे अनुभव ही नहीं मिला। शिक्षकोंके बहुतेरे नाम मैंने संस्मरणोंमें दिये हैं। मेरे सबसे बड़े दो भाअी मेरे पहले शिक्षक थे। कारवारके हिन्दू स्कूलके दुभाषी और कामत अिन दो शिक्षकोंने मुझ पर स्थायी असर डाला है। आगे चलकर विद्याकी अभिरुचि पैदा करनेवालोंमें पवार, चंदावरकर, नाड़-कर्णी, कित्तूर, गोखले और रावजी बाळाजी करन्दीकर प्रमुख थे। पवार मास्टरकी निगरानीमें मैंने अंग्रेज़ी पाँचवी कक्षाकी पढ़ाअी की। वे जातिके मराठा (अब्राह्मण) थे। शायद प्रार्थनासमाजके प्रति अनमें भक्ति थी। अुन्हें अंग्रेज़ी और ख़ास करके अंग्रेज़ी व्याकरणका शौक़ ज्यादा था। वे नियमितता, अनुशासन, व्यवस्था वग़ैराके तो हिमायती थे ही, लेकिन होशियार विद्यार्थियोंके प्रति अुनका अितना पक्षपात रहता

कि वह छिप नहीं सकता था। चंदावरकर मास्टर विद्यारसिक थे। अुन्हें अुन्हींके कहे मुताबिक़ तीन 'अेम' का व्यसन था: म्यूज़िक, मैथेमेटिक्स और मेटाफ़िज़िक्स (संगीत, गणित और तत्त्वज्ञान)। मेरे हिस्सेमें अुनका गणित ही आया था। अुसे वे बहुत अच्छी तरह पढ़ाते थे। अुनकी सज्जनता और साफ़-सुथरेपनका मुझ पर बहुत असर पड़ा था। लेकिन अुनके वरिष्ठ नाड़कर्णी मास्टरकी सरलताको मैं ज़्यादा पूजता था। कित्तूर मास्टर पुराने ढंगके देशस्थ ब्राह्मण थे। अुनकी विद्यार्थी-वत्सलता अुनकी कड़ाअीके नीचे भी नहीं छिपती थी। मैं जो थोड़ी-बहुत संस्कृत जानता हूँ अुसके लिअे अुन्हींका ऋणी हूँ। गोखले मास्टर बिलकुल नये ज़मानेके शिक्षक कहे जायेंगे। लेकिन जिन गोखलेका अिन संस्मरणोंमें ज़िक्र है, वे ये नहीं हैं। पर मैं मानता हूँ कि अिन्हींके कुटुम्बमें से होंगे। गोखले हमें अंग्रेज़ी भी पढ़ाते और सायन्स भी। अुनमें गुरुपन कतअी न था। विद्यार्थियोंके अुन्हें मित्र ही कहना चाहिये। होशियार विद्यार्थियोंकी तो अितनी सूक्ष्मतासे तारीफ़ करते कि विद्यार्थी अुनकी ओर आकर्षित हुअे बिना नहीं रहते। अुन्होंने अपनी सायन्सकी अलमारीकी चाभियाँ मेरे पास दे रखी थीं। कभी दिल होता तो मैं चार विद्यार्थियोंको साथमें लेकर स्कूलमें सोनेके लिअे जाता और घरमें कैमेरा अिस्तेमाल करनेकी आदत होनेसे स्कूलकी दूरबीनसे आकाशमें पृथ्वीका चंद्र, गुरुके चंद्र आदि देखनेका मज़ा लूटता।

रावजी बाळाजी करन्दीकर अेक समर्थ व्यक्ति थे। जहाँ जाते वहाँ अपनी छाप डाले बिना नहीं रहते थे। आगे चलकर वे अेज्युकेशनल अिन्स्पेक्टर हो गये थे। पाठ्यपुस्तकोंकी समितिमें भी नियुक्त किये गये थे। बचपनमें मधुकरी (भिक्षा) माँगकर अुन्होंने पढ़ाअी की थी। मैंने सुना था कि अुन्होंने मरते समय अपनी बचतके अेक लाख रुपये ग़रीब विद्यार्थियोंके शिक्षणके लिअे दे दिये थे। अुनसे पहलेके साने हेडमास्टर काव्य और अितिहासके निष्णात

थे। लेकिन अुनके प्रभावमें मैं ज़्यादा नहीं आ पाया। हाअीस्कूल या कॉलेजमें मुझे कोअी अंग्रेज़ अध्यापक नहीं मिला। कभी कभी मनमें यह भाव अुठता है कि अंग्रेज़ अध्यापक मिला होता तो अच्छा होता। यह अिस आशासे नहीं कि गोरोंसे कोअी ख़ास संस्कार मिलते, बल्कि अिसलिअे कि अुससे मिले हुअे संस्कारोंमें विविधता आ जाती।

*   *   *

सौंदर्य या कलाका प्रेम मैंने पहले प्रकृति और धार्मिक संस्कारोंसे ग्रहण किया था। लेकिन सौभाग्यसे कला या सौंदर्यानुभवका विधिवत् स्पष्ट भान तो बहुत देरसे जाग्रत हुआ। घरमें नौकर होते हुअे भी रोज़ानाका आटा घरमें ही प्रतिदिन पीसनेका काम मेरी माँ और भाभियाँ ही करती थीं। अुस वक़्त बिस्तरसे अुठकर माँकी गोदमें सिर रखकर सवेरेकी मीठी नींद लेनेकी मुझे आदत थी। माँ, अक्का और भाभी पीसते समय गीत भी गाती जातीं। काव्य और संगीतके साथ यही मेरा प्रथम परिचय था।

चैत्र मासमें जब गौरीकी पूजा होती, तब गौरीके आसपास 'आरास' (आराअिश, सजावट) की जाती। अेक पूरे कमरेको सुन्दरताके अनेक नमूनोंसे सजानेसे कोअी कम तालीम नहीं मिलती थी। गुड़ियोंके प्रदर्शनसे लेकर कृत्रिम बग़ीचे और पानीके कृत्रिम फुहारे तककी सभी चीज़ें अुस आराअिशमें मौजूद रहती थीं। फिर हम घर-घर भिन्न-भिन्न आराअिश देखने जाते। गणेश-चतुर्थी पर भी अैसा ही होता था। बचपनसे मैं घरके देवताओंकी पूजा किया करता था। पूजनके साथ पुष्परचनामें दिलचस्पी पैदा हुअी। मन्दिरोंमें जानेके कारण गायन, नर्तन, काव्य-श्रवण, कथा-कीर्तन, पौराणिक चित्र और रामलीला जैसे नाटक, अुत्सवोंकी आकर्षक विधियाँ और स्वादिष्ट प्रसाद आदिसे सात्त्विक कलारसिकताकी क़ीमती तालीम मिलती थी। घरमें त्यौहार और अुत्सव बड़े अुत्साह और भक्तिके साथ मनाये जाते थे। गणेश-चतुर्थी आती तो बरसाती तितलियोंकी तरह

घर-घर गणपति आ जाते, और तीनसे दस दिनके मेहमान रहकर निजधामको (अपने घर) चले जाते। अुस वक़्तसे मेरे मनमें आता कि 'दरअसल ये गणेशजी बड़े समझदार हैं। अपना काम हो गया, मियाद पूरी हुअी कि चले अपने घर। मनुष्यको भी समय पर अपनी शिक्षा पूरी कर लेनी चाहिये, समयसे अपनी नौकरीसे पेन्शन ले लेनी चाहिये, समयसे अपने धन्धेसे निवृत्त हो जाना चाहिये और जीवनसे भी यथासमय बिदा ले लेनी चाहिये। कहीं भी लालचसे चिपके नहीं रहना चाहिये।

ऋषि-पंचमीके दिन बैलकी मेहनतका कुछ न खाने और सालमें अेक दिन पशुद्रोहसे बचनेका व्रत मुझे बहुत आकर्षक लगता। मैंने हमेशा माना है कि यह व्रत सिर्फ़ बहनोंके लिअे ही नहीं होना चाहिये। हरतालिका और वटसावित्री तो स्त्रियोंके ख़ास त्यौहार हैं। अिनके पीछे कितने बड़े पौराणिक कथा-काव्यकी सृष्टि फैली हुअी है! नाग-पंचमीके दिन हम घरमें ही हाथसे नाग बनाते और अुसकी पूजा करते। चिकनी मिट्टीका बड़ा फनधर नाग बनाते और अुसके फन पर दसका आँकड़ा बनाते। अुसकी आँखोंकी जगह दो घुँघचियाँ बैठाते, दूर्वा दलसे नागकी दो जीभें तैयार करते। गोकुल-अष्टमीके दिन हम अेक बड़े पाट पर सारा गोकुल बनाते थे। चारों ओर क़िलेकी छोटी-छोटी दीवारें चुनते, दीवारों पर घासके तिनकोंके सिरों पर कौवे बैठाते; चारों ओर चार महाद्वार; अन्दर नन्द, यशोदा, बलराम, कृष्ण, अुनका साथी पेंद्या, पुरोहित महाबल भट्ट, गायें-बछड़े, सभी हाथसे बनाकर गोकुलके अन्दर बैठा देते थे। अुस दिन सात पहाड़ियोंमें रोमको बसानेवाले रेम्युलस और रीमसकी तरह या गारेमें से फ़ौज तैयार करनेवाले शालिवाहनकी तरह ही हमारा सीना गर्वसे फूल जाता। रामनवमी और जन्माष्टमी, तुलसी-विवाह और होली, प्रत्येक त्यौहारका वातावरण अलग अलग होता था। गोपालकालेके दिन हम कृष्णलीला करके दही चुराते थे। जाड़ेके दिनोंमें पौ फटनेके

पहले नदीमें नहाकर हम मन्दिरमें काकड़ आरती देखनेको जाते। भाद्रपद महीनेमें श्राद्धके समय पितरोंका स्मरण करते। महाशिवरात्रिके दिन निर्जल अुपवास करके वचननिष्ठ हिरनोंको याद करते और महादेव पर अपने दूधका अभिषेक करनेवाली गायका स्मरण करके हम भी रुद्राभिषेक करते। अिस तरह कर्म-काण्ड, अुत्सव, भक्ति, व्रत-वैकल्य, वेदान्त, पुराणश्रवण, वेदान्तिचर्चा आदि तरह तरहके संस्कारोंसे हृदय समृद्ध होता था।

धार्मिक वाचनमें ठेठ बचपनमें अेक शनिमाहात्म्य और स्वप्नाध्याय पढ़ा था। स्वप्नाध्याय पढ़नेके बाद जो सपने दिखाअी देते, अुनकी चर्चा हम दिन भर किया करते। सत्यनारायणकी कथाको तो हलुवेके साथ ही सेवन करते। अेक बार अेक शकुनवंती हमारे हाथ लगी थी। अुसके अंकों पर आँखें मूँदकर कंकर रखकर हम भविष्य जाननेका प्रयत्न करते थे। अिसके बाद हमने जो धार्मिक अध्ययन किया, वह था पाण्डवप्रताप, रामविजय, हरिविजय, भक्तिविजय, गुरुचरित्र, संतलीलामृत, शिवलीलामृत, गजेन्द्रमोक्ष वग़ैरा ग्रंथोंका। कर्मकाण्डके साथ भक्तियोगका मिश्रण होनेसे धार्मिक जीवनमें भी अेकांगीपन नहीं रहा। हम कुछ बड़े हुअे कि स्वामी विवेकानन्दके ग्रंथ मराठीमें आ पहुँचे। अुसमें से भगवद्गीताका अध्ययन शुरू हुआ। 'प्रबुद्ध भारत' और 'ब्रह्मवादिन्' अिन दो मासिकोंमें अंग्रेज़ीमें वेदान्तका सन्देश आता था। अिसके कुछ लेखोंका सार हमें अण्णासे मिलता था। बाबाने तुकाराम, ज्ञानेश्वर आदि सन्तोंकी वाणीका परिचय कराया था। श्रीरामदास स्वामीके 'मनके श्लोक' हमने बचपनमें ही कंठस्थ कर लिये थे। पदों, भजनों और गीतोंके प्रति अक्का और माँके कारण दिलचस्पी पैदा हुअी थी। सावंतवाड़ी जानेके बाद श्री रघुनाथ बापू रांगणेकरने पिताजी और अण्णाको राजयोगकी दीक्षा दी।

* * *

सामाजिक सुधारमें सबसे पहले तो बिना सिरके बाल मुँड़वाये केवल डाढ़ी बनानेसे ही शुरुआत हुआी। मेरे दो भाआी पूनासे जब वापस आये, तो अुन्होंने सिरके बाल जैसेके तैसे रखकर केवल डाढ़ी बनवायी थी। अिससे घरमें बड़ा हाहाकार मच गया। लड़के आीसाआी हो गये, अैसी टीका हर तरफ़से शुरू हुआी। यहाँ तक नौबत आयी कि नाआीको बुलाकर अुन्हें अपने सिरके बाल नियमपूर्वक अुस्तरेसे अुतरवाने पड़े।

अिसी बीच पूनासे अेक तार आया कि 'आपका लड़का विष्णु मिशनरियोंके चंगुलमें फँसकर आीसाआी होनेवाला है; अुसे बचाना हो तो पूना तुरन्त आअिये।' पिताजी घबड़ाये, फ़ौरन पूना चले गये। वहाँ देखा तो वह अप्रैलकी पहली तारीख़का मज़ाक था। अुस वक़्त घरवालोंकी घबड़ाहटको देखते हुअे में कह सकता हूँ कि धर्मान्तरका डर मौतके डरसे हज़ार गुना ज़्यादा था। यह धारणा सब लोगोंमें थी कि धर्मान्तरका मतलब है सामाजिक अेवं सांस्कृतिक मृत्यु और चरित्रका नाश।

बादमें पीताम्बर न पहननेका सुधार घरमें दाख़िल हुआ। पहले हमारे यहाँ कोआी प्याज तक न खाता था। प्याजका शौक़ बड़े भाआी ले आये। लेकिन अुसका रातमें ही अिस्तेमाल होता था। मिट्टीके तेलके दीये भी मेरे सामने ही घरमें दाख़िल हुअे। अुससे पहले घरमें सब जगह चिरागदान अेवं दिअलियाँ ही जलती थीं। अुस वक़्त यही माना जाता था कि हम कुछ भ्रष्ट हो गये हैं, हमने धर्म छोड़ दिया है, गृहलक्ष्मी तो तिलके तेलवाले दीपकसे ही प्रसन्न होती है। हम सातारासे कारवार गये और समुद्र-किनारेकी गर्म आबोहवा और वहाँके लोगोंके संपर्कके कारण घरमें चाय-कॉफी पीने जितने अधार्मिक बन गये। कारवार जानेके बाद हम घरमें अब्राह्मणोंका थोड़ा-बहुत पानी अिस्तेमाल करने लगे — पीने या रसोआी पकानेके लिअे नहीं, और पूजाके लिअे तो हरगिज़ नहीं, सिर्फ़ नहानेके लिअे ही

हम अब्राह्मणों द्वारा लाया हुआ पानी अिस्तेमाल करते थे। अब्राह्मण स्त्री द्वारा धोयी हुअी साड़ियों पर पानी डालकर अुन्हें निचोड़ लेना भी आहिस्ता-आहिस्ता बन्द हो गया। हमारे घरमें छूत-छात और देवपूजामें पिताजीके बाद मेरी ही सबसे अधिक आस्था थी। फिर भी ग्रहणके समय खाना और अछूतोंको छूने पर भी न नहाना ये दो बातें मैंने अपने लिअे आग्रहके साथ ज़ारी रखीं। मेरे बड़े भाअी घरमें जो कुछ हेरफेर करते, वे तो नये ज़मानेकी ढील अेवं अुच्छृंखलताके तौर पर ही होते। फलाँ बात अिष्ट है और समाजमें अितना परिवर्तन करना चाहिये, अिस तरहकी सुधारकी वृत्ति अुनमें नहीं होती थी। बचपनमें मैं 'धर्मनिष्ठ' था, अिसलिअे मैंने जो भी सुधार किये अुनके कारण बताकर अुन चीज़ोंका प्रचार करनेकी आदत मुझमें थी। अेक बार हाअीस्कूलके स्नेह-सम्मेलनमें भोजनके समय जब मैंने ब्राह्मण-अब्राह्मण या हिन्दू-अहिन्दू और अुच्च-नीचका भेदभाव देखा, तो मैं कित्तूर मास्टरके साथ बहुत झगड़ा था। मेरा कहना यह था कि, "जिन्हें अलग बैठना हो वे भले ही अलग बैठें, अुनका विरोध मैं नहीं करूँगा; लेकिन ब्राह्मण लोग अूपर बैठें, अुन्हें पहले परोसा जाय, मुसलमान, अीसाअी, पारसी लोगोंके पत्तलोंके चारों ओर चौक न पूरे जायँ, अिस तरहकी क्षुद्रताको मैं नहीं चलने दूँगा। मैं यहीं पर सम्मेलन ख़तम करनेको तैयार हूँ।" चूँकि मैं अेक सेक्रेटरी था अिसलिअे मैंने अपनी ज़िदको पूरा कर लिया। लेकिन अुसके बाद कअी साल तक स्नेह-सम्मेलन हो ही न सका।

हम सारस्वत लोग अपनेको ब्राह्मण समझकर अब्राह्मण लोगोंमें नहीं हिलते-मिलते और पंच द्राविड़ ब्राह्मण हमारे हाथका खाना नहीं खाते। अिससे महाराष्ट्रके समाजमें हम सारस्वतोंकी हालत कुछ अजीब-सी है। मुझे लगता है कि अिसीलिअे मुझमें धार्मिक अेवं सामाजिक अुदारता बहुत जल्दी पैदा हुअी। ब्राह्मणी संस्कृतिमें परवरिश पानेका लाभ भी मिला और यदि कोअी हमें हलका समझे तो

हमें कितना बुरा लगता है, अिसका प्रत्यक्ष अनुभव होनेसे औरोंके प्रति सहानुभूति रखना भी मैंने सीख लिया। अिसीलिअे आगे चलकर महाराष्ट्रके बाहर जानेके बाद सिंधी, गुजराती, मुसलमान, पारसी, बंगाली, असमी, मारवाड़ी, मद्रासी आदि सब समाजोंके साथ मिल-जुलकर रहना मुझे अच्छा लगने लगा। और यह स्वभाव बन गया कि आदमी जितनी अधिक दूरका हो, अुतना ही अुसके प्रति अधिक आकर्षण होता है। मनमें यह भावना दृढ़ हो गयी कि हमसे कुछ ग़लती ज़रूर हो रही है, अिसीलिअे अितने अुज्ज्वल धर्मकी विरासत हासिल होने पर भी हम अितने पतित हो गये हैं।

अिस तरह विविध प्रकारोंसे तैयारी हो जानेके बाद मैंने कॉलेजमें प्रवेश किया।